ॐ

दिगम्बरत्व और

दिगम्बर-मुनि

लेखक—

बा॰ कामताप्रसाद जैन

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" का पुष्प नं० १३

ॐ

दिगम्बरत्व और दिगम्बर-मुनि !

स्वर्गीया विदुषी चम्पावती जैन

लेखक :—

श्रीयुत् बाबू कामताप्रसाद जैन,

एम० आर० ए० एस०,

ऑन० सं० 'वीर' अलीगंज (एटा)

प्रथमबार २०००

सन् १९३२ ई०

मूल्य एक रुपया

प्रकाशक:—

पं० मंगलसैन जैन मंत्री,

चम्पावती जैन पुस्तकमाला प्रकाशन विभाग

श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ,

अम्बाला छावनी
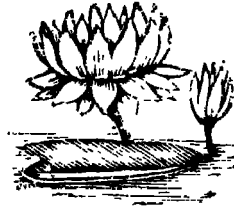
मुद्रक:—

शान्तिचन्द्र जैन,

"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस, बिजनौर।

विषय-सूची ।

नं०	विषय		पृष्ठ
(१)	प्रकाशकीय वक्तव्य	...	१
(२)	भूमिका	... ...	३
(३)	दो शब्द	... ...	१५
(४)	संकेताक्षर सूची	... ...	१७
(५)	शुद्धाशुद्धि पत्र	... ...	२७
(६)	धन्यवाद	... ...	३१
(७)	दिगम्बरत्व (मनुष्य की आदर्श स्थिति)	...	१
(८)	धर्म और दिगम्बरत्व	... ...	९
(९)	दिगम्बरत्व के आदिप्रचारक ऋषभदेव	...	१४
(१०)	हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व	... ...	२१
(११)	इस्लाम और दिगम्बरत्व	... ...	३७
(१२)	ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु	...	४४
(१३)	दिगम्बर जैन मुनि	... ...	४७
(१४)	दिगम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम	...	५५
(१५)	इतिहासातीत काल में दिगम्बर मुनि	...	७४

नं०	विषय			पृष्ठ

प्रकाशकीय वक्तव्य।

जिस समय मांडवी ज़िला सूरत में सरकार ने मुनियों के स्वतन्त्र विहार में अड़चन डाली थी उस समय दिग० जैन शास्त्रार्थसंघ की तरफ से दिगम्बर मुनियों के दिगम्बरत्व के समर्थन के साथ ही साथ उनके स्वरूप को जनसाधारण तक पहुंचाने के हेतु 'दिगम्बरत्व और दिगम्बरमुनि' नामकी पुस्तक के निर्माण की सूचना दी गई थी। बड़े हर्ष की बात है कि मुझे अब इस बात का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि मैं उस पुस्तक को आपके कर कमलों में उपस्थित कर रहा हूँ। पुस्तक के सुयोग्य लेखक, समाज के अद्वितीय ऐतिहासिक विद्वान, बा० कामताप्रसाद जी के ही असीम परिश्रम का फल है कि जो इस थोड़े से समय में यह ग्रन्थरत्न आपकी सेवा में उपस्थित किया जा सका है। लेखक महोदय के इस सहयोग का संघ अत्यन्त आभारी है। यहां मैं अम्बाला के उन महानुभावों को जिन्होंने कि आर्थिक सहायता देकर पुस्तक के प्रकाशन में हमारी सहायता की है धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। सहायताकी रकम दानी महानुभावोंकी 'शुभनामावलिके साथ ही साथ टाइटिल के दूसरी तरफ प्रकाशित कर दी गई है।

उन पुस्तकों में से जिनके प्रमाणों का उल्लेख कि प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है कुछ तो मूल्य से खरीदी गई हैं तथा बाकी की भारत के प्रसिद्ध २ पुस्तकालयों से मंगाई गई थीं;

यही कारण है कि प्रस्तुत पुस्तक में इसही प्रकार की अन्य पुस्तकों से कहीं अधिक व्यय हुआ है।

जिस प्रस्ताव में संघ ने इस पुस्तक के निर्माण का निश्चय किया था उसही में यह भी निश्चित किया था कि पुस्तक की एक अच्छी संख्या में बिना मूल्य अजैन विद्वानों और योग्य व्यक्तियों को भेंट किया जाय और इस पर उनकी सम्मति प्राप्त की जाय।

इनही कारणों की वजह से सहायता मिलने पर भी पुस्तक का मूल्य एक रुपया रक्खा गया है।

यद्यपि आवश्यकीय तो यह था कि यह पुस्तक हर एक भाषा में छपती, ताकि दिगम्बरत्व की मान्यता और उसके आदर्श को विभिन्नभाषाभाषियों तक पहुँचाया जा सकता, किन्तु दुःख है कि हमारे पास इतनी शक्ति नहीं थी ताकि हम ऐसा कर सकते। यदि हमारे विचारशील पाठकोंने हमारे इस कार्यको अपनाया और इस कार्यमें हमारा हाथ बटाया तो हमें पूर्ण आशा है कि हम शीघ्र ही इस पुस्तक को, संसार को नहीं तो कम से कम भारत की प्रचलित भाषाओं में तो अवश्य, पाठकों के कर कमलों में अर्पण कर सकेंगे।

विनीत—

मंगलसैन जैन मन्त्री,

चम्पावती पुस्तकमाला–प्रकाशनविभाग–

श्री भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रार्थ संघ।

भूमिका ।

मंगलमय, मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।
नमो ताहि जातेभये अरहन्तादि महान ॥

साधुओं के लिये दिगम्बरत्व आवश्यकीय है या अनिवार्य ? यदि आवश्यकीय है तब तो वह त्यागा भी जा सकता है। ऐसी बहुतसी वस्तुयें हैं चाहे वे सांसारिक न भी हों और आत्मोन्नति से ही सम्बन्ध रखने वाली क्यों न हों, किन्तु यदि उनका अस्तित्व इस ही कोटि में है तब तो उनका परिहार भी किया जासकता है; क्योंकि ऐसा करने से मार्ग में कोई रुकावट नहीं आती। किसी एक उपयोगी शास्त्र को ही लेलीजिये; उसका अस्तित्व साधुओंके लिये अवश्य आवश्यकीय है, किंतु उसका यह भाव कदापि नहीं कि उसके अभाव से उनके साधुत्व में भी बाधा आती है। साधुओं के लिये दिगम्बरत्व यदि अनिवार्य है और उसके अभाव से उनके साधुत्व में ही बाधा उपस्थित होती है तो वह कौनसी युक्ति है जो कि मनुष्य के मस्तिष्क को इस परिणाम तक लेजाती है। यही एक बात है जिसके हल करने की आवश्यकता है और जिसके हल होजाने से उक्त विषय की समस्त अड़चनें दूर हो जाती हैं।

साधु शब्द का अर्थ साधनोतीति साधुः अर्थात् जो सिद्ध करता है वह साधु है।

साधुशब्द जिस धातु से (Verb) बना है वह अक-

र्मक (Intransitive) है; अतः उसके कर्त्ता की क्रिया के आश्रय के हेतु किसी अन्य पदार्थ का अस्तित्व आवश्यकीय नहीं। ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि वह आत्मा जो कि साधु शब्द का वाच्य है या जो उस अवस्था को पहुँच चुका है जिस किसी को सिद्ध करता है वह ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व कि उससे भिन्न नहीं दूसरे शब्दों में उसको कहना चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि साधु के सिद्ध करने योग्य वस्तु उस के गुण ही हैं। इसही प्रकार मुनि आदिक शब्द भी इसही बात का समर्थन करते हैं।

ऐसी अवस्था में जब कि यह स्पष्ट होजाता है कि साधु उसे कहते हैं कि जो अपने गुणों को सिद्ध करता हो; वे गुण जो साधु के हैं या जिनको कि साधु सिद्ध करता है कौन से हैं इस प्रश्न का होना एक स्वाभाविक बात है।

साधु जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कोई एक भिन्न पदार्थ नहीं, किंतु आत्माकी एक अवस्था विशेष का नाम ही साधु है; अतः साधु के गुणों से तात्पर्य यहां आत्मिक गुणों से ही है। यदि स्थूल दृष्टि से कहा जाय तो यों कह सकते हैं कि गुण उसे कहते हैं जो कि हमेशा और हर हिस्से में रहें—तथा जिसके अस्तित्व के हेतु किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता न हो; ऐसी बातें जिनका अस्तित्व कि आत्मा में उपर्युक्त प्रकार से मौजूद है ज्ञान दर्शन सुख और शक्ति आदिक हैं। आत्मा की ऐसी कोई अवस्था या प्रदेश नहीं जहां कि ज्ञान

गुण का अस्तित्व न हो। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक हिस्से में जब तक कि आत्मा का अस्तित्व उस में रहता है ज्ञान का कार्य अनुभव में आता है, उस ही तरह उसकी हर अवस्था में चाहे वह दिनसे सम्बन्ध रखने वाली हो या रात से, सोती हुई अवस्था की हो या जागती हुई अवस्था की, जाग्रत अवस्था में तो ज्ञान के अनुभव से किसी को शंका का स्थान ही नहीं। अब रह जाती है निद्रितावस्था, इसके संबन्ध में बात यह है कि निद्रितावस्था में ज्ञान का अभाव नहीं होता, किन्तु शरीर पर निद्रा का इस प्रकार का प्रभाव पड़ जाता है कि जिससे वह जाग्रत अवस्था की भांति अनुभव में नहीं आता। निद्रा की अवस्था ठीक इसही भांति की होती है जैसी कि किलोरोफ़ार्म के नशे की। जिस प्रकार किलोरोफ़ार्म शरीर के अवयवों पर इस प्रकार का प्रभाव करता है कि वे ज्ञान के उपयोग रूप होने में सहायक नहीं हो सकते, उसही प्रकार निद्रा भी। यदि ऐसा होता कि निद्रितावस्था में ज्ञान न रहता तो निद्रा में न्यूनाधिकता का सद्भाव ही कैसे मालूम होता? शास्त्रकारों ने ऐसे ज्ञान को लब्धिरूप कहा है तथा उसको जो कि स्पष्टरूप से अनुभव में आता है उपयोगरूप। जिस प्रकार कि ज्ञान का अस्तित्व आत्मामें अबाधित है उसही प्रकार उसका कारणों की अपेक्षा का न रखना भी। यदि इसको कारणों की आवश्यक्ता होती तो उसका सर्वथा निर्बाधित अस्तित्व आत्मा में न होता, किन्तु तब २ ही

होता, जब २ कि उसके कारण मिलते । किसी वस्तु का अस्तित्व और उसमें न्यूनाधिकता में दो बातें हैं। अतः ज्ञानमें न्यूनाधिकता का होना उसके निर्बाधित अस्तित्व पर कुछ भी प्रभाव नहीं रख सकता। यह ज्ञान जिसका कि आत्मा में निर्बाध रूप से अस्तित्व सर्वदा से रहता है एक पूर्ण रूप है। इसका पूर्ण निजीस्वरूप ऐसा है कि जिसमें कि जगत के समस्त पदार्थ प्रतिभासित होते हैं। यही एक गुण है जिसके पूर्णशुद्ध होने पर आत्मा सर्वज्ञ होता है।

किसी गुण का किसी रूप होना और उसका वर्त्तमान में तद्रूप में दृष्टिगोचर न होना, यह कोई विरुद्ध बात नहीं। यह संभव है कि उसके उस रूप में कोई बाधक हो और उसका उस रूप में अनुभव न हो सकता हो। एक नहीं ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जो कि हमारे उपर्युक्त भाव का समर्थन करती हैं। स्वर्ण पाषाण को ही ले लीजिये उसमें स्वर्णरूप विद्यमान है, किन्तु उसका प्रतिभास अन्य शुद्ध स्वर्ण की भांति नहीं होता, यही अवस्था ज्ञान की है। ज्ञान को सर्वज्ञरूप सिद्ध करने वाली अनेक युक्तियों में से एक अति सरल का समावेश हम यहां किये देते हैं। रेखा गणितका यह एक अति सरल सिद्धान्त है कि तीन लाइनें हैं तथा पहिली लाइन दूसरी से और दूसरी तीसरी के बराबर है तो उससे यह स्पष्ट है कि पहिली और तीसरी लाइनें बराबर हैं। ठीक इस ही प्रकार जगत में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो कि ज्ञेय न हो

याने जो किसी से भी जाने जाने योग्य न हो। यहां के पदार्थों को हम जानते हैं या जान सकते हैं तो यूरोप के पदार्थों को वहां के। इसही प्रकार अन्य स्थानों के पदार्थों को अन्य स्थानों के। यही बात भूत और भविष्यत पदार्थों के सम्बन्ध में है। यदि वर्त्तमान के पदार्थों को वर्त्तमान के जीव जानते हैं तो भूत और भविष्यत के पदार्थों को भूत और भविष्यत के जीव। वे जीव जिनके ज्ञेय में जगत के सब पदार्थ हैं समगुण हैं। ऐसी अवस्था में एक जीव जगत के सब पदार्थों को जान सकता है, और इस ही का नाम सर्व पदार्थों के ज्ञान की शक्ति का रखना है।

जिस प्रकार कि आत्मा का एक ज्ञान गुण है और वह पूर्णतामय है, उसही प्रकार सुख भी—सुख से तात्पर्य निराकुलता से है। निराकुलता एक आत्मीक गुण है; इसका बाहिरी वस्तुओं से कोई सम्बन्ध नहीं। यह सम्भव है कि हमारे मनोबल के कारण बाहिरी पदार्थों का असर हम पर पड़ता हो और उसके कारण हम आकुलता महसूस करने लगें तथा उस विषय के मिलने से हमारी वह आकुलता दूर हो जाय। किन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं हो सकता कि वह निराकुलता विषयों से आई है। आकुलता और निराकुलता, ये तो दो आत्मिक अवस्थायें हैं। यह दूसरी बात है कि पर पदार्थ की मौजूदगी और गैर मौजूदगी इनमें निमित्त होती है। किन्तु वास्तव में हैं तो वे आत्मिक

अवस्थायें हों। जहां मन की प्रबलता होती है वहां निराकुलता के हेतु परपदार्थ का अस्तित्व आवश्यकीय भी नहीं है तथा जब कि निराकुलता ही सुख है तो यह तो स्वयं स्पष्ट होजाता है कि वह आत्मिक निजी सम्पत्ति है। इसका शुद्ध रूप भी पूर्णतामय है। जबकि ज्ञानादिक आत्मा की निजी सम्पत्ति पूर्णस्वरूप सिद्ध होजाती है तब अनन्त शक्तिके समर्थन के हेतु किसी अन्य युक्ति की आवश्यकता ही नहीं रहती। सर्वज्ञ स्वरूपज्ञान का अस्तित्व ही अनन्तशक्ति के सद्भाव को सिद्ध करता है यदि ऐसा न होता तो पूर्णज्ञान का सद्भाव भी अशक्य था। ज्ञान तो क्या कोई भी ऐसी चीज़ नहीं जिसका अस्तित्व तदनुकूल बलहीन में हो।

जिस प्रकार हमको उपर्युक्त आत्मिक गुणोंके समर्थन में प्रमाण मिलते हैं, उसही प्रकार इस बातका अनुभव भी कि वे गुण हमारी आत्मा में पूर्णरूप में नहीं। साथ ही कुछ ऐसी बातें हैं जो कि आत्मिक गुण नहीं जैसे राग द्वेष और मोहादिक। इनके आत्मिक गुण न होने में यही एक दलील पर्याप्त है कि ये सर्वदा स्थायी और निस्कारणक नहीं। ऐसी अवस्थामें यानें एक तरफ़ तो ज्ञानादिक के आत्मिक गुण और उनके पूर्णरूप में प्रमाणों का मिलना और दूसरी तरफ़ उनके पूर्णरूप का अनुभव न होना तथा आत्मा में रागादिक के मिलने से एक जटिल प्रश्न उपस्थित होजाता है कि ऐसा क्यों?

जिस प्रकार कि राग, द्वेष, मोह, और आकुलतादिक

आत्मिक गुण नहीं, क्योंकि उनका अस्तित्व आत्मा में हमेशा नहीं रहता, उसही प्रकार ये अनात्मिक भी नहीं; क्योंकि इनका आत्मामें ही अनुभव होता है; इसही प्रकार इनमें न्यूनाधिकता भी प्रतीत होती है। इससे यही परिणाम निकलता है कि आत्मातिरिक्त कोई अन्य ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव से कि आत्मिक गुणों की ही यह अवस्था होजाती है और उसकी कमोबेशी से ही रागादिक में कमीबेशी रहती है। इसही— अनात्मिक वस्तु को जैन दार्शनिकों ने कर्मसंज्ञा दी है।

पुद्गल (matter) में अनेक शक्तियां हैं। उन ही शक्तियोंमें से एक आत्मिक गुणोंको विकारी करने की भी है। शराबका नशा और क्लोरोफार्मका प्रभाव इसके जीते जागते दृष्टान्तहैं। जिस प्रकार कि पुद्गलकी अन्य शक्तियां पुद्गल की हर एक अवस्था में प्रगट नहीं होतीं, उनके प्रकाश के लिये पुद्गल (matter) की खास २ अवस्थाओं की आवश्यकता है, इसी प्रकार उस शक्ति के विकास के लिये भी। वह पुद्-गल स्कन्ध जो कि इस शक्ति के विकास योग्य होजाता है, जैन दार्शनिकों ने उसका कार्माणस्कन्ध संज्ञा दी है।

जिस प्रकार आत्मा में रागादिक का अस्तित्व कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से सिद्ध करता है, उसही प्रकार कर्मों का अस्तित्व भी उसके कारणों का। वे कारण जो कि पुद्गल के कार्माणस्कन्ध को कर्मरूप परिणत होने में निमित्त होते हैं, आत्मिक ही होने चाहियें; क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध और

उनका फल आत्मा में ही होते हैं। आत्मिक होते हुए भी वे आत्मा के शुद्ध स्वरूप नहीं, यदि वे ऐसे होते तो वे बन्ध के कारण ही क्यों होते ? दूसरे उनके निमित्त से जिसका संबंध आत्मासे होता है वह उसपर विकारी प्रभाव नहीं कर सकता था। इससे स्पष्ट है कि वे आत्मिक भाव जो कि कार्माण-स्कन्धको कर्मरूप परिणत करते हैं अवश्य विकारी हैं। इसही प्रकार अगाड़ी २ विचार करने से विकारीभाव और कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से अनादि प्रमाणित होता है, यह बात अवश्य है कि अनादि से अबतक के विकारीभाव और कर्म एक नहीं किन्तु भिन्न २ हैं। किन्तु इसका यह भाव तो कदापि नहीं और न हो ही सकता है कि उनका सम्बन्ध आत्मा से अनादि नहीं !

जिस प्रकार उस matter पर जिसकी कि फ़ोनोग्राफ़ की पलेटें बनती हैं शब्दों के अनुसार ही फल होता है और अवसर पड़ने पर वह तदनुरूप ही शब्द करता है, उस ही प्रकार आत्मा के विकारीभावों का कार्माणस्कन्ध पर। जिस समय कर्म उदय में आता है वह फ़ोनोग्राफ़ की पलेट की तरह तदनुरूप ही प्रभाव आत्मा पर करता है !

जिस प्रकार कि आत्मिक विकारी भावों से पुद्गलों का कर्मरूप होना अनिवार्य है, उस ही प्रकार कर्मों के उदय से आत्मा का विकारी होना नहीं ! इसमें दो कारण हैं—एक तो यह कि कर्म पुद्गलरूप हैं, अतः उनकी फलशक्ति में कमी भी

की जा सकती है; दूसरी बात यह है कि यदि उस समय आत्मा प्रबल हुई तो उसके असर को अपने ऊपर न भी होने दे। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जीव के राग, द्वेष और मोहादिक ही विकारीभाव हैं, जिनके कारण कि जीव अबतक इस चक्कर में पड़ रहा है और जिसके कारण कि उसको अनेक यातनायें भोगनी पड़ती हैं; और यही मुख्य बात है जिसके कारण यह जीव जीवातिरिक्त पदार्थों में भी राग और द्वेष करता है।

जब तक जीव में इस प्रकार के परिणाम होते रहेंगे तबतक उसका सम्बन्ध भी कर्मों से अवश्य होता रहेगा। अतः उन जीवों को जो कि इस चक्कर से बचना चाहते हैं यह अनिवार्य है कि वे राग और द्वेषादिक का बिलकुल अभाव करें।

जिस प्रकार कि यह बात सत्य है कि वाह्य पदार्थों का कमजोर आत्माओं पर प्रभाव पड़ता है, उसही प्रकार यह भी कि बिना दूसरे पदार्थों के राग और द्वेष के उनसे जीव का सम्बन्ध रहना भी असंभव है! अतः राग और द्वेषादिक का अभाव धीरे २ या एक दम राग और द्वेषादिक के कारण एवं उनके कार्य वाह्य पदार्थों के सम्बन्ध त्याग से हो सक्ता है। इसही बातको लेकर जबसे मनुष्य ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश करता है इस बात का पूर्ण ध्यान रखता है। ध्यान ही नहीं बल्कि उसके लिए सतत प्रयत्न भी करता है कि वह राग

और द्वेष का सम्बन्ध कम करता जाय और जब उसकी आत्मा प्रबल हो जाती है, वह सांसारिक सब पदार्थ यहां तक कि वस्त्र भी त्याज्य समझता है, और उनका त्याग कर देता है और आत्म ध्यान में रहता हुआ कर्मों के नाश में लग्न हो जाता है।

वस्त्र-त्याग से भाव केवल बाहिरी वस्त्र त्याग से ही नहीं। ऐसे त्याग को तो जैनदर्शन त्याग ही नहीं कहता किन्तु वस्त्रत्याग के साथ ही साथ उसके विचार तो दूर रहे उनकी भावना का भी हृदयसे निकल जाने से है। इसही दृष्टि से तो कहा जाता है कि नंगे तन के साथ नंगे मनका होना भी अनिवार्य है और इसही का नाम दिगम्बरत्व है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यह जीव अनादिकाल से रागादिक भावों से कर्मबन्ध और उनके प्रभावसे रागादिक को करता चला आरहाहै और रागादिक के बिना वाह्य पदार्थों का सम्बन्ध आत्मा से नहीं रहसकता तथा रागादिक से कर्म बन्धका होना अनिवार्य है। अतः उन जीवों को जोकि इस सम्बन्ध को तोड़कर सदैव के लिए शुद्ध स्वरूपस्थ होना चाहते हैं आवश्यकीय ही नहीं अपितु अनिवार्य है कि रागादिक को घटाते २ यहां तक घटादें कि आत्मातिरिक्त सब पदार्थों का त्याग उनसे होजाय, और ज्ञान, ध्यान और तपमें लीन रहते हुए आत्मिक शक्ति को इतना प्रबल करें कि अगाड़ी हृदय में आने वाले कर्मों का प्रभाव ही उन पर ना पड़े। ऐसा होनेसे

उनकी आत्माओं में रागादिक का अभाव होगा और इस से अगाड़ी कर्मबन्धका अभाव होगा और जो पहिले बंधा हुआ कर्म है वह भी नष्ट होता जायगा। इससे एक समय ऐसा आयगा कि जब उनकी आत्मायें कर्मके सम्बन्ध से बिलकुल मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर लेंगी।

जिस प्रकार किसी विषयक साधारण ज्ञानके बिना तद्विषयक गंभीर ज्ञान नहीं हो सकता, मनुष्य में अल्पशक्ति के बिना आये महान् शक्ति नहीं आसकती, उसही प्रकार स्थूल रागपरिहार के बिना सूक्ष्मराग का परिहार होना भी अशक्य है। आत्मातिरिक्त परपदार्थों से जिनमें कि वस्त्र भी सम्मिलित हैं सम्बन्ध रखने वाला राग या वह राग जिसके वशीभूत होकर जीव उनसे सम्बन्ध रखता है योगियों की दृष्टिसे एक स्थूलराग है, तथा यह असंभवहै कि बिना रागके भी वस्त्र आदिक से सम्बन्ध रक्खा जाय। अतः उन साधुओं के लिए जोकि आत्मिक शुद्धिके खोजी हैं वस्त्रादिक समस्त परपदार्थों का परित्याग अनिवार्य है।

साधुओं का यह अनिवार्य दिगम्बरत्व जिस प्रकार सैद्धान्तिक सत्य है उसही प्रकार व्यावहारिक भी। इतिहास इसका साक्षीहै। दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि नामकी प्रस्तुत पुस्तक में जिसकी कि यह भूमिका है पुस्तक के सुयोग्य लेखक समाज के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान बा० कामताप्रसाद जी ने इस बातका बड़े ही गम्भीर आधारों से समर्थन किया है।

ऐसा कोई ऐतिहासिक आधार (जिसका कि समावेश विद्वान लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में किया है) नहीं जोकि दिगम्बरत्व का समर्थक न हो।

दिगम्बरत्व के समर्थन में प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन से प्राचीन शास्त्रोंके उल्लेखों एवं शिलालेख और विदेशी यात्रियों के यात्राविवरणों में से कुछ शब्दों का संग्रह भी बड़ी ही गंभीर खोज के साथ किया गया है। दिगम्बरत्व सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक सत्य है, अतएव वह सर्वतंत्रसिद्धान्त भी है। इसका स्पष्टीकरण भी हमारे सुयोग्य लेखक ने बड़े महत्व के साथ किया है। हर एक धर्मकी मान्य पुस्तकों से, चाहे वे मुसलमान धर्मकी हों या ईसाई धर्मकी, अथवा वैदिक धर्म की, इस विषय का समर्थन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। कानून की दृष्टि से भी दिगम्बरत्व अव्यवहार्य नहीं, इस बात के समर्थन के हेतु भी हमारे सुयोग्य लेखक ने किसी बात की कमी नहीं रक्खी। अधिक क्या, पुस्तक हर दृष्टिसे परिपूर्ण है और इसके लिए श्रीयुत बा० कामताप्रसाद जी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

'बोलो सत्य पन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर'

अम्बाला छावनी
२६ फ़रवरी १९३२ ई०

विनीत—
राजेन्द्रकुमार जैन,
न्यायतीर्थ।

मेरे दो शब्द !

पिछली गरमी के दिन थे। "जैनमित्र" पढ़ते हुये मैंने देखा कि श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला, दिगम्बर जैन मुनियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वार्ता एकत्र करने के लिये प्रयत्नशील है। यह विज्ञप्ति पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इतिहास से मुझे प्रेम है। मैं तब इस विज्ञप्ति के फल को देखने की उत्कण्ठा में था कि एक रोज़ मुझे संघ के महामंत्री प्रिय राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री का पत्र मिला। मेरी उत्कण्ठा चिन्ता में पलट गई। पत्र में शीघ्रातिशीघ्र दिगम्बर मुनियों के इतिहास विषय की एक वृहत् पुस्तक लिख देने की प्रेरणा थी। उस प्रेरणा को यों ही टाल देने की हिम्मत भला कैसे होती ? उसपर वह प्रेरणा वस्तुतः समयकी आवश्यक्ता और धर्म की पुकार थी। मुनिधर्म मोक्ष का द्वार है—दिगंबरत्व उस धर्म की कुञ्जी है। नासमझ लोग उस कुञ्जी को छीन लेने के लिये वार करने को उतारू हों, तो भला एक धर्मवत्सल कैसे चुप रहे ? बस, सामर्थ्य और शक्ति का ध्यान न करके बड़े संकोच के साथ मैंने संघ का उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस स्वीकृति का ही फल प्रस्तुत पुस्तक है !

पुस्तक क्या है ? कैसी है ? इन प्रश्नों का उत्तर देना मेरा काम नहीं है। मैंने तो मात्र धर्मभाव से प्रेरित होकर 'सत्य' के प्रचार के लिये इसको लिख दियाहै। हिन्दू—मुसलमान—ईसाई—यहूदी—सबही प्रकारके लोग उसे पढ़ें और अपनी बुद्धि की तक (तराज़ू) पर उसे तौलें और फिर देखें, दिगम्बरत्व मनुष्य समाज की भलाई के लिये कितनी ज़रूरी और उपयोगी चीज़ है ! इस रीति को परख ही उन्हें इस

पुस्तक की उपयोगिता बना देगी। हां, यह लिख देना मैं अनुचित नहीं समझता कि अखिल भारतीय दि० मुनि रक्षक कमेटी ने इस पुस्तक को अपने काम में सहायक पाया है। 'असेम्बली' में दिगम्बर मुनिगण के निर्बाध विहार विषयक 'बिल' को उपस्थित कराने के भाव से इस पुस्तक से अंग्रेजी में 'नोट्स' तैयार कराकर माननीय असेम्बली मेम्बरों में वितरण किये गये थे। विश्वास है, उपर्युक्त वातावरण में कमेटी का उक्त प्रयत्न सफल हो जायगा और उस दशा में मैं अपने श्रम को सफल हुआ समझूंगा।

अन्त में मैं अपने उन मित्रोंका आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को लिखने में किसी न किसी तरह उत्साहित किया है। संघ ने काफी साहित्य मेरे सामने उपस्थित कर दिया और पुस्तक को शीघ्र ही प्रकाशित होने दिया, इसके लिये मैं उपकृत हूं। यह सब कुछ भाई राजेन्द्र-कुमारजी के उत्साहका परिणाम है। श्रीइम्पीरियल लायब्रेरी कलकत्ता, आदिसे मुझे ज़रूरी पुस्तकें पढ़ने को मिली हैं; इस लिये यहां उनको भी मैं भुला नहीं सकता हूँ। "चैतन्य" प्रेस के मैनेजर भाई शान्तिचन्द्र ने आशा से अधिक शुद्ध और सुन्दर रूप में पुस्तक को छापा है। अतः उनका भी उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। उन सबका मैं आभारी हूँ।

आशा है, पुस्तक अपने उद्देश्य को सिद्ध हुआ प्रगट करने में सफल होगी। इतिशम्

अलीगंज, (एटा)
२५-२-१९३२

विनीत—
कामताप्रसाद जैन

संकेताक्षर-सूची ।

नोट—प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनका उल्लेख निम्नलिखित संकेताक्षरों में यथास्थान कर दिया गया है। पाठकगण संकेताक्षर का भाव इस पर से जान लें। उक्त प्रकार सहायता लेने के लिये इन ग्रन्थों के लेखकों के हम आभारी हैं :—

हस्तलिखित ग्रन्थ :—

१. आठकर्मनी १४८ प्रकृतिनो विचार—मुनि वैराग्यसागरकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

२. उत्तरपुराण भाषा—कवि खुसालचन्द कृत (श्री दि० जैन मंदिर भंडार अलीगंज)

३. पंचकल्याणक पूजा पाठ—मुनि श्रीभूषणकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

४. भक्तामर चरित—कवि विनोदीलालकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

५. भावत्रिभंगी—जैन मंदिर अलीगंज (एटा)

६. मैनपुरी जैन गुटका—बड़ा पंचायती मंदिर, मैनपुरी में विराजमान।

७. यशोधर चरित्—कवि पद्मनाभ कायस्थ विरचित (श्री दि० जैन मंदिर मैनपुरी)

८. श्री जिनसहस्रनाम—मुनि धर्मचन्द्र कृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

९. श्री पद्मपुराण भाषा—कवि खुसालचन्द कृत (श्री दि० जैनमंदिर अलीगंज)

१०. श्री यशोधर चरित्—श्री सोमकीर्ति कृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

संस्कृत-हिन्दी-गुजराती आदि मुद्रित ग्रंथ :—

१. अष्ट०—अष्टपाहुड़; श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (श्री अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला बम्बई)

२. आईन-इ-अकबरी—(फारसी) नवलकिशोर प्रेस लखनऊ (१८९३)

३. आचा०—आचाराङ्ग-सूत्र; श्वेताम्बर आगम-ग्रन्थ, श्वे० मुनि अमोलक ऋषि के हिंदी अनुवाद सहित (हैदराबाद दक्षिण संस्करण)

४. आरोग्य०—आरोग्यदिग्दर्शन, ले० महात्मा गाँधी (बम्बई, १९७२)

५. ईशाद्य०—ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद ed. W. L. Shastri-Paniskar (3rd. ed. Nirnaya-Sagar Press 1925)

६. जैध०—जैनधर्म, प्रो० ग्लाजेनाप्पके जर्मन ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद (भावनगर १९८७)

७. जैप्र०—जैनधर्म प्रकाश; ले० ब्र० शीतलप्रसाद जी (बिजनौर १६२७)

८. जैप्रयलेसं०—जैन प्रतिमा और यंत्र लेखसंग्रह; ले० बाबू छोटेलाल (कलकत्ता १६२३)

६. जैम०—जैनधर्म का महत्व; सं० श्री सूरजमल जी (बम्बई १६११)

१०. जैशिसं०—जैनशिलालेख संग्रह; ले० प्रो० हीरालाल (मा० ग्रं० बम्बई)

११. ठाणा०—ठाणाङ्ग सूत्र; श्वेताम्बर आगम ग्रंथ; श्वे० मुनि अमोलक ऋषिकृत हिन्दी अनुवाद सहित (हैदराबाद संस्करण)

१२. द्रसं०—द्रव्यसंग्रह; श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत (S. B. J. Arrah 1917)

१३. दाठा०—दाठावंसो (बौद्धग्रन्थ); ed. Dr. B.C. Law (Lahore 1925)

१४. दाम०—दानवीर माणिकचन्द्र, ब्र० शीतलप्रसाद (सूरत)

१५. दिजैडा०—दिगम्बर जैन डायरेक्टरी (श्री खेमराज कृष्णदास बम्बई, १६१४)

१६. दिमु०—दिगम्बर मुद्रा की सर्वमान्यता; के० भुजबलि शास्त्री (आरा, २४५६)

१७. दिमुनि०—दिगम्बर मुनि; ले० बा० कामताप्रसाद जैन (दिल्ली १६३१ ई०)

१८. दीघ०—दीघनिकाय (बौद्ध ग्रंथ), (Pali Texts Society Series)

१९. देजै०—देवगढ़ के जैनमंदिर; ले० श्री विश्वम्भरदास गार्गीय।

२०. प्राजैलेसं०—प्राचीन जैन लेखसंग्रह, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (वर्धा १९२६)

२१. पंत०—पञ्चतन्त्र (इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग)

२२. फाह्यान—फाह्यान का भारत भ्रमण (इण्डियन-प्रेस लि० प्रयाग)

२३. बवि०—बनारसी विलास; कविवर बनारसीदास कृत (बम्बई २४३२ वी०)

२४. बंप्राजैस्मा०—बम्बई प्रान्त के जैनस्मार्क; ब्र० शीतलप्रसाद कृत (सूरत, १९२५)

२५. बंबिओजैस्मा०—बंगाल बिहार ओड़ीसाके जैन-स्मार्क; ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत।

२६. भद्र०—भद्रबाहुचरित्, श्री उदयलालजी (बनारस, २४३७)

२७. भपा०—भगवान पार्श्वनाथ; ले० बा० कामता-प्रसाद जैन (सूरत, २४५०)

२८. भम०—भगवान महावीर, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५५)

२९. भमबु०—भगवान महावीर और म० बुद्ध, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५३)

३०. भमी०—भट्टारकमीमांसा (गुजराती); (सूरत, २४३८)

३१. भाइ०—भारतवर्षका इतिहास; प्रो० ईश्वरीप्रसाद कृत (इंडियन प्रेस)

३२. भाप्रारा०—भारतके प्राचीन राजवंश; सा० श्री विश्वेश्वरनाथ रेउकृत भाग १—३ (बम्बई १६२० व १६२५)।

३३. मजैइ०—मराठी जैनलोकाचें इतिहास; श्री अनंततनय कृत (बेलगांव १६१८ ई०)

३४. मज्झिम०—मज्झिमनिकाय (बौद्ध ग्रंथ) (Pali Texts Society Series)

३५. मप्राजैस्मा०—मध्यप्रांतीय जैनस्मार्क; ब्र० शीतलप्रसादजी कृत (सूरत)

३६. मजैस्मा०—मद्रास, मैसूर प्रान्तीय जैनस्मार्क; ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत, २४५४)

३७. मूला०—मूलाचार; श्री वट्टकेर स्वामी कृत

३८. रश्रा०—रत्नकरण्डक श्रावकाचार; सं० श्री युगलकिशोर मुख्तार (मा० ग्रं० बम्बई, १६८२)

३६. राइ०—राजपूताने का इतिहास; रा० ब० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा (अजमेर १६८२)

४०. लाटी०—लाटी संहिता; श्री पं० दरबारीलाल द्वारा संपादित (मा० ग्रं० बम्बई १६८४)

४१. विर०—विद्वद्रत्नमाला; श्री नाथूराम प्रेमीकृत (बम्बई १६१२ ई०)

४२. विको०—विश्वकोष; सं० श्री नगेन्द्रनाथ वसु (कलकत्ता)

४३. बृजैश०—बृहत् जैनशब्दार्णव भा० १; ले० श्री बा० बिहारीलाल जी 'चैतन्य' (बाराबङ्की १९२५ ई०)

४४. वेजै०—वेद पुराणादि ग्रंथों में जैनधर्म का अस्तित्व; श्री मक्खनलाल कृत (दिल्ली १९३०)

४५. सजै०—सनातनजैनधर्म; श्री चम्पतराय कृत

४६. सागार०—सागारधर्मामृत; सं० श्रीलालारामजी (सूरत २४४२)

४७. संप्राजैस्मा०—संयुक्त प्रान्तीय जैनस्मारक; श्री ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (प्रयाग १९२३)

४८. सूस०—सूरीश्वर और सम्राट; ले० श्रीकृष्णलाल (आगरा १९८०)

४९. श्रुता०—श्रुतावतार कथा; श्री इन्द्रनन्दि कृत (बम्बई २४३४ वीर सं०)

५०. हुभा०—हुयेनसांग का भारतभ्रमण; श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा (इंडियनप्रेस प्रयाग १९२९ ई०)

पत्र-पत्रिकायें :—

५० अ. अनेकान्त—मासिक पत्र, संपादक श्री जुगलकिशोर मुख्तार (दिल्ली)

५१. जैमि०—जैनमित्र, बम्बई प्रा० दि० जैन सभा का मुखपत्र (सूरत)

५२. जैसासं०—जैन साहित्य संशोधक, त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजय (पूना)

५३. जैसिभा०—जैनसिद्धान्तभास्कर; सं० श्री पद्मराज जैन

५४. जैहि०—जैन हितैषी; सं० श्री नाथूराम—श्री जुगलकिशोर जी (बम्बई)

५५. दिजै०—दिगम्बर जैन; सं० श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया (सूरत)

५६. पुरातत्व—गुजराती त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजयजी (अहमदाबाद)

५७. वीर—भा० दि० जैन परिषद् का मुखपत्र; सं० बा० कामताप्रसाद जैन व पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल (बिजनौर)

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथ:—

58. ADJB. = 'A Dictionary of Jain Bibliography' by V. S. Tank. (Arrah 1916)

59. AGT = 'A Guide to Taxilla' by Sir John Marshall (Calcutta, 1918)

60. AI. = 'Ancient India' by J. W. Mc. Crindle (1877 & 1901)

61. AISJ. = 'An Indian Sect of the Jainas' by Prof. Buhler (London, 1903)

62. AIT. = 'Ancient Indian Tribes' by Dr. B. C. Law (Lahore, 1926)

63. AR. = 'Asiatic Researches', ed. Sir William Jones. Vol. III (1799) & Vol. IX (1809)

64. ASM. = 'A Study of the Mahavastu' by Dr. B. C. Law (Calcutta 1930)

65. Bernier = 'Travels in the Mogul Empire' by Dr. Francis Bernier (Oxford, 1914)

66 BS = 'Buddhistic Studies' by Dr B C. Law (Calcutta 1931)

67. CHI. = 'Cambridge History of India', Vol. I ed. Prof. E. J. Rapson--1922

68. DJ. = 'Der Jainismus' (German) by Prof. Dr. Helmuth Von Glassenapp. Ph. D. Berlin 1925)

69. EB = 'Encyclopaedea Britannica' 11th. ed. Vol. XV)

70. EHI. = 'Early History of India' 4th. ed) by Sir Vincient Smith (Oxford, 1924)

71. Elliot = 'History of India as told by its Historians' by Sir H. M. Elliot & Prof. John Dowson, Vol. I (1867) & III (London, 1871)

72. HARI. = 'History of Aryan Rule in India', by E. B. Havell.

73. HDW. = 'Hindu Dramatic Works' by H. H. Wilson (Calcutta, 1901)

74 HG. = 'Historical Gleanings' by Dr. B. C. Law (Calcutta 1922)

75. HKL. = 'History of Kanarese Literature' by E.P. Ria (Calcutta 1921)

76. IA. = Indian Antiquary (Bombay)

77. IHQ = Indian Historical Quarterly, ed. Dr. N. N. Law (Calcutta)

78 JBORS. = Journal of Bihar & Orissa Research Society, ed. K.P. Jayaswal M.A. (Patna)

79. JG. = Jaina Gazette, ed. Mr. C. S. Mallinath (Madras)

80. JOAM. = 'Jaina & Other Antiquities of Mathura' by Sir V. Smith

81. JRAS. = Journal of the Royal Asiatic Society (London)

82. JS. = 'Jaina Sutras' ed. Prof. H. Jacobi (S. B. E., XLV)

83. KK. = 'Key of Knowledge' by Mr. C. R. Jain (3rd. ed. 1928)

84. LWB. = 'Life & Work of Buddhaghosha' by Dr. B. C. Law (Calcutta)

85. N.J. = 'Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C. R. Jain (Delhi 1931)

86. OII. = 'Original Inhabitants of India' by G. Oppert (Madras 1893)

87. Oxford. = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A. Smith (Oxford 1917)

88. PB. = 'Psalms of Brethren' ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913)

89. PS. = 'Panchastikaya-sara (S. B. J , Arrah)' ed. Prof. A. Chakraverty.

90. QJMS. = 'Quarterly Journal of the Mythic Society (Bangalore)'

91. QKM. = 'Questions of King Milinda' by T. W. Rhys Davids (S. B. E, —Vol XXXV)

92. Rishabh. = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C R. Jain (Allahabad 1929)

93. SAI. = 'Ancient India' by Prof. S K. Aiyangar, M. A. (London 1911)

94. SC. = 'Some Contributions of South India to Indian Culture', by Prof. S. K. Aiyangar (1923)

95. SPCIV. = 'Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley.' by R. B. Ramprasad chanda. B. A. (Calcutta 1929)

96. SSIJ. = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof. M. S. Ramaswami Ayyangar M. A. & B. Seshagiri Rao M. A. (Madras 1922)

शुद्धाशुद्धि-पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	१	यथा जातरूप	यथाजातरूप
१५	१०	परमभाववतं	परमभागवतं
१७	२	परिव्रजकोपनि-	परिव्राजकोपनि-
२४	४	प्रभृतियोऽत्यक्त	प्रभृतयोऽव्यक्त
२५	५	ध्यानअपरः	ध्यानतत्परः
२६	३	स्वाहेत्या तेन	स्वाहेत्यानेन
३०	१६	IHO.	IHQ.
३०	२२	IHO.	IHQ.
३५	६	fanaties	fanatics
३५	१०	reopect	respect
५५	६	सौथ	साथ
५७	५	ढाणांङ्ग	ठाणाङ्ग
,,	२१	ढाणा०	ठाणा०
,,	२२	IHO.	IHQ.
५८	१३	दुप्पञ्ञा	दुप्पञ्ञा
,,	१४	अह्रीक	अह्रीक
५६	१	अह्रीक	अह्रीक
,,	१५	थव	मव
६०	१३	तपोरक्त	तपोरत्न

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	१७	दाग्गहादग्न्या	दाग्रहादग्र्या
७६	२०	ओ० अलब्रेट	प्रो० अलब्रेट
७८	१६	वर्द्धमातान्तान्	वर्द्धमानान्तान्
८१	७	निजधर्म	जिनधर्म
८२	२४	पृ० ४	पु० ४
८४	२४	टीक	ठीक
८६	८	ज	जो
९०	३०	bought	brought
९२	२३	संपुत्त०	संयुत०
१०५	२३	०, भा०	जैहि०, भा०
१०६	१६	पादावन्	पादाब्ज
११४	४	श्रवण	श्रमण
११६	१८	Khaivela	Kharvela
„	२०	Kanvar	Kanvas
„	२३	CHE.	CHI.
१२३	१	वह	
१२७	५	religions	religious
१३०	४	शानिकीर्ति	शान्तिकीर्ति
१३६	१६	Cotting	rotting

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३६	२१से२३	हुआ०	हुमा०
१३७	१८से२२	हुआ०	हुमा०
१३८	१३से१६	हुआ०	हुमा०
१४६	१५	भेद्पाट	मेदपाट
१५२	२३	जैप्रा०	जैप्र०
१५७	५	चरित्"	चरित्" में
१६४	१२	राजवंश	राष्ट्र
१६६	७	उनके पास	
१६८	३	करणुधगण	करणूरगण
१७०	२	'महान्	के 'महान्
१७१	६	राज्य के	राजा के
१७१	२०-२१	हुआ०	हुमा०
१७६	६	रायमल्ल	राचमल्ल
,,	७	दिनम्बर	दिगम्बर
१७७	२०	विहिदेव	विट्टिदेव
१८३	५	मराठी एक	एक मराठी
,,	११	मजइ०	मजैइ०
,,	१४	आचार्य के श्री	आचार्य के शिष्य श्री
१८८	१३	मथुरा	मदुरा
१९७	१९	जानत	जनता
१९८	१६	द्रिया	क्रिया

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०६	२१	A. d.	A. D.
२१८	१४	रजित	पूजित
२१६	१८	इनके	इनमें
२२०	४	धाङ्कराना	धाङ्कराजा
२२२	१३	पांडुसेना	पांडु लेना
२२५	३	तत्पदे	तत्पट्टे
२३४	१२	मौज	भोज
२३५	१५	क–	गमक–
२३८	१	१३८	२३८
„	१७	कुटुम्बों	कुरुम्बों
२४०	१३	'वादी'	'वादी' विरुद्ध
२४४	२२	the	to
„	२३	Ar.	AR.
२४५	१	(१४५)	(२४५)
२४६	२१	(०)	(प्र०)
२४७	२२	Maljuzat-i	Malfuzat-i
२४८	२१	अलकेश्वसुर	अलकेश्वरपुर
२६१	१	(१६१)	(२६१)
२६६	२१	विनेय	त्रिनेय
„	२२	दि० जैन	मैनपुरी दि० जैन

धन्यवाद ।

इस ट्रैक्ट के छपवाने के लिये निम्न-लिखित महानुभावों ने सहायता प्रदान की है जिनको संघ हार्दिक धन्यवाद देता है: —

स्त्री समाज अम्बाला छावनी	१२५)
बीबी मनोहरी	१०१)
बाबू बैजनाथ	५१)
बाबू मुल्तानसिंह	५१)
ला० सोहनलाल उग्रसैन	२५)
ला० चोखेलाल राजालाल	२५)
ला० बनवारीलाल रतनलाल	२१)
ला० मीरीमल काशीनाथ	२१)
ला० मिट्ठनलाल जगतोप्रसाद जी	१५)
ला० बेहूमल पद्मप्रसाद	१५)
ला० जानकीदास जी	११)
पं० राजेन्द्रकुमार	११)
ला० मामराज रहतूमल	११)
ला० सुमेरचन्द्र राजालाल	११)
ला० भगवानदास प्यारेलाल	१०)
श्रीमती दुन्ना देवी	१०)
बा० सुमेरचन्द्र एकाउन्टेन्ट	५)
ला० कन्हैयालाल नत्थुमल	५)

मुंशी मुकन्दीलाल अम्बाला शहर	५)
ला० रामरिछपाल मुकन्दीलाल	५)
बा० माईदयाल मास्टर बी० डी० स्कूल	५)
ला० भिक्खूमल पान वाले	५)
बा० गैन्दामल वकील मुज़फ्फ़रनगर	४)
ला० हेमराज बाबू रेलवाले	४)
ला० फिरांजीलाल	२)
ला० हरिचन्द दयाचन्द	२)
ला० कुन्दनलाल छोटे लाल	२)
ला० उद्दमल दयाचन्द	२)
बीबी जयवंती	२)
ला० कुन्दनलाल देवीराम	२)
ला० सूरजभान हरज्ञानलाल	२)
ला० महावीरप्रसाद गैस फ़ैक्टरी	२)
ला० चतुरसैन	१)
ला० गैन्दामल	१)
मुन्शी धर्मदास	१)
ला० कल्लूमल	१)
ला० सून्डूमल	१)
ला० मिट्ठनलाल फेरी वाला	१)
ला० मानचन्द लालचन्द	१)
ला० टेकचन्द	१)
	५७६)

विनीत—प्रकाशक

उत्सर्ग

"णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।"

प्रभो.

भक्तिप्लावित-हृदय द्वारा प्रस्फुटित यह साहित्य-सुमन आपके पूज्य-पादों में सविनय उत्सर्ग है।

चरणाम्बुज-चञ्चरीकः—

अलीगञ्ज,
(एटा)
१-१-१९३२।

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः ।

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

[१]

दिगम्बरत्व !

(मनुष्य की आदर्श स्थिति)

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष है विकारशून्य होना है।"

- - म० गांधी ।

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें तरह तरह के रोग और दुःख घेर लेते हैं: परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जंगल के प्राणी रोगमुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से बचे रहते हैं।"

- रिटर्न टु नेचर ।

दिगम्बरत्व प्रकृतिका रूपहै। वह प्रकृतिका दिया हुआ मनुष्यका वेषहै। आदम और हव्वा इसी रूपमें रहे थे। दिशायेंही उनके अम्बर थे—वस्त्रविन्यास उनका वही प्रकृतिदत्त नग्नत्व था । वह प्रकृतिके अञ्चलमें सुखकी नींद

सोते और आनन्दरेलियां करतेथे। इसलिये कहते हैं कि मनुष्यकी आदर्श स्थिति दिगम्बरहै। नग्न रहनाही उसके लिये श्रेष्ठहै। इसमें उसके लिये अशिष्टता और असभ्यताकी कोई बात नहींहै; क्योंकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वयं अशिष्ट अथवा असभ्य वस्तु नहींहै। वहतो मनुष्य का प्राकृत रूपहै। ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नङ्गे रहते हुये कभी न लजाये और न वे विकारके चङ्गुलमें फंसकर अपने सदाचारसे हाथ धो बैठे। किन्तु जब उन्होंने बुराई-भलाई, पाप पुण्यका वर्जित फल खालिया, वे अपनी प्राकृत दशा को खोबैठे—सरलता उनकी जाती रही। वे संसारके साधारण प्राणी होगये! बच्चेको लीजिये, उसे कभीभी अपने नग्नत्वके कारण लज्जा का अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोगही उसकी नग्नता पर नाक भौं सिकोड़ते हैं। अशक्त रोगीकी परिचर्या स्त्री धाय करतीहैं—वह रोगी अपने कपड़ों की सारसंभाल स्वयं नहीं कर पाता; किन्तु स्त्री धाय रोगी की सब सेवा करते हुए ज़राभी अशिष्टता अथवा लज्जाका अनुभव नहीं करती। यह कुछ उदाहरणहैं जो इस बातको स्पष्ट करतेहैं कि नग्नत्व वस्तुतः कोई बुरी चीज़ नहींहै। प्रकृति भला कभी किसी ज़मानेमें बुरी हुईभी है? तो फिर मनुष्य नङ्गेपनसे क्यों झिझकता है? क्यों आज लोग नङ्गा रहना समाजमर्यादाके लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं? इन प्रश्नोंका एक सीधासा उत्तरहै—"मनुष्यका नैतिक पतन चरम

सीमाको आज पहुंच चुकाहै—वह पापमें इतना सना हुआहै कि उसे मनुष्यकी आदर्श-स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेपनको गंवाकर पापके पर्देमें कपड़ोंकी आड़ लेनाही उसने श्रेष्ठ समझाहै !" किन्तु वह भूलताहै, पर्दा पापकी जड़ है—वह गंदगीका ढेरहै। बस, जो ज़राभी समझ—विवेक—से काम लेना जानताहै, वह गंदगीको अपना नहीं सकता और नहींही अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्वसे चिढ़ सकताहै !

वस्त्रोंका परिधान मनुष्यके लिये लाभदायक नहींहै और न वह आवश्यकही है। प्रकृतिने प्राणीमात्रके शरीरकी गठन इस प्रकारकी है कि यदि वह प्राकृत वेषमें रहे तो उसका स्वास्थ्य निरोग और श्रेष्ठहो तथा उसका सदाचारभी उत्कृष्ट रहे। जिन विद्वानोंने उन भील आदिकोंको अध्ययनकी दृष्टिसे देखा है, जो नंगे रहतेहैं, वे इसी परिणाम पर पहुँचेहैं कि उन प्राकृत वेषमें रहने वाले 'जंगली' लोगों का स्वास्थ्य शहरों में बसने वाले सभ्यताभिमानी 'सज्जनों' से लाख दर्जा अच्छा होताहै और आचार विचारमें भी वे शहरवालोंसे बढ़े चढ़े होतेहैं। इस कारण वे एक वस्त्र परिधानकी प्रधानता-युक्त सभ्यताको उच्च कोटि पर पहुँचते स्वीकार नहीं करते*। उनका यह कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृतिकी होड़ कृत्रिमता नहीं

*"Having given some study to the subject,

कर सकती ! म० गाँधीके निम्न शब्दभी इस विषयमें द्रष्टव्य हैं :—

"वास्तवमें देखा जायतो कुदरतने चर्मके रूपमें मनुष्यको योग्य पोशाक पहनाईहै। नग्न शरीर कुरूप देख पड़ताहै, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्रहै। उत्तम २ सौन्दर्यके चित्रतो नग्न दशामें ही देख पड़तेहैं। पोशाकसे साधारण अङ्गोंको ढककर हम मानो कुदरतके दोषोंको दिखला रहेहैं। जैसे जैसे हमारे पास ज़्यादा पैसे होते जाते हैं वैसेही वैसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किसी भाँति और कोई किसी भाँति रूपवान बनना चाहतेहैं और बनठन कर काचमें मुंह देख प्रसन्न होतेहैं कि 'वाह मैं कैसा खूबसूरतहूँ ?' बहुत दिनोंके ऐसेही अभ्याससे अगर हमारी दृष्टि ख़राब न होगई हो तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि

I may say that Rev. J. F. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the travellers............ It is true that wearing of clothes goes with a higher state of the arts and to that extent with civilisation; but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank."

—"Daily News, London" of 18th. April 1913.

मनुष्य का उत्तम से उत्तम रूप उस की नग्नावस्था में ही है और उसी में उस का आरोग्य है।"*

इस प्रकार सौन्दर्य्य और स्वास्थ्य के लिये दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व एक मूल्यमई वस्तु है; किन्तु उस का वास्तविक मूल्य तो मानव समाज में सदाचार की सृष्टि करने में है। नग्नता और सदाचार का अविनाभावी सम्बन्ध है। सदाचार के बिना नग्नता कौड़ी मोल की नहीं है। नंगा मन और नंगा तन ही मनुष्य की आदर्श स्थिति है। इस के विपरीत गन्दा मन और नंगा तन तो निरी पशुता है। उसे कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा?

लोगों का खयाल है कि कपड़े-लत्ते पहनने से मनुष्य शिष्ट और सदाचारी रहता है। किन्तु बात वास्तव में इस के बर-अक्स है। कपड़े लत्ते के सहारे तो मनुष्य अपने पाप और विकार को छुपा लेता है! दुर्गुणों और दुराचार का आगार बना रह कर भी वह कपड़े की ओट में पाखण्डरूप बना सकता है, किन्तु दिगम्बर वेष में यह असम्भव है। श्री शुक्राचार्य जी के कथानक से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि—

शुक्राचार्य युवा थे, पर दिगम्बर वेष में रहते थे। एक रोज़ वह वहां से जा निकले जहां तालाब में कई देव कन्यायें नङ्गी होकर जल क्रीड़ा कर रही थीं। उनके नङ्गे तन ने देव रमणियों में कुछ भी क्षोभ उत्पन्न न किया। वे जैसी

* आरोग्य० पृ० ५७।

की तैसी नहाती रहीं और शुक्राचार्य अपने निकले चले गये। इस घटना की थोड़ी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहां आ निकले। उन को देखते ही देवकन्यायें नहाना-धोना भूल गईं। झटपट वे जल के बाहर निकलीं और अपने वस्त्र उन्होंने पहन लिये। एक नङ्गे युवा को देख कर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा न आई किन्तु एक वृद्ध शिष्ट-से-दिखते 'सज्जन' को देख कर वे लजा गईं; भला इस का क्या कारण? यही न कि नंगा युवा अपने मन में भी नंगा था—उसे विकार ने नहीं आघेरा था। इस के विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेष (?) में इस विकार को छिपाये रखने में सफल था; किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह निर्विकारी और सदाचारी था! अतः कहना होगा कि सदाचार की मात्रा नंगे रहनेमें अधिक है। नंगेपन—दिगम्बरत्व का वह भूषण है। विकारभाव को जीते बिना हो कोई नंगा रहकर प्रशंसा नहीं पा सकता। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिये कलङ्क है। न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-नेत्र मिल सकता है। इसी लिये भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसार सागरे भमइ!
णग्गो न लहइ बोहिं, जिण भावणवज्जिओ सुइरं!! *

---

*भाव पाहुड ६८ गाथा—अष्ट० पृ० २०६-२१०

भावार्थ—'नंगा दुःख पाता है, वह संसार सागर में भ्रमण करता है, उसे बोधि विज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि नंगा होते हुए भी वह जिनभावना से दूर है! इसका मतलब यही है कि जिनभावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है—उपयोगी है। और जिन भावना से मतलब रागद्वेषादि विकार भावों को जीत लेना है। इस प्रकार नंगा रहना उसी के लिये उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार भावों को जीतने में लग गया है—प्रकृतिका होकर प्राकृत वेष में रह रहा है। संसार के पाप-पुण्य, बुराई-भलाई का जिसे भान तक नहीं है, वही दिगम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है। और चूँकि सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिये भारतीय ऋषियों ने इसका विधान गृहत्यागी अरण्यवासी साधुओं के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं; यद्यपि यह बात ज़रूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्यकी आदर्श स्थिति होने के कारण मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक श्री भगवान ऋषभदेव ने गृहस्थों के लिये भी महीने के पर्वदिनों में नंगे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था † और भारतीय गृहस्थ उन के इस उपदेश का पालन एक बड़े ज़माने तक करते रहे थे!

इस प्रकार उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि दिगम्ब-

---

† सागार० अ० ७ श्लोक ७ व भमत्रु० पृ० २०५-२०७।

रत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है—आरोग्य और सदाचार का वह पोषक ही नहीं जनक है। किन्तु आजका संसार इतना पाप-ताप से झुलस गया है कि उस पर एक दम दिगम्बर-वारि डाला नहीं जा सकता! जिन्हें विज्ञान दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्विकारी दिगम्बर मुनि के वेष में विचरते हुए दिखाई पड़ते हैं। उन को देखकर लोगों के मस्तक स्वयं झुक जाते हैं। वे प्रज्ञा-पुञ्ज और तपो धन लोककल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊंच नीच, पशु-पक्षी—सब ही प्राणी उन के दिव्यरूप में सुख-शाँति का अनुभव करते हैं। भला-प्रकृति प्यारी क्यों न हो? दिगम्बर साधु प्रकृति के अनुरूप हैं। उन का किसी से द्वेष नहीं—वे तो सब के हैं और सब उन के हैं—वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्त्ति होते हैं। यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार जिनभावना से युक्त नहीं है तो जैनाचार्य कहते हैं कि उसका नग्नवेष धारण करना निरर्थक है—परमोद्देश्यसे वह भटका हुआ है—इह लोक और परलोक, दोनों ही उस के नष्ट हैं।‡ बस, दिगम्बरत्व वहीं शोभनीय है जहां परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नहीं किया गया है! तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

‡ "निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।
इमे विसे नत्थि परे विलोए, दुहओ विसे झिज्जइ तत्थ लोए।४६।"

—उत्तराध्ययन सूत्र अ्या० २०

"In vain he adopts nakedness, who errs

[२]

धर्म्म और दिगम्बरत्व !

"णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहि ।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥"

अर्थात्--अचेलक--नग्नरूप और हाथों को भोजनपात्र बनाने का उपदेश जिनेन्द्र ने दिया है। यही एक मोक्ष-धर्म-मार्ग है। इसके अतिरिक्त शेष सब अमार्ग हैं।

'धम्मो वत्थु सहावो'—धर्म्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निजरूप है; उसका प्रकृत स्वभाव है। इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है। धर्म्म और दिगम्बरत्व में यहाँ कुछ भेद ही नहीं रहता! सचमुच सदाचार के आधार पर टिका हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिवा और कुछ हो भी क्या सक्ता है?

जीवात्मा अपने धर्म्म को गंवाये हुये है। लौकिक दृष्टि से देखिये, चाहे आध्यात्मिक से, जीवात्मा भवभ्रमण के चक्कर में पड़ कर अपने निज स्वभाव से हाथ धोये बैठा है। लोक में वह नंगा आया है। फिर भी समाज-मर्यादा के कृत्रिम भय के

---

about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his. He is a loser in both respects in the world." —Js. II. P.106

कारण वह अपने निजरूप—नग्नत्व—को खुशी २ छोड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी संसार की माया-ममता में पड़ कर उस स्वानुभवानन्द से वञ्चित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की राग-द्वेष जनित परिणति है। रागद्वेषमई भावों से प्रेरित होकर वह अपने मन-वचन और काय की क्रिया तद्वत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में भरी हुई पौद्गलिक कर्म-वर्गणायें आकर चिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान दर्शन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। जितने अंशों में ये आवरण कम या ज्यादा होते हैं उतने ही अंशों में आत्मा के स्वाभाविक गुणों का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने निज-स्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब ही कर्म संबन्धी आवरणों को नष्ट कर देना होगा; जिनका नष्ट कर देना संभव है!

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म—स्वभाव—के घातक उसके पौद्गलिक सम्बन्ध हैं। जीवात्मा को आत्म-स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये इस पर-सम्बन्ध को बिल्कुल छोड़ देना होगा। पार्थिव संसर्ग से उसे अछूत हो जाना होगा। लोक और आत्मा—दोनों ही क्षेत्रों में वह एक मात्र अपनी उद्देश्य-प्राप्ति के लिये सतत उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाम

मात्र को वह न रख सकेगा। यथा जातरूप में रह कर वह अपने विभावमई रागादि कषाय शत्रुओं को नष्ट करने पर तुल पड़ेगा। ज्ञान और ध्यान शस्त्र लेकर वह कर्म-सम्बन्धों को बिल्कुल नष्ट कर देगा। और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा! किन्तु यदि वह सत्य मार्ग से ज़रा भी विचलित हुआ और बाल बराबर परिग्रहके मोह में आ पड़ा तो उसका कहीं ठिकाना नहीं! इसीलिये कहा गया है कि—

वालग्गकोडिमत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥१७॥

भावार्थः—बाल के अग्रभाग—नोकके बराबर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। वह आहार के लिये भी कोई बरतन नहीं रखता—हाथ ही उसके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ एक स्थान पर और एक दफे ही ऐसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है—स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो!

अब भला कहिये, जब भोजन में भी कोई ममता न रक्खी गई—दूसरे शब्दों में जब शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तब अन्य परिग्रह दिगम्बर साधु कैसे रक्खेगा? उसे रखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे तो प्रकृत रूप आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थों से सर्वथा भिन्न है! इस अवस्था में वह वस्त्रों का परिधान भी कैसे रख सकेगा? वस्त्र तो उसके मुक्ति-मार्ग में अर्गला

बन जायँगे। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन से मुक्त न हो पायगा। इसीलिये तत्ववेत्ताओं ने साधुओं के लिये कहा है कि—

> जह जाय रूवसरिसो तिलतुममित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
> जइ लेइ अप्पबहुय तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्॥१८॥

अर्थात्—मुनि यथाजातरूप है—जैसा जन्मना बालक नग्नरूप होता है वैसा नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है—वह अपने हाथ में तिलके तुष मात्रभी कुछ ग्रहण नहीं करता। यदि वह कुछ भी ग्रहण करले तो वह निगोद में जाता है!

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा पा लेना असंभव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सक्ता है, यह धर्मात्मा सज्जनों की जानी सुनी बात है। प्रकृति तो कृत्रिमता की सर्वाहुति चाहती है—तब ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य्य को विकसित करती है। चाहे पैग़म्बर या तीर्थङ्कर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है—समाज मर्यादा के आत्मविमुख बन्धन में पड़ा हुआ है—तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नहीं पा सक्ता! इसका एक कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उसके नियम प्रकृति के अनुरूप अटल और निश्चल हैं। उनमें कहीं किसी ज़माने में भी किसी कारण से रंचमात्र अन्तर नहीं पड़ सक्ता है! धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सक्ता है

जब वह पर-सम्बन्ध, पुद्गल के संसर्ग से मुक्त हो जावे। अब इस नियम के होते हुये भी पार्थिव वस्त्र-परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्मस्वातंत्र्य मिल जाय तो उसकी यह चाह आकाश-कुसुम को पाने की आशा से बढ़कर न कही जायगी। इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि—

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

भावार्थ—जिन शासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नहीं पा सक्ता है; जो तीर्थंकर होवें तो वह भी गृहस्थदशा में मुक्ति को नहीं पाते हैं—मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेष धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अतः नग्नत्व ही मोक्षमार्ग है—बाकी सब लिंग उन्मार्ग हैं!

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के कायल संसार के प्रायः सब ही प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं, जैसे कि आगे के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम—दिगम्बरत्व—को मान्यता देना ठीक भी है; क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नहीं रहता—वह धर्मस्वभाव रह ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सबन्ध स्पष्ट है!

---

[३]

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव !

'भुवनाम्भोज मार्तण्डं धर्मामृत पयोधरम् ।
योगि कल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषध्वजम् ।—ज्ञानार्णव

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सकता। वह तो एक सनातन नियम है, किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में श्री ऋषभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जन के निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नहीं है; पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला यथा जात रूप है और नग्नता के इस रूप का संस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा ज़रूर हुआ होगा! जैनशास्त्र कहते हैं कि इस कल्पकाल में धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था!

यह ऋषभदेव अन्तिम् मनु नाभिराय के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल में हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में जैनों के इन पहले तीर्थ-

ङ्कर को ही विष्णु का आठवां अवतार माना है और वहां भी इन्हें दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया है। जैनाचार्य उन्हें 'योगिकल्पतरु' कहकर स्मरण करते हैं।

हिन्दुओं के श्रीमद्भागवत में इन्हीं ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हें परमहंस—दिगम्बर—धर्मका प्रतिपादक लिखा है; यथा—

'एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद् भगवानृषभो देव उपशमशीलानामुपरतकर्मणाम् महामुनीनां भक्तिज्ञान वैराग्यलक्षणम् पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभावतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणीपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोवरितं शरीरमात्र परिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णककेश आत्मन्यारो पिता हवनीयां ब्रह्मावर्त्तात प्रवव्राज ॥२९॥' भागवतस्कंध ५ अ० ५

अर्थात्—"इस भांति महायशस्वी और सबके सुहृद् ऋषभ भगवान् ने, यद्यपि उनके पुत्र सब भांति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने के हेतु, प्रशान्त और कर्मबंधन से रहित महामुनियोंको भक्तिज्ञान और वैराग्यके दिखाने वाले परमहंस आश्रम की शिक्षा देने के हेतु, अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ परम भागवत, हरि भक्तों के सेवक भरत को पृथ्वी पालन के हेतु, राज्याभिषेक कर तत्काल ही संसार को छोड़ दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केश खोल उन्मत्त की भांति नग्न हो, केवल शरीर को संग ले, ब्रह्मावर्त से सन्यास धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण के मोटे टायप के अक्षरों से ऋषभदेव का परमहंस—दिगम्बर-धर्म-शिक्षक—होना स्पष्ट है।

तथा इसी ग्रन्थ के स्कंध २ अध्याय ७ पृ० ७६ में इन्हें "दिगम्बर और जैनमत का चलाने वाला" उसके टीकाकार ने लिखा है *। मूल श्लोक में उनके दिगम्बरत्व को ऋषियों द्वारा वंदनीय बताया है —

नाभेरसा वृषभ आसतु देव सूनु—
र्योवैचचार समदृग् जड योगचर्याम्।
यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनंति
स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्त संगः ॥१०॥

उधर हिन्दुओं के प्रसिद्ध योगशास्त्र 'हठयोगप्रदीपिका' में सबसे पहले मंगलाचरण के तौर पर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई है और वह इस प्रकार है‡ :—

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराज योग—
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥१॥

अर्थात्—"श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने उस हठयोग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जो कि बहुत ऊंचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नसैनी के समान है।"

---

* जिनेन्द्रमत दर्पण, प्रथम भाग पृ० १०

‡ "अनेकान्त" वर्ष १ पृ० ५३८

हठयोग का श्रेष्ठतम रूप दिगम्बर है। परमहंस मार्ग ही तो उत्कृष्ट योगमार्ग है। इसी से 'नारद परिव्रजकोपनिषद्' में 'योगी परमहंसाख्यः साक्षान्मोक्षकसाधनम्' इस वाक्य द्वारा परमहंस योगी को साक्षात् मोक्ष का एक मात्र साधन बतलाया है। सचमुच "अजैन शास्त्रों में जहां कहीं श्री ऋषभदेव—आदिनाथ—का वर्णन आया है, उनको परम हंस मार्गका प्रवर्तक बतलाया है।"*

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अजैन विद्वानों को जैनधर्म से ऐसी चिढ़ हो गई कि उन्होंने अपने धर्मशास्त्रों में जैनों के महत्वसूचक वाक्यों का या तो लोप कर दिया अथवा उनका अर्थ ही बदल दिया †। उदाहरण के रूप में उपरोक्त 'हठयोग प्रदीपिका' के श्लोक में वर्णित आदिनाथ को उसके टीकाकार 'शिव' (महादेवजी) बताते हैं; किन्तु वास्तव में इसका अर्थ ऋषभदेव ही होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन 'अमरकोषादि' किसी भी कोष ग्रन्थ में महादेव का नाम 'आदिनाथ' नहीं मिलता। इसके अति-

* अनेकान्त, वर्ष १ पृ० ५३६

† श्री टोडरमल जी द्वारा उल्लिखित हिन्दू शास्त्रों के अवतरणों का पता आजकल के छपे हुये ग्रन्थों में नहीं चलता; किन्तु उन्हीं ग्रन्थों की प्राचीन प्रतियों में उनका पता चलता है, यह बात पं० मक्खनलाल जी जैन अपने 'वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व' नामक ट्रैक्ट (पृ० ४१-५०) में प्रकट करते हैं। प्रो० सरच्चन्द्र घोषाल एम. ए. काव्यतीर्थ आदि ने भी हिन्दू 'पद्मपुराण' के विषय में यही बात प्रकट की थी। (देखो J. G, XIV 90)

रिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध में यह वर्णन जैन और अजैन शास्त्रों में मिलता है—किसी अन्य प्राचीन मत प्रवर्तक के सम्बन्ध में नहीं—कि वह स्वयं दिगम्बर रहे थे और उन्होंने दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परमहंसोपनिषद्' के निम्न वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहंस धर्म के स्थापक कोई जैनाचार्य थे :—

"तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वमप्सुविसृज्याथ जातरूपधरश्चरे दात्मान मन्विच्छेद् यथाजातरूपधरो निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहस्तत्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नः शुद्ध मानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले पंच गृहेषु करपात्रेणायाचिताहार माहरन् लाभालाभे समो भूत्वा निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः शुभाशुभ-कर्मनिर्मूलनपरः परमहंसः पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्मोऽहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनुस्मरन् भ्रमर कीटकन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य देहत्यागं करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्।"‡

अर्थात्—"ऐसा जानकर ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और लंगोटी इन सब चीज़ों को पानी में विसर्जन कर जन्मसमय के वेष को धारण कर—अर्थात् बिल्कुल नग्न होकर—विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथाजातरूपधारी (नग्न दिगंबर), निर्द्वंद्व, निष्परिग्रह,

‡ अनेकान्त, वर्ष १ पृ० ५३९-५४०

तत्वब्रह्ममार्ग में भले प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पांच घरों में विहार कर कर-पात्र में अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, शुक्ल-ध्यान परायण, अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में तत्पर परमहंस योगी पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने वाला वह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से—(कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वयं भ्रमर बन जाता है, इस नीति से) तीनों शरीरों को छोड़कर देहत्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है ।'

इस अवतरण का प्रायः सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियों की चर्या के अनुसार है; किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण 'शुक्लध्यानपरायणः' है, जो जैनधर्म की एक खास चीज़ है । "जैन के सिवाय और किसी भी योग ग्रन्थ में 'शुक्लध्यान' का प्रतिपादन नहीं मिलता । पतंजलि ऋषि ने भी ध्यान के शुक्लध्यान आदि भेद नहीं बतलाये । इसलिए योग ग्रंथों में आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदि-नाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नहीं जान पड़ते ।"‡

'अथर्ववेद के जाबालोपनिषद्' (सूत्र ६) में परमहंस

‡ अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ ५४१

संन्यासी का एक विशेषण 'निर्ग्रन्थ' भी दिया है* और यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही एक प्राचीनकाल से प्रसिद्ध हैं। बौद्धों के प्राचीनशास्त्र इस बातका खुला समर्थन करते हैं†। जैनधर्म के ही मान्य शब्द को उपनिषद्‌कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधु मार्ग का मूल श्रोत जैनधर्म है। और उधर हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्कर ने ही परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव वेद—उपनिषद् ग्रंथों के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदों में स्वयं उनका और १६ वें अवतार वामन का उल्लेख मिलता है×। अतः निस्सन्देह भ० ऋषभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग की आदि में स्वयं दिगम्बर वेष धारण करके +सर्वज्ञता प्राप्तकी थी *और सर्वज्ञ होकर दिगम्बरधर्म काउपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्वके आदि प्रचारक हैं।

---

* "यथा जातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहः" इत्यादि—दिमु० पृ० ८

† जैकोबी प्रभृत विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है (Js. Pt. II. Intro.) × 'भपाः की प्रस्तावना तथा 'सजै' देखो!

+ "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है। ["Rishabha Deva............ naked, went the way of the great road." (महाप्रस्थानम्)"—Wilson's Vishnu Purana, Vol. II (Book II ch. I) pp. 103-104].

* श्री मद्‌भागवत में ऋषभदेव को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति' बताया है। (विको० भा० ३ पृ० ४४४)
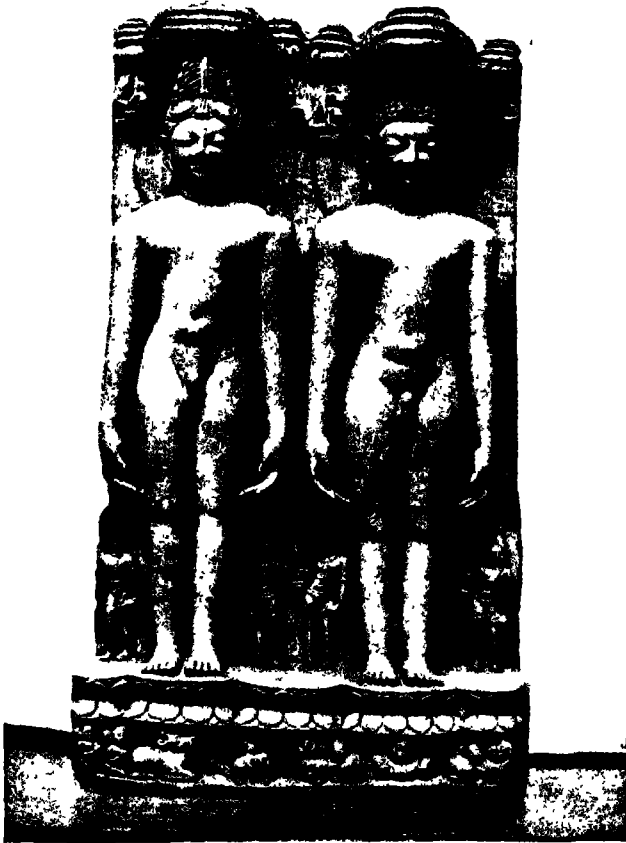
श्री १००८ दिगम्बरत्वके प्रचारक श्री ऋषभनाथ जी
और अंतिम प्रचारक श्री महावीर स्वामी। (पृ० १५ व ८५)
[ब्रिटिश म्युज़ियम लन्दन के सौजन्य व आज्ञा से]

[४]

हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व !

"सन्यासः षट्विधो भवतिः कुटिचक—बहूदक—हंस—परमहंस—तुरिया— तीत—अवधूतश्चेति ।" —सन्यासोपनिषद् १३

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर बन में जा रमे, तो उनकी देखा देखी और भी बहुतसे लोग नंगे होकर इधर-उधर घूमने लगे। दिगम्बरत्व के मूल तत्व को वे समझ न सके और अपने मनमाने ढंगसे उदरपूर्ति करते हुये वे साधु होने का दावा करने लगे। जैनशास्त्र कहते हैं कि इन्हीं सन्यासियों द्वारा सांख्य आदि जैनेतर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई थी *। और तीसरे परिच्छेद में स्वयं हिन्दूशास्त्रों के आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बर धर्म का प्रतिपादन हुआ था। इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है।

यह बात ज़रूर है कि हिन्दूधर्म के वेद और प्राचीन तथा बृहत् उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः नहीं मिलता। किन्तु उनके छोटे-मोटे उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में उसका खास ढंग पर प्रतिपादन किया गया मिलता

---

* आदिपुराण पर्व १८ श्लो० ६२ व (Rishabh. p. 112)

है। 'भिक्षुक उपनिषद्' †—'सात्यायनीय उपनिषद्' ‡—'याज्ञवल्क्य उपनिषद्'—'परमहंस-परिव्राजक-उपनिषद्' आदि में यद्यपि सन्यासियों के चार भेद—(१) कुटिचक, (२) बहुदक, (३) हंस, (४) परमहंस—बताये गये हैं, परन्तु 'सन्यासोपनिषद्' में उनको छै प्रकार का बताया गया है अर्थात् उपरोक्त चार प्रकार के सन्यासियों के अतिरिक्त (१) तुरियातीत और (२) अवधूत प्रकार के सन्यासी और गिनाये हैं +। इन छहों में पहले तीन प्रकार के सन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण 'त्रिदण्डी' कहलाते हैं और शिखा या जटा तथा वस्त्र कौपीन आदि धारण करते हैं ×। परमहंस परिव्राजक शिखा और यज्ञोपवीत जैसे द्विजचिन्ह धारण नहीं करता और वह एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण करता है अथवा अपनी देही में भस्म रमा लेता है ÷।

† "अथभिक्षूणाम् मात्रार्थीनाम् कुटीचक - बहुदक—हंस—परमहंसाश्चेति चत्वारः।"

‡ "कुटिचको बहूदको—हंसः—परमहंस—इत्येति परिव्राजकाः चतुर्विधा भवन्ति।"

+ "स सन्यासः षड्विधो भवति कुटीचक बहूदक हंस परमहंस-तुरीयातीतावधूताश्चेति।"

× "कुटीचकः शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटी-कन्थाधरः पितृमातृ गुर्वाराधनपरः पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपर एकत्रान्नादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः। बहूदकः शिखादि कन्थाधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकरवृत्त्याष्टकवलाशी। हंसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारी असंक्लृप्तमाधूकरान्नाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी।

÷ परमहंसः शिखायज्ञोपवीत रहितः पञ्चगृहेषु करपात्री एक कौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो वा भस्मोद्धूलन परः।

हां, तूरियातीत परिव्राजक बिल्कुल दिगम्बर होता है और वह सन्यास नियमों का पालन करता है *। अन्तिम अवधूत पूर्ण दिगम्बर और निर्द्वन्द्व है—वह सन्यास नियमों की भी परवाह नहीं करता +। तूरियातीत अवस्था में पहुंचकर परमहंस परिव्राजक को दिगंबर ही रहना पड़ता है किन्तु उसे दिगम्बर जैन मुनि की तरह केशलुंच नहीं करना होता—वह अपना सिर मुडाना (मुण्ड) है। और अवधूत पद तो तूरियातीत की गरण अवस्था है †। इस कारण इन दोनों भेदों का समावेश परमहंस भेद में ही गभित किन्हीं उपनिषदों में मान लिया गया है। इस प्रकार उपनिषदों के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय हिन्दू धर्म में भी दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला था और वह साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया था! उस पर कापालिक संप्रदाय में तो वह खूब ही प्रचलित रहा; किन्तु वहां वह अपनी धार्मिक पवित्रता खो बैठा; क्योंकि वहां वह भोग की वस्तु रहा। अस्तु;

यहां पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य में जो भी उल्लेख दिगम्बर साधु के सम्बन्ध में मिलते हैं, उनको उप-

---

*सर्वत्यागी तुरीयातीतो गोमुखवृत्त्या फलाहारी अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीर वृत्तिकः।

+ अवधूतस्त्वनियमः पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्व वर्णेष्वजगरवृत्त्याहार परः स्वरूपानुसंधानपरः।........'

† 'सर्वं विस्मृत्य तुरीयातीतावधूतवेषेणाद्वैतनिष्ठापरः प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति यः सोऽवधूतः।'

स्थित कर देना उचित है। देखिये "जाबालोपनिषत्" में लिखा है :—

"तत्र परमहंसानामसंवर्त्त कारुणिश्वेतकेतुदुर्वास ऋभुनिदाघजडभरत दत्तात्रेयरैवतक प्रभृतयोऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्रं जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं च इत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मान मन्विच्छेत् ॥ यथाजात रूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नः— इत्यादि।" ‡

इसमें संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु आदि को यथाजात-रूपधर निर्ग्रन्थ लिखा है अर्थात् इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों के समान आचरण किया था।

'परमहंसोपनिषत्' में निम्न प्रकार उल्लेख है :—

"इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस आकाशाम्बरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतिर्यादृच्छिको भवेत्स भिक्षुः + ।"

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा-निन्दा अथवा आदर-अनादर से सरोकार ही क्या! आगे 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' में भी देखिये :—

"यथाविधिश्चेज्जात रूपधरो भूत्वा.........जातरूप धरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि-

‡ ईशाद्य०, पृष्ठ १३१

+ ईशाद्य०, पृ० १५०

ग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नः। ८९—तृतीयोपदेशः ×।"

"तुरीयः परमो हंसः साक्षान्नारायणो यतिः। एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ॥१४॥ वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्।·········मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः। ३२।············ज्ञानरूपधरो भूत्वा ·· ······ दिगम्बरः।"—चतुर्थोपदेशः। ÷

इन उल्लेखों में भी परिव्राजक को नग्न होने का तथा वर्षाऋतु में एक स्थान में रहने का विधान है। "मुनिः कौपीन-वासाः" आदि वाक्य में छहों प्रकार के सारे ही परिव्राजकों का 'मुनि' शब्द से ग्रहण कर लिया गया है। इसलिये उनके सम्बन्ध में वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओं का। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मुनि वस्त्र भी पहिन सक्ता है और नग्न भी रह सक्ता है; जिससे कि नग्नता पर आपत्ति की जा सके! यह पहले ही परिव्राजकों के षड्भेदों में दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परिव्राजक नग्न ही रहते हैं और वह श्रेष्ठतम फल को भी पाते हैं, जैसे कि कहा है :—

"आतुरो जीवति चेत्क्रम संन्यासः कर्त्तव्यः।········· आतुर कुटीचकयोर्भूलोक भुवर्लोकौ। बहूदकस्य स्वर्गलोकः।

× ईशाद्य०, पृ० २६७-२६८

÷ ईशाद्य०, पृ० २६८-२६९

हंसस्य तपोलोकः। परम हंसस्य सत्यलोकः। तुरीयातीनावधूतयोः स्वस्मन्येव कैवल्यं स्वरूपानुसंधानेन भ्रमर कीटन्यायवत् *।"

अर्थात्—"आतुर यानी संसारी मनुष्य का अन्तिम परिणाम (निष्ठा) भूलोक है; कुटीचक सन्यासी का भुवर्लोक; स्वर्गलोक हंस सन्यासी का अन्तिम परिणाम है; परम हंस के लिये वही सत्यलोक है और कैवल्य तुरियातीत और अवधूत का परिणाम है।"

अब यदि इन सन्यासियों में वस्त्र परिधान और दिगंबरत्व का तात्विक भेद न होता तो उन के परिणाम में इतना गहन अन्तर नहीं हो सकता। दिगम्बर मुनि ही वास्तविक योगी है और वही कैवल्य-पद का अधिकारी है। इसीलिये उसे 'साक्षात् नारायण' कहा गया है। 'नारद परिव्राजकोपनिषद्' में आगे और भी उल्लेख निम्न प्रकार हैं:—

"ब्रह्मचर्येण संन्यस्य संन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्य संन्यासी †।"

"तुरीयातीतो गोमुखः फलाहारी। अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः। अवधूतस्त्वनियमोऽभिशस्तपतितवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेष्वजगरवृत्याहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः।..........परमहंसादित्रयाणां

---

*ईशा० अ०, पृष्ठ ४१५—संन्यासोपनिषत् ४६।

†ईशाद्य०, पृष्ठ २७१।

न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रम् न कमण्डलुर्न दण्डः सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्वं जातरूपधरत्वं विधिः ....। सर्वं परित्यज्य तत्प्रसक्तम् मनोदण्डं करपात्रं दिगम्बरं दृष्ट्वा परिव्रजेद्भिक्षुः ॥१॥..........अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो मुनिः। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥१६॥... ....आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदा मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वसंसारमुत्सृज्य प्रपञ्चावाङ्मुखः स्वरूपानुसन्धानेन भ्रमरकीटन्यायेन मुक्तो भवतीत्युपनिषत ॥ पञ्चमोपदेशः ॥"

"दिगम्बरम् परमहंसस्य एक कौपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोर्जातरूपधरत्वं हंस परमहंसयोरजिनं न त्वन्येषाम् ।"
—सप्तमोपदेशः †।

वैराग्य सन्यासी भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परिव्राजक सन्यासियों के चार भेद यूँ किये गए हैं—(१) वैराग्य सन्यासी, (२) ज्ञान सन्यासी, (३) ज्ञान वैराग्य सन्यासी और (४) कर्म सन्यासी। इन में से ज्ञान वैराग्य सन्यासी को भी नग्न होना पड़ता है ‡।

"भिक्षुकोपनिषत्" में भी लिखा है :—

"अथ जातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः शुक्लध्यानपरायणा आत्मनिष्ठाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले भैक्षमाचरन्तः

---

† ईशाय०, पृष्ट ९७२।

‡ "क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी ॥"
--नारदपरिव्राजकोपनिषद् १।५॥ तथा सन्यासोपनिषद्।

शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्ष मूलकुलाल शालाग्निहोत्र-शालानदी पुलिनगिरिकन्दर कुहर कोटर निर्झरस्थण्डिले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नाः शुद्धमानसाः परमहंसाचरणेन सन्यासेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत् × ।"

"तुरीयातीतोपनिषत्" में उल्लेख इस प्रकार है :—

"संन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिन-परिग्रहमपि संत्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन्क्षौराभ्यङ्गस्नानोर्ध्व-पुण्ड्रादिकं विहाय लौकिक वैदिक मप्युपसंहृत्य सर्वत्र पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्ण सुखदुःख मानावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दानिन्दागर्वमत्सर दम्भ दर्प द्वेष काम क्रोध लोभ मोह हर्षामर्षासूयात्म संरक्षणादिकं दग्ध्वा········इत्यादि + ।"

'सन्यासोपनिषत्' में और भी उल्लेख इस प्रकार है:—

"वैराग्य संन्यासी ज्ञान संन्यासी ज्ञान वैराग्य संन्यासी कर्मसंन्यासीति चतुर्विध्यमुपागतः । तद्यथेति दृष्टानुश्रविक-विषय वैतृष्ण्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मविशेषात्संन्यस्तः स वैराग्य-संन्यासी ।········क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञान-वैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जात रूपधरो भवति स ज्ञान वैराग्य संन्यासी ।" ╪

'परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है :—

× ईशाद्य०, पृष्ठ ३६८ । + ईशाद्य०, पृष्ठ ४१० ╪ ईशाद्य० पृ० ४१२

"शिखामुत्कृष्य यज्ञोपवीतं छित्त्वा वस्त्रमपि भूमौ वाप्सु वा विसृज्य ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ सुवः स्वाहेत्या तेन जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक प्रणवव्याहृति पूर्वकं मनसा वचसापि संन्यस्तं मया......।"

"यदाऽलंबुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्तन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत् * ।"

'याज्ञवल्क्योपनिषत्' में दिगम्बर साधु का उल्लेख करके उसे परमेश्वर होना बताया है; जैसेकि जैनोंकी मान्यता है:—

"यथाजातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नाः शुद्धमानसाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समौ भूत्वा करपात्रेण वा कमण्डलूदकपो भैक्षमाचरन्नुदरमात्र संग्रहः।...... ...आशाम्बरो न नमस्कारो न दारपुत्राभिलाषी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वर्तकः परिव्राट् परमेश्वरो भवति।"‡

'दत्तात्रेयोपनिषत्' में भी है:—

"दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्द दायक। दिगम्बर मुने बालपिशाच ज्ञानसागर।" +

'भिक्षुकोपनिषद्' आदिमें संवर्तक, आरुणी, श्वेतकेतु, जडभरत, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हारीतिकी आदि को

* ईशाद्य० पृ० ४१८-४१६
‡ ईशाद्य० पृ० ५२४
+ ईशाद्य०, पृ० ५४२

दिगम्बर साधु बताया है । "याज्ञवल्क्योपनिषद्" में इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निदाघ को भी तूरियातीत परमहंस बताया है ×। इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, बल्कि वेदोंमें भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये 'यजुर्वेद' अ० १६ मंत्र १४ में है * :—

"आतिथ्यरूपं मासरम् महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतस्त्रिस्त्रो रात्रो सुरासुता॥"

अर्थ—(आतिथ्यरूपं) अतिथि के भाव (मासरं) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नग्नहुः) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत) ये (तिस्रो) तीनों (रात्रीः) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुरा) मद्य (असुता) नष्ट होती है।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है। इसलिये यह मन्त्र अतिथियों के सम्बन्ध में ही लग सकता है, क्योंकि वैदिक देवता का मतलब वाच्य है: जैसाकि निरुक्तकार का भाव है—

× IHQ. III, २५६-२६०

* मालूम होता है कि इस मंत्र द्वारा वेदकारने जैन तीर्थंकर महावीर के आदर्श को ग्रहण किया है। दूसरे धर्मों के आदर्श को इस तरह ग्रहण करने के उल्लेख मिलते हैं। --IHQ. III 472-485

"याते नोच्यते सा देवताः ।" इसके अतिरिक्त 'अथर्ववेद' के पन्द्रहवें अध्याय में जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है; उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु का अनुरूप है । किन्तु यह व्रात्य एक वेदवाह्यसंप्रदाय था, जो बहुत कुछ निर्ग्रन्थ-संप्रदाय से मिलता-जुलता था । बल्कि यूं कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थङ्कर ही का द्योतक है*। इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैनतीर्थंकर ऋषभ-देव द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्राबल्य बढ़ गया और लोगों को समझ पड़ गया कि परमोच्चपद पाने के लिए दिगम्बरत्व आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने शास्त्रों में भी स्थान दे दिया । यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सामान्य रूपमें मिल जाता है।

अब हिन्दू पुराणादि ग्रंथों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, वह भी देख लेना उचित है । श्री भागवत पुराण में ऋषभ अवतार के सम्बन्ध में कहा है :—

"बर्हिषी तस्मिन्नेव विष्णु भगवान् परमर्षिभिः प्रसादि-तो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्श-यतु कामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणामूर्ध्वा मन्थिना शुक्लया तनु वाववतार ।"

अर्थ—"हे राजन् ! परीक्षित वा यज्ञ में परम ऋषियों करके प्रसन्न हो नाभिके प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तः-

---

* देखो भपा० प्रस्तावना पृ० ३२-४६ ।

पुर में मरुदेवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऊर्ध्व रेता ऋषियों को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।"†

"लिङ्ग पुराण" (अ० ४७ पृ० ६८) में भी नग्न साधु का उल्लेख है‡ :—

"सर्वात्मनात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरं ।
नग्नोजटो निराहारो चीरीध्वांत गतोहिसः ॥२२॥"

"स्कंधपुराण-प्रभासखंड" में (अ० १६ पृ० २२१) शिवको दिगम्बर लिखा है+ :—

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम् ।
यादृग्रूपः शिवोदृष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बरः ॥६४॥"

श्री भर्तृहरि जी 'वैराग्यशतक' में कहते हैं× :—

'एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदाशम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥५८॥'

अर्थ—"हे शम्भो ! मैं अकेला, इच्छा रहित, शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा।" वह और भी कहते हैं ÷ :—

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥६०॥

---

† वेजै० पृ० ३।
‡ वेजै०, पृ० ६।
+ वेजै०, पृ० ३४।
× वेजै०, पृ० ४६।
÷ वेजै०, पृ० ४७।

अर्थ—"अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे; दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला धनवानों से हमें क्या मतलब ?"

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएनसांग बनारस पहुँचा तो उसने वहां हिन्दुओं के बहुतसे नङ्गे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालों को बांध कर जटा बनाते हैं तथा वस्त्र परित्याग करके दिगंबर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते हैं। ये बड़े तपस्वी हैं *।" इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु हुएनसांग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि में जब सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नंगे हिन्दू साधु यहाँ मौजूद थे।

अरस्तू का भतीजा कियडो कलिस्थेनस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महानके साथ यहां आयाथा और वह बताता है कि "ब्राह्मणों का श्रमणों की तरह कोई संघ नहीं।............उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (State of nature)—नग्न नदी किनारे रहते हैं और नंगे ही घूमते हैं (Go about naked) उनके पास न चौपाये हैं, न हल हैं, न लोहा-लक्कड़ है, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है—ग़र्ज़ यह कि उन के पास श्रम और आनन्द का कोई सामान नहीं है। इन साधुओं की स्त्रियां गङ्गा की दूसरी ओर

---

* हुभा०, पृ० ३२०

रहती हैं; जिनके पास जुलाई और अगस्तमें वे जाते हैं। वैसे जंगल में रहकर वे बनफल खाते हैं† ।"

सन् ८५१ में अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने यहां एक ऐसे नंगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थित था ‡।

बादशाह औरङ्गज़ेब के ज़माने में फ्रांस से आये हुये डॉ० बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहंस (नंगे) सन्यासियोंको देखा था। वह इन्हें 'जोगी' कहता है और इनके विषय में लिखता है + :—

"I allude particularly to the people called '*Jaugis*', a name which signifies 'united to God' Numbers are seen, day and night, seated or lying on ashes, entirely naked, frequently under the large trees near talabs or tanks of water, or in the galleries round the *Deuras* or idol temples. Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into knots, like the coat of our shaggy dogs. I have seen several who hold one & some who hold both arms, perpetually lifted up above the head; the nails of

† AI., P. 181.
‡ Elliot., I. P-4
+ Bernier., P. 316

their hands being twisted, and longer than half my little finger, with which I measured them. Their arms are as small & thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced & unnatural a position they receive not sufficient nourishment; nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulations dry & stiff. Novices wait upon these fanatics & pay them the utmost respect, as persons endowed with extraordinary sanctity. No *Fury* in the infernal regions can be conceived more horrible than the *Jaugise* with their naked and black skin, long hair, spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned."

भाव यही है कि बहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाब अथवा मंदिरों में नंगे रात-दिन रहते थे। उनके बाल लम्बे २ थे। उनमें से कोई अपनी बाहें ऊपर को उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूभर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आधे बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें खिलाना भी मुश्किल था; क्योंकि उनकी नसें तन गई थीं। भक्त जन इन नागों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय

करते हैं। वे इन जोगियों से पवित्र किसी दूसरे को समझते नहीं और इनके क्रोध से भी बेहद डरते हैं। इन जोगियों की नंगी और काली चमड़ी हैं, लम्बे बाल हैं, सूखी बाहें हैं, लम्बे मुड़े हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में जमे रहते हैं जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर वह यह न करते तो करते भी क्या?

सन् १६२३ई०में पिटर डेल्ला वॉल्ला नामक एक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नागा साधु देखे थे; जिन की लोग बड़ी विनय करते थे * !

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हज़ारों नागा सन्यासी वहाँ देखने को मिलते हैं—वे क़तार बाँध कर शरह-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दू धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य-पुरुष हैं।

---

* पुरातत्व, वर्ष २ अङ्क ४ पृ० ४४०

[५]

इस्लाम और दिगम्बरत्व ।

"I am no apostle of new doctrines", said Muhammad, "neither know I what will be done with me or you" —Koran XLVI.

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद ने खुद फ़रमाया है कि "मैं किन्हीं नये सिद्धान्तोंका उपदेशक नहीं हूँ और मुझे यह नहीं मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा?"। सत्य का उपासक और कह ही क्या सकता है ? उसे तो सत्य को गुमराह भाइयों तक पहुँचाना है और उससे जैसे बनता है वैसे इस कार्य को करना पड़ता है। मुहम्मद सा० को अरब के असभ्यसे लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि एकदम ऊंचे दर्जे का सिद्धान्त उन को सिखाया जाता। उस पर भी हज़रत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि —

"The love of the world is the root of all evil."

"The world is as a prison and as a famine to Muslims; and when they leave it you may say they leave famine and a prison."—(Sayings of Mohammad)*.

---

* KK., P. 738.

अर्थात्—"संसार का प्रेम ही सारे पाप की जड़ है। संसार मुसलमानके लिए एक कैदखाना और कहत के समान है और जब वे इसको छोड़ देते हैं तब तुम कह सकते हो कि उन्होंने कहत और क़ैद खाने को छोड़ दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढ़िया उपदेश और हो भी क्या सकता है? हज़रत मुहम्मद ने स्वयं उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथासंभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रों का परिधान और हाथ की अँगूठी उनकी नमाज़में बाधक हुई थी*। किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस जन्म कालमें संभव नहीं था कि वह खुद नग्न होकर त्याग और वैराग्य—तर्के दुनियां—का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते! यह कार्य उनके बाद हुये इस्लामके सूफ़ी तत्ववेताओं के भाग में आया। उन्होंने 'तर्क' अथवा त्यागधर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यूं दिया :—

"To abandon the world, its comforts and dress,—all things now and to come,—conformably with the Hadees of the Prophet."†

अर्थात्—"दुनियां का सम्बन्ध त्याग देना—तर्क कर देना—उसकी आशाइशों और पोशाक—सबही चीजोंको अब की और आगे की—पैगम्बर सा० कीहदीस के मुताबिक।"

* Religious Attitude & Life in Islam, P. 298 & KK. 739

† The Dervishes—KK. P. 738

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम में त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला। उसमें ऐसे दरवेश हुये जो दिगम्बरत्व के हिमायती थे और तुर्किस्तान में 'अब्दल' (Abdals) नामक दरवेश मादरजात नंगे रहकर अपनी साधना में लीन रहते बताये गये हैं ×। इस्लाम के महान सूफ़ी तत्ववेता और सुप्रसिद्ध 'मस्नवी' नामक ग्रन्थके रचयिता श्री जलालुद्दीन रूमी दिगम्बरत्व का खुला उपदेश निम्न प्रकार देते हैं :—

१—"गुफ़्त मस्त ऐ महतब बगुज़ार रव—अज़ बिरहना के तवां बुरदन गरव।" (जिल्द २ सफ़ा २६२)

२—"जामा पोशां रा नज़र परगाज़ रास्त—जामै अरियां रा तजल्ली ज़ेवर अस्त।"

—(जिल्द २ सफ़ा ३८२)

३—"याज़ अरियानान बयकसू बाज़ रव—या चूं ईशां फारिग़ व बेजामा शव !"

४—"वरनमी तानी कि कुल अरियां शवी—जामा कम कन ता रह औसत रवी !!"

—(जिल्द २ सफ़ा ३८३)*

× "The higher saints of Islam, called 'Abdals' generally went about perfectly naked; as described by Miss Lucy M. Garnet in her excellent account of the lives of Muslim Dervishes, entitled "Mysticism & Magic in Turkey."—NJ., P. 10

* जिल्द और पृष्ट के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "इलहामे मन्ज़ूम" (الہام منظوم) के हैं ।

इन का उर्दू में अनुवाद 'इल्हामे मन्ज़ूम' नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है —

१—मस्त बोला, महतब, कर काम जा—होगा क्या नङ्गे से तू अहदे वर आ !

२—है नज़र धोबी पै जामै-पोश की—है तजल्ली ज़ेवर अरियां तनी !!

३—या बिरहनों से हो यकसू वाक़ई—या हो उन की तरह बेजामै अली !

४—मुतलक़न अरियां जो हो सकता नहीं—कपड़े कम यह है कि औसत के क़रीं !!

भाव स्पष्ट है। कोई तार्किक मस्त नङ्गे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधेसे कह दिया कि जा अपना काम कर—तू नङ्गे के सामने टिक नहीं सकता। वस्त्र धारी को हमेशा धोबी की फिकर लगी रहती है; किन्तु नंगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नङ्गे दरवेशों से कोई सरोकार न रख अथवा उन की तरह आज़ाद और नङ्गा हो जा ! और अगर तू एक दम सारे कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर ! क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है ! इस से दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है !

और इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकड़ों मुसल-

मान फ़कीरों ने दिगम्बर वेषको गतकालमें धारण किया था। उनमें अबुलकासिम गिलानी * और सरमद शहीद उल्लेखनीय हैं।

सरमद बादशाह औरङ्गज़ेब के समय में दिल्ली में हो गुज़रा है और उस के हज़ारों नङ्गे शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल में कज़ाहान (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्याका भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छी खासी जानता था। व्यापार के निमित्त भारत में आया था। ठट्टा (सिंध) में एक हिन्दू लड़के के इश्क में पड़ कर मजनूँ बन गया†। उपरान्त इस्लाम के सूफ़ी दरवेशों की संगति में पड़ कर मुसलमान हो गया। मस्त नङ्गा वह शहरों और गलियोंमें फिरता था। अध्यात्मवाद का प्रचारक था। घूमता-घामता वह दिल्ली जा डटा। शाहजहां का वह अन्त समय था। दारा शिकोह, शाहजहां बादशाह का बड़ा लड़का, उस का भक्त होगया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ्रान्स से आये हुए डॉ० बरनियर ने खुद अपनी आंखों से उसे नंगा दिल्ली की गलियों में घूमते देखा था‡। किन्तु जब शाहजहां और दारा को मार कर औरंगज़ेब बादशाह हुआ तो सरमद

---

* KK. P. 739 and N.J. PP. 8--9.

† JG, XX PP. 158--159.

‡ Bernier remarks: "I was for a long time disgusted with a celebrated *Fakire* named *Sarmet*, who

की आज़ादी में भी अड़ंगा पड़ गया। एक मुल्ला ने उस की नग्नता के अपराध में उसे फांसी पर चढ़ाने की सलाह औरङ्गज़ेब को दी; किन्तु औरङ्गज़ेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा × और सरमद से कपड़े पहनने की दरख़्वास्त की। इस के उत्तर में सरमद ने कहा —

"आँकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद,
मारा हम ओ अस्वाब परेशानी दाद;
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबा रा लबास अर्यानी दाद !"

यानी "जिस ने तुम को बादशाही ताज दिया, उसी ने हम को परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उस को लिबास पहनाया और जिन में ऐब न पाये उन को नङ्गेपन का लिबास दिया।"*

बादशाह इस रुबाई को सुनकर चुप हो गया; लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सरमद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ़ यह था कि वह 'कलमा' आधा पढ़ता है जिस के माने होते हैं कि 'कोई खुदा नहीं है।' इस अपराध का दण्ड उसे फांसी मिली और

---

paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc."—(Berniers Travels in the Mogul Empire. P 317)

× Emperor told the Ulema that "Mere nudity cannot be a reason of execution" ---JG. XX.P. 158.

* जैम०, पृष्ठ ४ ॥

वह वेदान्तकी बातें करता हुआ शहीद होगया! उसको फाँसी दिये जानेमें एक कारण यह भी था कि वह दारा का दोस्त था!†

सरमद की तरह न जाने कितने नङ्गे मुसलमान दरवेश हो गुज़रे हैं! बादशाह ने उसे मात्र नंगे रहने के कारण सज़ा न दी; यह इस बात का द्योतक है कि वह नग्नता को बुरी चीज़ नहीं समझता था। और सचमुच उस समय भारत में हज़ारों नंगे फ़कीर थे। ये दरवेश अपने नंगे तन में भारी २ जंजीरें लपेट कर बड़े लम्बे २ तीर्थाटन किया करते थे।‡

सारांशतः इस्लाम मज़हब में दिगम्बरत्व साधु पदका चिन्ह रहा है और उसको अमली शक्ल भी हज़ारों मुसलमानों ने दी है! और चूंकि हज़रत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिए कहना होगा कि ऋषभाचल से प्रगट हुई दिगम्बरत्व-गङ्गा की एक धारा को इस्लाम के सूफी दरवेशों ने भी अपना लिया था।

---

† JG Vol XX. P. 159. "There is no God" said Sarmad omitting "but. Allah and Muhammad is His apostle"

‡ "Among the vast number and endless variety of *Fakires or Derviches*............some carried a club like to *Hercules*, others had a dry & rough tiger--skin thrown over their shoulders ....Several of these *Fakires* take long pilgrimages, not only naked, but laden with heavy iron chains, such as are put about the legs of elephants." —Bernier. P. 317.

[६]

ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु !
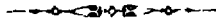
"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets ?" —(Samuel XIX. -24)

"At the same time spake the Lord, by Isaiah the son of Amoz, saying, 'Go and loose the sack-cloth from off thy loins, and put off thy shoe from thy foot. And he did so, walking naked and bare foot."

—(Isaiah XX. 2)

ईसाई मज़हब में भी दिगम्बरत्व का महत्व भुलाया नहीं गया है; बल्कि बड़े मार्के के शब्दों में उसका वहां प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है। जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था †। उसने जैनधर्म की शिक्षा को ही अलंकृत-भाषा में पाश्चात्य-देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मज़हब दिगम्बरत्व के

---

† विको०, भा० ३ पृष्ठ १२८

सिद्धान्त से ख़ाली नहीं रह सका। और सचमुच बाइबिल में स्पष्ट कहा गया है कि —

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसी ही घोषणा की और उस सारे दिन तथा सारी रात वह नंगा रहा। इसपर उन्होंने कहा, 'क्या साल भी पैग़म्बरों में से है?'"—(सैमुयल १६। २४)

"उसी समय प्रभू ने अमोज़ के पुत्र ईसाइया से कहा, जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरों से जूते निकाल डाल। और उसने यही किया, नंगा और नंगे पैरों वह विचरने लगा।"—(ईसाय्या २०। २)

इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि बाइबिल भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि हो जाने का उपदेश देती है। और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष में रह भी चुके हैं। ईसाइयों के इन नंगे साधुओं में एक सेन्टमेरी (St. Mary of Egypt.) नामक साध्वी भी थी। वह मिश्रदेशकी सुन्दर स्त्री थी; किन्तु इसने भी कपड़े छोड़कर नग्न-वेष में ही सर्वत्र विहार किया था।‡

यहूदी (Jews) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक "The Ascension of Isaiah" (p. 32) में लिखा है —

"(Those) who believe in the ascension into heaven withdrew and settled on the mountain...

‡ The History of European Morals, ch. 4 & N.J., P. 6

.........They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked."†

अर्थात्—वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे.........वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अपॉसल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यक्ता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है :—

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or.........any other thing, possess sins, *because we ought not to have anything.. ....To all of us possessions are sins...........The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins".**

अर्थात्—क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीज़ों को चुन लिया है, यहां तक कि हम उनसे ज़्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े लत्ते हों या दूसरी कोई चीज़, पाप को रक्खे हुये हैं; क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है।

---

† NJ., P. 6

* Ante Nicene Christian Library, XVII. 240 & NJ., P. 7

जैसे भी हो वैसे इन का त्याग करना पापों को हटाना है !

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रंथकार ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मज़हब के मानने वाले भी सैकड़ों दिगम्बर साधु हो गुज़रे हैं !

[७]

दिगम्बर जैन मुनि !
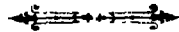
"जधजादरूवजादं उप्पाडिद केसमसुगं सुद्धं ।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ॥५॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोग जोग सुद्धीहिं ।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भव कारणं जो एहं ॥६॥"

—प्रवचन सार !

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया है कि उनका लिंग अथवा वेश यथाजातरूप नग्न है—सिर और दाढ़ीके केश उन्हें नहीं रखने होते—वे इन स्थानोंके बालों को हाथ से उखाड़ कर फेंक देते हैं—यह उनकी केश-लुञ्चन क्रिया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का वेष शुद्ध, हिंसादि रहित, शृंगार रहित, ममता-आरम्भ रहित, उपयोग और योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा

रहित, मोक्ष का कारण होता है। सारांशरूप में दिगम्बर जैन मुनि का वेष यह है; किन्तु यह इतना दुर्द्धर और गहन है कि संसार-प्रपंच में फंसे हुए मनुष्य के लिये यह संभव नहीं है कि वह एक दम इस वेश को धारण कर ले! तो फिर क्या यह वेश अव्यवहार्य है! जैनशास्त्र कहते हैं, 'कदापि नहीं!' और यह है भी ठीक क्योंकि उनमें दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य को पहले से ही एक वैज्ञानिक ढंग पर तैयार करके योग्य बना लिया जाता है और दिगम्बर पद में भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढंग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनेतर शास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर वेश का प्रतिपादन हुआ मिलता है; किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम-प्रवाह की कमी है। और यही कारण है कि परमहंस वानप्रस्थ भी उनमें सपत्नीक मिल जाते हैं। † जैनधर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी बातें बिलकुल असंभव हैं!

अच्छा तो, दिगम्बर वेष धारण करने के पहले जैनधर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक बतलाता है? जैन शास्त्रों में सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि एक गृहस्थ एक दम छलांग मार कर दिगम्बरत्व के उन्नत शैल पर नहीं पहुँच सका। उसको वहां तक पहुंचने के लिये क़दम-ब क़दम आगे बढ़ना होगा। इसी

---

† यूनानी लेखकों ने उनका उल्लेख किया है। देखो। AI. p. 181

क्रम के अनुरूप जैनशास्त्रों में एक गृहस्थ के लिये ग्यारह दर्जे नियत किये हैं। पहले दर्जे में पहुँचने पर कहीं गृहस्थ एक श्रावक कहलाने के योग्य होता है। यह दर्जे गृहस्थ को आत्मोन्नति के सूचक हैं और इनमें पहले दर्जे से दूसरे में आत्मोन्नति की विशेषता रहती है। इनका विशद वर्णन जैन ग्रंथों में जैसे 'रत्नकरण्डकश्रावकाचार' में खूब मिलता है। यहां इतना बता देना ही काफ़ी है कि इन दर्जों से गुज़र जाने पर ही एक श्रावक दिगम्बर मुनि होने के योग्य होता है। दिगम्बर मुनि होने के लिये यह उसको 'ट्रेनिङ्ग' है और सचमुच प्रोषधोपवासव्रत प्रतिमा से उसे नंगे रहने का अभ्यास करना प्रारंभ कर देना होता है। मात्र पर्व—अष्टमी और चतुर्दशी—के दिनों में वह अनारंभी हो—घर बाहर का काम-काज छोड़कर—व्रत-उपवास करता तथा दिगम्बर होकर ध्यान में लीन होता है ‡। ग्यारहवीं प्रतिमा में पहुंच कर वह मात्र लंगोटी का परिग्रह अपने पास रहने देता है और गृह-त्यागी वह इसके पहले हो जाता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का धारी वह 'ऐलक या क्षुल्लक' आदरपूर्वक विधिसहित यदि प्रासुक भोजन गृहस्थ के यहां मिलता है तो ग्रहण कर लेता है। भोजनपात्र का रखना भी उसकी ख़ुशी पर अवलम्बित है! बस, यह श्रावकपद की चरम-सीमा है। 'मुण्डकोपनिषद्'

‡ भमबु० पृ० २०५ तथा बौद्धों के 'अङ्गुत्तर निकाय' में भी इसका उल्लेख है।

के 'मुण्डक श्रावक' इसके समतुल्य होते हैं; किन्तु वहां वह साधु का श्रेष्ट रूप है *। इसके विपरीत जैनधर्म में उसके आगे मुनिपद और है। मुनिपद में पहुंचने के लिये ऐलक-श्रावक को लाज़मी तौर पर दिगम्बर-वेष धारण करना होता है और मुनिधर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुणों का पालन करना होता है। मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं :—

'पंचय महव्वमाहं समिदीश्रा पंच जिणवरोद्दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छुप्पि य आवासया लोचो ॥२॥
अच्चेल कमण्हाणं खिदिसयणमदंत घस्सणं चेव।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूल गुणा अट्ठवीसा दु ॥३॥ मूलाचार ॥

अर्थात्—"पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह), जिनवर कर उपदेशी हुई पांच समितियां (ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविष्टादिक का शुद्ध भूमिमें क्षेपण अर्थात् प्रतिष्ठापनासमिति), पांच इन्द्रियों का निरोध (चक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन—इन पांच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना), छह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), लोच, आचेलक्य, अस्नान, पृथिवीशयन, अदंतघर्षण, स्थितिभोजन, एक भक्त—ये जैन साधुओं के अट्ठाइस मूल गुण हैं।"

* वीर वर्ष ८ पृ० २५१-२५५

संक्षेप में दिगम्बर मुनि के इन अट्ठाइस मूलगुणों का विवेचनात्मक वर्णन यह है :—

(१) अहिंसा महाव्रत—पूर्णतः मन-वचन-काय पूर्वक अहिंसा धर्म का पालन करना;

(२) सत्य महाव्रत—पूर्णतः सत्य धर्म का पालन करना;

(३) अस्तेय महाव्रत— „ अस्तेय „ „

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत— „ ब्रह्मचर्य „ „

(५) अपरिग्रह महाव्रत—„ अपरिग्रह „ „

(६) ईर्या समिति—प्रयोजनवश निर्जीव मार्ग से चार हाथ ज़मीन देखकर चलना·

(७) भाषा समिति—पैशून्य, व्यर्थ हास्य, कठोर वचन, परनिंदा. स्वप्रशंसा, स्त्री कथा, भोजन कथा, राज-कथा, चोर कथा इत्यादि वार्ता छोड़कर मात्र स्वपर-कल्याणक वचन बोलना;

(८) एषणासमिति—उद्गमादि छयालीस दोषों से रहित, कृतकारित नौ विकल्पों से रहित, भोजन में रागद्वेष रहित—समभाव से—बिना निमंत्रण स्वीकार करे, भिक्षा-वेला पर दातार द्वारा पड़गाहने पर इत्यादि रूप भोजन करना;

(९) आदाननिक्षेपण समिति—ज्ञानोपकरणादि—पुस्त-कादि का—यत्नपूर्वक देख भाल कर उठाना-धरना;

(१०) प्रतिष्ठापना समिति—एकान्त, हरित व त्रसकाय

रहित, गुप्त, दूर, बिल रहित, चौड़े, लोकनिन्दा व विरोध-रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना;

(११) चक्षुर्निरोध व्रत—सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओं में राग-द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग;

(१२) कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत—सात स्वर रूप जीव शब्द (गान) और वीणा आदि से उत्पन्न अजीवशब्द रागादि के निमित्त कारण हैं; अतः इनका न सुनना;

(१३) घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत—सुगन्धि और दुर्गन्धि में राग-द्वेष नहीं करना;

(१४) रसनेन्द्रिय निरोध व्रत—जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकांक्षा रहित परिणाम पूर्वक दातार के यहाँ मिले भोजन को ग्रहण करना;

(१५) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत—कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप जो स्पर्श उस में हर्ष विषाद न रखना;

(१६) सामायिक—जीवन-मरण, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु, सुख-दुख, भूख-प्यास आदि बाधाओं में राग द्वेष रहित समभाव रखना;

(१७) चतुर्विंशति-स्तव—ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों की मन-वचन-काय की शुद्धता-पूर्वक स्तुति करना;

(१८) वन्दना—अरहंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरू और जिन शास्त्रको

मन-वचन-काय की शुद्धि सहित विना नमस्कार करना;

(१९) प्रतिक्रमण—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप वि को शोधना और अपने आप प्रगट करना;

(२०) प्रत्याख्यान—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, क —इन छहों में शुभ मन, वचन, काय से आगाम के लिए अयोग्य का त्याग करना;

(२१) कायोत्सर्ग—निश्चित क्रिया रूप एक नियत काल के लिये जिन गुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़ कर स्थित होना;

(२२) केशलौंच—दो, तीन या चार महीने बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिनमें अपने हाथसे मस्तक, दाढ़ी, मूंछ के बालों का उखाड़ना;

(२३) अचेलक—वस्त्र, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को नहीं ढंकना, और आभूषणों से भूषित न होना;

(२४) अस्नान—स्नान-उबटन-अञ्जन-लेपन आदि का त्याग;

(२५) क्षितिशयन—जीव बाधा रहित गुप्त प्रदेश में दण्डे अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना,

(२६) अदन्तधावन—अङ्गुली, नख, दांतौन, तृण आदि से दन्त मल को शुद्ध नहीं करना;

(२७) स्थितिभोजन—अपने हाथों को भोजन पात्र बना कर भीत आदि के आश्रय रहित चार अङ्गुल के अन्तर से

खड़े रहकर तीन भूमियों की शुद्धतासे आहार करना; और

भक्त—सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन समय छोड़कर एक बार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को प्राप्त कर सकता है जब वह उपरोक्त अट्ठाईस मूल गुणों का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनिके लिये और भी उत्तर गुणों का पालन करना आवश्यक है; किन्तु ये अट्ठाइस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दें! और यही कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन वेष में देखने को नसीब हो रहे हैं। यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैनधर्म में नहोता तो अन्य मतान्तरों के नग्न साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते! दिगम्बर साधु—नङ्गे जैन साधुके लिये 'दिगम्बर साधु' पदका प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं—के उपरोक्त प्रारम्भिकगुणों को देखते हुये—जिन के विना वह मुनि ही नहीं हो सकता—दिगम्बर मुनि के जीवन के कठिनश्रम, इन्द्रियनिग्रह, संयम, धर्मभाव, परोपकारवृत्ति, निसङ्गरूप इत्यादि का सहज ही पता लग जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्य हों तो आश्चर्य क्या?

दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी

ज़रूरी है कि उन के (१) आचार्य (२) उपाध्याय और (३) साधुरूप तीन भेदोंके अनुसार कर्त्तव्य में भी भेद है। आचार्य साधु के गुणों के अतिरिक्त सर्वकाल संबन्धी आचारको जान कर स्वयं तद्वत् आचरण करे तथा दूसरों से करावे; जैनधर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओं का संग्रह करे और उनकी सार-संभाल रक्खे। उपाध्याय का कार्य साधुकर्म के साथ साथ जैन शास्त्रों का पठन पाठन करना है। और जो मात्र उपरोक्त गुणों को पालता हुआ ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों को अपने कर्तव्य के अनुसार जीवन-यापन करना पड़ता है। आचार्य महाराज का जीवन सङ्घ के उद्योत में ही लगा रहता है; इस कारण कोई कोई आचार्य विशेष ज्ञान ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वयं साधुपद में आ जाते हैं! मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है।

[८]

दिगम्बर-मुनि के पर्यायवाची नाम।

दिगम्बर मुनिके लिये जैनशास्त्रों में अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं। तथापि जैनेतर साहित्य में भी वह एक से अधिक नामों से उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उन का साधारण सा उल्लेख कर देना उचित है; जिससे किसी

प्रकार की शङ्का को स्थान न रहे। साधारणतः दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्नप्रकार देखने को मिलते हैं :—

अकच्छ, अकिञ्चन, अचेलक (अचेलव्रती), अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अह्रीक, आर्य, ऋषि, गणी, गुरु, जिन-लिङ्गी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नग्न, निश्चेल, निर्ग्रंथ, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, संयमी (संयत), स्थविर, साधु, सन्यस्थ, श्रमण, क्षपणक।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है :—

१. अकच्छ +—लंगोटी रहित जैन मुनि;

२. अकिञ्चन ×—जिसके पास किञ्चित् मात्र (ज़रा भी) परिग्रह न हो वह जैन मुनि;

३. अचेलक या अचेलव्रती—चेल अर्थात् वस्त्ररहित साधु। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनेतर साहित्य में हुआ मिलता है। 'मूलाचार' ÷ में कहा है :—

"अच्चेलकं लोचो वोसट्टसरीरदा य पडिलिहणं।
एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विधो होदिणादव्वो ॥९०८॥"

अर्थ—'आचेलक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केश लोंच, शरीर संस्कारका अभाव, मोर पीछी—यह चार प्रकार लिंगभेद जानना।'

+ हूजैश०, पृ० ४ × (Ibid.) ÷ पृष्ठ ३२६

श्वेताम्बर जैन ग्रंथ "आचाराङ्गसूत्र" में भी अचेलक शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है :—

"जे अचेले परि वुसिए तस्सणं भिक्खुस्सणो एवं भवइ।* —"

"अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे।" †

उनके 'ठाणांङ्गसूत्र' में है:"पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे अचेलए सचेलयाहि निग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे नाइक्कमइ।" अर्थात् "और भी पांच कारणसे वस्त्र रहित साधु वस्त्र-संहित साध्वी साथ रहकर जिनाज्ञाका उल्लंघन करते हैं।"‡

बौद्ध शास्त्रों में भी जैनमुनियों का उल्लेख 'अचेलक' रूप में हुआ मिलता है। जैसे "पाटिकपुत्त अचेलो"—अचेलक पाटिक पुत्र, यह जैन साधु थे×। चोनो त्रिपिटक में भी जैनसाधु "अचेलक" नाम से उल्लिखित हुये हैं। ÷ बौद्ध टीकाकार बुद्धघोष 'अचेलक' से भाव नग्न के लेते हैं। +

४. अतिथि—ज्ञानादि सिद्धयर्थं तनुस्थित्यर्थान्नाय यः स्वयम्, यत्नेनातति गेहं वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथिः।

—सागार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ४२।

जिनके उपवास, व्रत आदि करने का गृहस्थ श्रावकके समान अष्टमी आदि कोई खास तिथि (तारीख) नियत न हो; जब चाहे करें।

५. अनगार *—आगार रहित, गृहत्यागी दिगम्बर

---

* आचा० पृ० १५१ † अध्याय ६ उद्देस १ सूत्र ४

‡ ठाणा०, पृ०५६१ × ममबु०, पृ०२५५ ÷ "वीर" वर्ष ४ पृ०३५३

+ अचेलकोऽतिनिच्चेलो नग्गो।' ---IHO. III 245

* वृजैश०, पृ० ४

मुनि। इस शब्दका प्रयोग—अणयारमहरिसीणं··· ····मूलाचार, अनगारभावनाधिकार श्लो० २ में, अनगार महर्षिणां इसही श्लोक को संस्कृत छाया और "न विद्यतेऽगारं गृहं स्त्र्यादिकं येषां तेऽनगाराः" इसही श्लोक की संस्कृत टीका में मिलता है।

श्वेताम्बरीय "आचाराङ्ग सूत्र में है: "तं वोसज्ज वत्थमणगारे।" †

६. अपरिग्रही—तिलतुषमात्र परिग्रह रहित दिग० मुनि।

७. अह्रीक—लज्जाहीन, नंगेमुनि। इस शब्द का प्रयोग अजैन ग्रंथकारों ने दिगम्बर मुनियों के लिये घृणा प्रकट करते हुये किया है; जैसे बौद्धों के 'दाठावंश' में है ‡:—

'इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुणवज्जिता।
थद्धा सठाच दुप्पञ्ञा सग्गमोक्ख विबन्धका॥८८॥'

बौद्ध नैयायिक कमलशील ने भी जैनों का 'अह्रीक' नाम से उल्लेख किया है (अह्रीकादयश्चोदयन्ति: स्याद्वाद परीक्षा प्र० 'तत्वसंग्रह' पृ० ४८६)। वाचस्पति अभिधानकोष में भी 'अह्रीक' का दिगम्बर मुनि कहा है: "अह्रीक क्षपणके तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।" 'हेतुबिन्दुतर्क-टीका' में भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख 'क्षपणक' और 'अह्रीक' नाम से हुआ है। तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेव-सूरि ने भी अपने 'स्याद्वाद-रत्नाकर' ग्रंथ में दिगम्बर जैनों

---

† आचा०, पृ० २१० ‡ दाठा०, पृ० १४

का उल्लेख अह्रीक नाम से किया है। (स्याद्वादरत्नाकर पृ० २३०) +।

८. आर्य—दिगम्बर मुनि। दिगम्बराचार्य शिवार्य अपने दिगम्बर गुरुओं का उल्लेख इसी नाम से करते हैं × :—

"अज्ज जिणणंदिगणि, सव्वगुत्तगणि अज्जमित्तणंदीणं।
अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च॥
पुव्वायरिय णिबद्धा उपजीविता इमा ससत्तीए।
आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोजिणा रइदा॥"

यह सब आर्य (साधु) पाणिपात्रभोजी दिगम्बर थे।

९. ऋषी—दिगम्बर साधु का एक भेद है (यह शब्द विशेषतया ऋद्धिधारी साधु के लिये व्यवहृत होता है)। श्री कुन्दकुन्दाचार्य इसका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं ÷ :—

'मय, राय, दोस, मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंच महव्वयधारा आयदणं महरिसो भणियं॥६॥'

अर्थात्—मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध, लोभ, माया आदि से रहित जो पंचमहाव्रतधारी है, वह महा ऋषि है।

१०. गणी—मुनियों के गण में रहने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होते हैं। 'मूलाचार' में इसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है :—

+ पुरातत्व, वर्ष ५ अङ्क ४ पृ० २६६-२६७

× जैहि०, भा० १२ पृ० ३६० ÷ अष्ट०, पृ० ११४

"विस्सामिदो तद्दिवसं मीमंसित्ता णिवेदयदि गणिणो ।" †

११. गुरु—शिष्यगण—मुनि श्रावकादि के लिये धर्म-गुरु होनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे भी अभिहित है। उल्लेख यूं मिलता है :—

"एवं आपुच्छित्ता सगवर गुरुणा विसज्जिओ संतो ।" ‡

१२. जिनलिङ्गी +—जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट नग्न भेष का पालन करने के कारण दिगंबर मुनि इस नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

१३. तपस्वी—विशेषतर तप में लीन होने के कारण दिगंबर मुनि तपस्वी कहलाते हैं। 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' में इसकी व्याख्या निम्नप्रकार की गई है :—

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥"*

१४. दिगम्बर—दिशायें उन के वस्त्र हैं इसलिये जैन मुनि दिगम्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि हुआ 'दिगम्बर' शब्द से ही प्रगट करते हैं :—

"वइरायहं हुवइं दियंवरेण ।
सुपसिद्ध णाम कणयामरेण ॥"†

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थोंमें भी जैन मुनि इस नामसे उल्लिखित हुए हैं।‡

---

† मूला०, पृ० ७५ ‡ मूला०, पृ०, ६७ + वृजैश०, पृ० ४
* रश्रा०, पृष्ठ ८ † वीर, वर्ष ४ पृष्ठ २०१
‡ विष्णु पुराण में है: 'दिगम्बरो मुण्डो वर्हपत्रधरः' [५-२] 'पद्म-

१५. दिग्वास—यह भी नं० १४ के भावमें प्रयुक्त हुआ जैनेतर साहित्य में मिलता है। 'विष्णु पुराण' में (५।१०) में है—दिग्वाससामयं धर्मः।

१६. नग्न—यथाजातरूप जैन मुनि होते हैं, इसलिये वह नग्न कहे गए हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने इस शब्दका उल्लेख यों किया है:—

"भावेण होइ णग्गो, बाहिरलिंगेण किं च णग्गणं।" +

वराहमिहिर कहते हैं—"नग्नान् जिनानां विदुः।" ×

१७. निश्चेल—वस्त्र रहित होने के कारण यह नाम है। उल्लेख इस प्रकार है:—

"णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं।" ÷

१८. निर्ग्रन्थ—ग्रन्थ अर्थात् अन्तर-बाहर सर्वथा परिग्रह रहित होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से बहुत प्राचीन कालसे प्रसिद्ध हैं। 'धर्मपरीक्षा' में निर्ग्रंथ साधु को बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) रहित नग्न ही लिखा है:—

'त्यक्तबाह्यान्तरग्रन्थो निःकषायो जितेन्द्रियः।
परीषहसहः साधुर्जातरूपधरो मतः॥१८॥७६॥'

पुराण (भूमिखण्ड, अध्याय ६६), प्रबोधचन्द्रोदयनाटक अङ्क ३ (दिगम्बर सिद्धान्तः), पञ्चतन्त्रः "एकाकी गृहसंत्यक्त पाणिपात्रो दिगम्बरः।"

—पञ्चमूतन्त्र !

+ अष्ट०, पृष्ट २०० × वराह मिहिर १९।६१

÷ अष्ट०, पृ० ६३

"मूलाचार" में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्ग्रंथ भी कहा है :—

"वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्तादिणा असंवरणं ।*
णिब्भूसण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पुज्जं ॥३०॥"

'भद्रबाहु चरित्र' के निम्न श्लोक भी 'निर्ग्रंथ' शब्दका भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं† :—

'निर्ग्रंथ मार्गमुत्सृज्य सग्रन्थत्वेन ये जडाः ।
व्याचक्षन्ते शिवं नृणां तद्वचो न घटामटेत् ॥८५॥'

अर्थ—"जो मूर्ख लोग निर्ग्रन्थ मार्ग के बिना परिग्रह के सद्भाव में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना बताते हैं उनका कहना प्रमाणभूत नहीं हो सकता !"

"अहो निर्ग्रन्थता शून्यं किमिदं नौतनं मतम् !
न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम् ॥१४५॥'

अर्थ—"अहो ! निर्ग्रन्थता रहित यह दण्ड पात्रादि सहित नवीन मत कौन है ? इन के पास मेरा जाना योग्य नहीं है ।"

'भगवन्मदाग्रहाद्ग्न्या गृह्णीतामर पूजिताम् ।
निर्ग्रन्थपदवीं पूतां हित्वा सङ्गं मुदाऽखिलम् ॥१४६॥'

अर्थ—"भगवन् ! मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोड़ कर पहले ग्रहण की हुई देवताओंसे पूजनीय तथा पवित्र निर्ग्रन्थ अवस्था ग्रहण कीजिये ।" 'सङ्ग' शब्द का अर्थ अगले श्लोक में 'सङ्गं वसनादिकमञ्जसा ।' किया है । अतः यह स्पष्ट

---

* मूला०, पृष्ठ १३ † भद्र० पृष्ठ ७८ व ८६

है कि निर्ग्रन्थ अवस्था वस्त्रादि रहित दिगम्बर है ! किन्तु दुर्भाग्यसे जैनसमाजमें कुछ ऐसे लोग होगए हैं जिन्होंने शिथिलाचारके पोषणके लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्थाको भी निर्ग्रन्थ मार्ग घोषित कर दिया है। आज उनका संप्रदाय 'श्वेताम्बर जैन' नामसे प्रसिद्ध है ! यद्यपि उनके पुरातन ग्रन्थ दिगम्बर भेषको प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं; किन्तु अपनेको प्राचीन संप्रदाय प्रगट करनेके लिये वह वस्त्रादि युक्तभी निर्ग्रन्थमार्ग प्रतिपादित करते हैं। यह मान्यता पुष्ट नहीं है। इसलिये संक्षेपमें इस पर यहां विचार कर लेना समुचित है।

श्वेताम्बर ग्रन्थ इस बातको प्रकट करते हैं कि दिगंबर (नग्न) धर्मको भगवान् ऋषभदेवने पालन किया था—वह स्वयं दिगम्बर रहे थे* और दिगम्बर वेष इतर-वेषोंसे श्रेष्ठ है‡। तथापि भगवान महावीरने निर्ग्रन्थ श्रमणके लिए दिग-

---

* 'कल्पसूत्र'—JS. pt I. p २८५।

‡ आचाराङ्ग सूत्र में कहा है :—

"Those are called naked, who in this world, never returning (to a worldly state), (follow) my religion according to the commandment. This *highest doctrine* has here been declared for men."—JS. I. p. 56.

"आवरण वज्जियाणं विसुद्धजिणकप्पियाणन्तु।"

अर्थ—"वस्त्रादि आवरणयुक्त साधु से आवरण रहित जिनकल्पि साधु विशुद्ध है। (संवत् १९३४में मुद्रित प्रवचनसारोद्धार भाग ३ पृष्ठ ११)

म्बरत्वका प्रतिपादन किया था और आगामी तीर्थंकरभी उस का प्रतिपादन करेंगे, यह भी श्वेताम्बर शास्त्र प्रगट करते हैं+। अतः स्वयं उनके अनुसारभी वस्त्रादियुक्त वेष श्रेष्ठ और मूल निर्ग्रन्थ धर्म नहीं होसकता!

"श्वेताम्बराचार्य श्री आत्मारामजीने भी अपने "तत्त्व-निर्णयप्रासाद" में 'निर्ग्रन्थ' शब्दकी व्याख्या दिगम्बर भाव-पोषक रूपमें दी है; यथा —

'कंथा कौपीनोत्तरा संगादीनाम् त्यागिनो यथा जात-रूपधरा निर्ग्रन्था निष्परिग्रहाः।'

जैनेतर साहित्य और शिलालेखीय साक्षीभी उक्त व्याख्याकी पुष्टि करती है। वैदिक साहित्य में 'निर्ग्रन्थ' शब्द

+"सेजहानामए अज्जोमए समणाणं निग्गथाणं नग्गभावे मुण्ड भावे अण्हाणए अदन्तवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पण्णत्ताओ एवा-मेव महा पउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं नग्गभावे जाव लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पन्नवेहिंत्ति।"—अर्थात् भगवान महावीर कहते हैं कि श्रमण निर्ग्रन्थको नग्नभाव मुण्डभाव अस्नान, छत्र नहीं करना, पगरखी नहीं पहनना, भूमिशैया, केशलोंच, ब्रह्मचर्य पालन, अन्यके गृहमें भिक्षार्थ जाना, आहारकी वृत्ति जैसे मैंने कही वैसे महापद्म अरहतभी कहेंगे।

ठाणा०, पृष्ट ८१३

'नगिणापिंडोलगाहमा । मुण्डाकण्डू विणट्ठग ॥७२॥

—सयडांग

'अहाइ भगवं एवं—से दंते दविए वोसट्ठकाएत्तिवच्चे —माहणेत्ति वा, समणेत्ति वा, भिक्खूत्ति वा, णिग्गंथेत्ति वा पडिभाह भंते!'

—सूयडांग २५८

का व्यवहार 'दिगम्बर' साधुके रूप में ही हुआ मिलता है। टीकाकार उत्पल कहते हैं× :—

"निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः।"

इसी तरह सायणाचार्यभी निर्ग्रन्थ शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रगट करते हैं + :—

"कथा कौपीनोत्तरा संगादिनाम् त्यागिनो, यथाजात-रूपधरा निर्ग्रन्था—निष्परिग्रहाः। इति संवर्तश्रुतिः।"

'हिन्दू पद्मपुराण' में दिगम्बर जैन मुनिके मुखसे कह-लाया गया है :—

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते।"

अब यदि निर्ग्रन्थके भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहां भी निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनिके रूपमें व्यवहृत हुआ है।

"ब्रह्माण्डपुराण" के उपोद्घात ३ अ० १४ पृ० १०४ में है :—

"नग्नाद्यां न पश्येयुः श्राद्धकर्म व्यवस्थितम् ॥३४॥"

अर्थात्—"जब श्राद्धकर्म में लगे तब नग्नादिकों को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर ३६ वें श्लोक में लिखा है कि नग्नादिक कौन हैं?

× IHQ. III., 245

+ तत्वनिर्णयप्रसाद पृष्ठ ५२३—व दि जै० १०-१-४८

"वृद्ध श्रावक निर्ग्रन्थाः इत्यादि"*

वृद्ध श्रावक शब्द क्षुल्लक-ऐलक का द्योतक है तथा निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनिका द्योतक है अर्थात् जैनधर्म के किसी भी गृहत्यागी साधुको श्राद्धकर्म के समय नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संभव है कि यह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दें। अतः वैदिक साहित्यके उल्लेखोंसेभी निर्ग्रन्थ शब्द नग्न साधुके लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इसही बातका पोषण करता है। उसमें 'निर्ग्रन्थ' शब्द साधुरूपमें सर्वत्र नग्नमुनिके भावमें प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान महावीर को बौद्धसाहित्यमें उनके कुल अपेक्षा निग्रन्थ नातपुत्त कहा है † और श्वेताम्बर जैन साहित्यसे भी यह प्रकट है कि निर्ग्रन्थ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निर्ग्रन्थ और अचेलक ‡ प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट हैकि बौद्धोंने 'निर्ग्रन्थ' और 'अचेलक' शब्दोंको एकही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूपमें। तथापि बौद्ध साहित्यके निम्न उद्धरणभी इस ही बातके द्योतक हैं :—

दीघनिकाय ग्रन्थ (१। ७८-७९ में लिखा है कि + :—

"Pasendi, King of Kosal saluted Niganthas."

---

* वेजै०, पृष्ठ १४।

† मज्झिमनिकाय २।६२; अंगुत्तरनिकाय १।२२०।

‡ जातक भा० २ पृ० १८२ – ममबु० २४५।

+ Indian Historical Quarterly, vol. I. p. 153.

अर्थात्—कौशलका राजा पसेनदी (प्रसेनजित) निगन्थों (नग्न जैन मुनियों) को नमस्कार करता था।

बौद्धों के "महावग्ग" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि "एक बड़ी संख्या में निर्ग्रन्थगण वैशाली में, सड़क २ और चौराहे चौराहे पर शोर मचाते दौड़ रहे थे।" इस उल्लेखसे दिगम्बर मुनियोंका उस समय निर्बाध रूप में राज मार्गों से चलने का समर्थन होता है। वे अष्टमी और चतुर्दशी को इकट्ठे होकर धर्मोपदेश भी दिया करते थे *।

'विशाखावत्थु' में भी निर्ग्रन्थ साधु को नग्न प्रगट किया है ×। 'दीघनिकाय' के 'पासादिक सुत्तन्त' में है कि "जब निगन्ठ नातपुत्तका निर्वाण होगया तो निर्ग्रन्थ मुनि आपसमें झगड़ने लगे। उनके इस झगड़ेको देखकर श्वेतवस्त्र धारी गृहीश्रावक बड़े दुःखी हुये ÷। अब यदि निर्ग्रन्थ साधु भी श्वेतवस्त्र पहनते होते तो श्रावकोंके लिये वह एक विशेषण रूपमें न लिखे जाते। अतः इससे भी 'निर्ग्रन्थसाधु' का नग्न होना प्रगट है।

'दाठावंसो' में 'अहिरिका' शब्दके साथ साथ निगण्ठ शब्दका प्रयोग जैनसाधुके लिए हुआ मिलता है +। और

---

* महावग्ग २।१।१ और भ० महावीर और म० बुद्ध पृ० २८०

× भमबु० पृ० २४२।

÷ "तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगण्ठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता, कलह जाता ···वधो एव खोमंजेनिगन्ठेसु नाथपुत्तियेसु वत्तति ये पि निगन्ठस्स नाथपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना···दु रक्खाने इत्यादि।" (PTS. III 117--118) भमबु, पृ० २१४

+ 'इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुण वज्जिता। यद्धा सठाच दुप्पञ्ञा

'अह्रीक' या 'अहिरिक' शब्द नग्नता का द्योतक है। इसलिये बौद्ध साहित्यानुसारभी निर्ग्रन्थ साधुको नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षीभी इसी बातको पुष्ट करतीहै। कदम्बवंशी महाराज श्रीविजयशिवमृगेश वर्माने अपने एक दानपत्रमें अर्हन्त् भगवान और श्वेताम्बर महाश्रमण संघ तथा निर्ग्रन्थ अर्थात् दिगम्बर महाश्रमण संघके उपभोगके लिये कालवङ्ग नामक ग्रामको भेंट में देनेका उल्लेख किया है *। वह ताम्रपत्र ई० पांचवीं शताब्दिका है। इससे स्पष्ट है कि तबके श्वेताम्बरभी अपनेको निर्ग्रन्थ न कहकर दिगम्बर संघको ही निर्ग्रन्थ संघ मानते थे। यदि यह बात न होतीतो वह अपनेको 'श्वेतपट' और दिगम्बरको 'निर्ग्रन्थ' न लिखाने देते।

कदम्ब ताम्रपत्रके अतिरिक्त विक्रम सं० ११६१ का ग्वालियरसे मिला एक शिलालेखभी इसी बातका समर्थन करता है। उसमें दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निर्ग्रन्थनाथ' अर्थात् दिगम्बर मुनियोंके नाथ श्रीजिनेन्द्रका अनुयायी लिखा

सग्गमोक्ख विबन्धका ॥८८॥ इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो। पब्बाजेसि सकारट्ठा निगण्ठे ते असेसके ॥८९॥'

—दाठावंसो पृ० १४

*'——···——···कदम्बानां श्रीविजयशिवमृगेशवर्म्मा कालवङ्ग ग्रामं त्रिधा विभज्य दत्तवान् अत्रपूर्व्वमर्हच्छाला परमपुष्कलस्थान निवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्र देवताभ्य एकोभागः द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्म्मकरण परस्य श्वेतपट महाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघोपभोगायेति ——— ———।''

—जैहि० भा० १४ पृ० २२६

है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरमुनि का द्योतक है ÷।

चीनी यात्री ह्वानसांगके वर्णनसे भी यही प्रगट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है :—

"The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair." (St Julien, Vienna, p 224)

अतः इन सब प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न), मुनिका है।

१६. निरागार—आगार घर आदि परिग्रह रहित दिगंबर मुनि। 'परिग्गहरहिओ निरायारो' †।

२०. पाणिपात्र—करपात्र ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बर मुनि।

'णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरि देहिं।'

२१. भिक्षुक—भिक्षावृत्तिका धारक होनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है :—

÷ The Gwalior inscrips of Vik.S.1161 (1104 A.D.) "It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nigranthanatha)"---Catalogue of Archaeological Exhibits in the U. P. P. Museum Lucknow. Pt. I (1915) P. 44

† अष्ट०, पृ० ७०

'मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता।
खिप्पं णिवारयंतो तोहिं दु गुत्तो हवदि एसो ॥३३१॥'

२२. महाव्रती‡—पंच महाव्रतोंको पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे प्रगट हैं।

२३. माहण—ममत्व त्यागी होनेके कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है।

२४. मुनि—दिगम्बर साधु। श्री कुन्दकुन्दाचार्य इस का उल्लेख यूं करते हैं+ :—

"पंचमहव्वय जुत्ता पंचिंदिय संजमा णिरावेक्खा।
सज्झायझयण जुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छंति ॥"

२५. यति—दि० मुनि। कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—
"सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे।" ×

२६. योगी—योगनिरत होनेके कारण दि० साधुका यह नाम है। यथा ÷ —

"जं जाणियूण जोई जो अत्थो जोइ ऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं अणोवयं लहइ णिव्वाणं ॥"

२७. वातवसन—वायुरूपी वस्त्रधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि। "श्रमण दिगम्बराः श्रमण वातवसनाः"—इतिनिघण्टुः

२८. विवसन—वस्त्र रहित मुनि। वेदान्तसूत्रकी टीका में दिगम्बरजैन मुनि 'विवसन' और 'विसिच्' कहेगए हैं।*

---

‡ वृजैश, पृ० ४ + अष्ट० पृ० १४२
× अष्ट० पृ० ६६ ÷ अष्ट०, पृ० २६०
* वेदान्तसूत्र २-२-३३ शङ्करभाष्य—वीर वर्ष २ पृ० ३१७

२६. संयमी (संयत्)—यमनियमोंका पालक सो दिगम्बर मुनि । उल्लेख यूं है :—

"पंचमहव्वय जुत्तो तिहि गुत्तिहिं जो स संजदो होइ ।"†

३०. स्थविर—दीर्घ तपस्वी रूप दिगम्बर मुनि । 'मूलाचार' में उल्लेख इस प्रकार है * :—

"तत्थ ण कप्पइ वासो जत्थ इमे णत्थि पंच आधारा ।
आइरियउवज्झाया पवत्त थेरा गणधरा य ॥"

३१. साधु—आत्मसाधना में लीन दिगम्बर मुनि । इनको भी कुछ परिग्रह न रखने का विधान है‡ :—

"वालग्ग कोडिमत्तं परिगह गहणं ण होइ साहूणं ।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णाणं इक्क ठाणम्मि ॥१७॥"

३२. सन्यस्त‡—सन्यास ग्रहण किये हुये होने के कारण दि० मुनि इस नाम से भी प्रख्यात हैं ।

३३. श्रमण—अर्थात् समरसीभाव सहित दिगम्बर साधु । उल्लेख यूं है —

'वन्दे नव सावणा' (वन्दे तपः श्रमणान्) +
'समणोमेत्ति य पढमं बिदियं सव्वत्थ संजदो मेत्ति ।' ×

३४. क्षपणक—नग्न साधु । दिगम्बराचार्य योगीन्द्र देव ने यह शब्द दिगम्बर साधु के लिए प्रयुक्त किया है ÷ —

---

† अष्ट० पृ० ७१ * मूला०, पृष्ठ ७१ ‡ अष्ट, पृ० ६७
‡ वृजैश०, पृ० ४ + अष्ट०, पृ० ३७ × मूला०, पृ० ४५
÷ 'परमात्म प्रकाश'—रुआ० पृ० १४०

"तरुणउ बूढउ रूपडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु ।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढउ मरणइ सव्व ॥८३॥"

श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों में भी दिगम्बर मुनियों के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है* :—

"श्रीमाणराजकुलजोऽपिसमुद्र सूरि—
गच्छं शशास किल दमवण प्रमाणा (?) ।
जित्वा तदा क्षपणकान्स्ववशं वितेने
नागेंद्रहे (?) भुजगनाथनमस्य तीर्थे ॥"

श्री मुनिसुन्दर सूरि ने अपनी गुर्वावली में इस श्लोक के भाव में 'क्षपणकान्' की जगह 'दिग्वसनान्' पद का प्रयोग करके इसे दिगम्बर मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है † । श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोष में 'नग्न' का पर्यायवाची शब्द 'क्षपणक' भी दिया है ‡ । यही बात श्रीधरसेन के कोष से भी प्रकट है + । अजैन शास्त्रों में भी 'क्षपणक' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है । 'उत्पल' कहता है × :—

"निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः !"

"अद्वैतब्रह्मसिद्धि" (पृ० १६९) से भी यही प्रकट है:—

"क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इतिकेचिन ।"

---

* वीर०, पृ० १३९
† वीर०, पृ० १४०
‡ 'नग्नो विवाससि मागधे च क्षपणके ।'
+ 'नग्नक्षिपु विवस्त्रे स्यात्पुंसि क्षपणवन्दिनोः ।'
× IHQ III, 245

"प्रबोधचंद्रोदय नाटक" (अङ्क ३) में भी यही निर्दिष्ट किया गया है ÷:—

"क्षपणकवेशो दिगंबर सिद्धान्तः।"

"पंचतंत्र-अपरीक्षितकारकतंत्र"*"दशकुमार चरित्र"† तथा "मुद्राराक्षस-नाटक"‡ में भी "क्षपणक" शब्द दिगम्बर मुनिके लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। मोनियर विलियम्सके 'संस्कृतकोष' में भी इसका अर्थ यही लिखा है+।

इस प्रकार उपरोक्त नामोंसे दिगम्बर जैन मुनि प्रसिद्ध हुये मिलते हैं। अतएव इनमें से किसीभी शब्दका प्रयोग दिगम्बर मुनिका द्योतक ही समझना चाहिये।

÷ J G XIV 48

* (क्षपणक विहार गत्वा)--'एकाकीगृहमंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।'

† द्वितीय उच्छ्वास वीर वर्ष २ पृ० ३१७

‡ मुद्राराक्षस अङ्क ४—वीर, वर्ष ४ पृ० ४३०

+ "Ksapanaka is a religious mendicant, specially a Jain mendicant who wears no garment."---Monier William's Sanskrit Dictionary p. 326.

इतिहासातीतकालमें दिगम्बर मुनि ।

"आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः.
रूपमुपसदा मेतन्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥"

—यजुर्वेद अ० १९ मंत्र १४ ।

भारतवर्षका ठीक ठीक इतिहास ईस्वीपूर्व आठवीं शताब्दि तक जाना जाता है । इसके पहले की कोईभी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती; यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी २ धार्मिक-वार्ता इस कालसे भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं । उनको यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये । दिगम्बर मुनियों के विषय में भी यही बात है । भगवान ऋषभदेव द्वारा एक अज्ञात अतीतमें दिगम्बर मुद्राका प्रचार हुआ और तबसे वह ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दि तकही नहीं बल्कि आजतक निर्बाध प्रचलित है । दिगम्बर मुद्राके इस इतिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीष्ट है !

इतिहासातीत कालमें प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन-सम्राट और जैन तीर्थंकरोंका होना प्रगट करते हैं और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्राका प्रचार भारतमें ही नहीं बल्कि दूर दूर देशों तक होगया था । दिगम्बर जैन आम्नायके प्रथमानुयोग

सम्बन्धी शास्त्र इस कथा-वार्ता से भरे हुये हैं, उनको हम यहाँ दुहराना नहीं चाहते, प्रत्युत जैनेतर शास्त्रोंके प्रमाणोंको उपस्थित करके हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर मुनि प्राचीन कालसे होते आये हैं और उनका विहार सर्वत्र निर्बाध रूपमें होता रहा है।

भारतीय साहित्यमें वेद प्राचीन ग्रन्थ माने गये हैं। अतः सबसे पहिले उन्हींके आधार से उक्त व्याख्या को पुष्ट करना श्रेष्ठ है। किन्तु इस सम्बन्धमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि वेदोंके ठीक २ अर्थ आज नहीं मिलते और भारतीय धर्मोंके पारस्परिक विरोधके कारण बहुतसे ऐसे उल्लेख उनमें से निकाल दिये गये अथवा अर्थ बदलकर रक्खे गए हैं जिनसे वेद-बाह्य सम्प्रदायों का समर्थन होता था। इसीके साथ यह बातभी है कि वेदोंके वास्तविक अर्थ आज ही नहीं मुद्दतों पहले लुप्त हो चुके थे* और यही कारण है कि एक ही वेदके अनेक विभिन्न भाष्य मिलते हैं। अतः वेदोंके मूल वाक्योंके अनुसार उक्त व्याख्याकी पुष्टि करना यहां अभीष्ट है!

'यजुर्वेद' अ० १६ मन्त्र १४ में, जो इस परिच्छेदके आरम्भमें दिया हुआ है, अन्तिम तीर्थंकर महावीरका स्मरण नग्न विशेषणके साथ किया गया है। 'महावीर' और 'नग्न'

* ई० पूर्व ७ वीं शताब्दिका वैदिक विद्वान् कौत्स्य वेदों को अनर्थक बतलाता है। [अनर्थका हि मन्त्राः।, यास्क, निरुक्त १५-१] यास्क इसका समर्थन करता है। [निरुक्त १६।२] देखो 'Asur India' p.1V

शब्द जो उक्त मन्त्रमें प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रन्थोंमें अन्तिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं। इसलिये इस मन्त्रका सम्बन्ध भगवान् महावीरसे मानना ठीक है। वैसे बौद्ध साहित्यादिसे स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्थामें उक्त मन्त्रमें 'महावीर' शब्द 'नग्न' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ इस बातका द्योतक है कि उसके रचयिताको तीर्थंकर महावीरका उल्लेख करना इष्ट है। इस मन्त्रमें जो शेष विशेषण हैं वहभी जैन तीर्थंकरके सर्वथा योग्य हैं और इस मन्त्रका फलभी जैन शास्त्रानुकूल है। अतः यह मन्त्र भ० महावीरको दिगम्बर मुनि प्रगट करता है!

किन्तु भगवान महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं, इसलिये उनसे पहलेके वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित है। सौभाग्यसे हमें 'ऋक्संहिता' (१०। १३६-२) में ऐसा उल्लेख निम्न शब्दोंमें मिल जाता है:—

"मुनयो वातवसनाः।"

भला यह वातवसन—दिगम्बर मुनि कौन थे? हिन्दू पुराण ग्रन्थ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे; जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। औरभी देखिये, श्रीमद्भागवत्में जैन तीर्थङ्कर ऋषभदेवने जिन ऋषियोंको दिगम्बरत्वका उपदेश दिया था, वे 'वातरशनानां श्रमण' कहे गये हैं‡। प्रो० अल्बेट

† वेजै०, पृ० ५५-६० निग्रन्थ ग्रं.पृ.173 भी देखो

‡ वेजै०, पृ० ३

वेबर भी उक्त वाक्यको दिगम्बर जैन मुनियोंके लिये प्रयुक्त हुआ व्यक्त करते हैं। ×

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद (अ० १५) में जिन 'व्रात्य' पुरुषोंका उल्लेख है, वे दिगम्बर जैन ही हैं; क्योंकि व्रात्य 'वैदिक संस्कार हीन' बताये गये हैं + और उनकी क्रियायें दिगम्बर जैनों के समान हैं। वे वेदविरोधी थे। झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ, करण खस और द्राविड़ एक व्रात्य क्षत्रीकी सन्तान बताये गये हैं ÷ और ये सब प्रायः जैनधर्मभुक्त थे। ज्ञातृवंशमें तो स्वयं भगवान् महावीरका जन्म हुआ था। तथापि मध्यकालमें भी जैनी 'व्रती' (Verteis) नामसे प्रसिद्ध रह चुके हैं, जो 'व्रात्य' से मिलता जुलता शब्द है *। अच्छा तो इन जैनधर्मभुक्त व्रात्योंमें दिगम्बर जैन मुनिका होना लाज़मी है †। 'अथर्ववेद' भी इस बातको प्रगट करता है। उसमें व्रात्यके दो भेद 'हीन व्रात्य' और 'ज्येष्ठ व्रात्य'

× IA., Vol. XXX, p. 280

+ अमरकोष २।८ व मनु०, १०।२०. सायणाचार्य भी यही कहते हैं:--"व्रात्यो नाम उपनयनादि संस्कारहीनः पुरुषः। सोऽर्थाद् यज्ञादिवेद-विहिताः क्रियाः कर्तुं नाधिकारी। इत्यादि।" -अथर्ववेद संहिता पृ० २६३

÷ मनु०, १०।२२

* सूस०, पृ० ३६८ व ३६६

† "व्रात्य" जैनी हैं, इसके लिए "भ० पार्श्वनाथ" की प्रस्तावना देखिए।

किये हैं। इनमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनिका द्योतक है; क्योंकि उसे 'सममिचमेढ्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है 'अपेतप्रजननाः' *। यह शब्द 'अह्रीक' शब्द के अनुरूप है और इससे ज्येष्ठव्रात्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदोंसे भी दिगंबर मुनियोंका अस्तित्व सिद्ध है†। अब देखिये उपनिषद् भी वेदोंका समर्थन करते हैं। 'जाबालोपनिषत्' निर्ग्रन्थ शब्दका उल्लेख करके दिगंबर साधुका अस्तित्व उपनिषद् कालमें सिद्ध करता है:—

"यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहः............

शुक्लध्यानपरायणः.........।" (सूत्र ६)

निर्ग्रन्थ साधु यथाजात-रूपधारी तथा शुक्लध्यान परायण होता है। सिवाय निर्ग्रन्थ (जैन) मार्ग के अन्यत्र

---

* भपा०, प्रस्तावना पृ० ४४-४५

† जैन ग्रन्थकार प्रातःस्मरणीय स्व० पं० टोडरमल्ल जी ने आज से लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले (!) निम्न वेद मंत्रों का उल्लेख अपने ग्रंथ 'मोक्षमार्गप्रकाश' में किया है और ये भी दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं:--

१. ऋग्वेद में आया है—"ओ३म् त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्या वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये। ओ३म् पवित्रं नग्नमुपस्पृशामहे एषां नग्ना जातिर्येषां वीरा इत्यादि।"

२. यजुर्वेद में है—ओ३म् नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परममाह संस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा।"—'ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्य वर्णं तमसः परस्तात स्वाहा।" (पृ० २०१)

कहीं भी शुक्ल ध्यान का वर्णन नहीं मिलता, यह पहले भी लिखा जा चुका है। 'मैत्रेयोपनिषद्' में 'दिगंबर' शब्दका प्रयोग भी इसी बातका द्योतक है ‡। 'मुण्डकोपनिषद्' की रचना भृगु अङ्गिरस नामक एक भ्रष्ट दिग० जैन मुनि द्वारा हुई थी और उसमें अनेक जैन मान्यतायें तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निर्ग्रन्थ' शब्द, जो खास जैनोंका पारिभाषिक शब्द है, इसमें व्यवहृत हुआ है और उसका विशेषण केश-लौंच (शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णं) दिया है +। तथा 'अरिष्ट-नेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियों के बाइसवें तीर्थङ्कर हैं ×। इससे भी उस काल में दिगंबर मुनियोंका होना प्रमाणित है।

अब 'रामायणकाल' में भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को देखिये। 'रामायण' के 'बालकाण्ड' (सर्ग १४ श्लो० २२) में राजा दशरथ श्रमणों को आहार देते बताये गये हैं ("तापसा भुञ्जते चापि श्र..णा भुञ्जते तथा।") और 'श्रमण' शब्द का अर्थ 'भूषणटीका' में दिगम्बर मुनि किया गया है +, जो ठीक है, क्योंकि दिगम्बर मुनिका एक नाम 'श्रमण' भी है। तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्र जी आदि को जैनभक्त प्रगट करते हैं + । 'योगवाशिष्ठ' में रामचन्द्र जी

‡ "देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बर सुखोस्म्यहम्।"--दिमु, पृ० १०
+ वीर, वर्ष ८ पृ० १४३
× 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः।'--ईशाद्य; पृ० १४
+ "श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसनाः।" + पद्मपुराण देखो

'जिनभगवान' के समान होने की इच्छा प्रगट करके अपनी जैनभक्ति प्रगट करते हैं ×। अतः रामायण के उक्त उल्लेखसे उस कालमें दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महाभारत" में भी 'नग्न क्षपणक' के रूपमें दिगंबर मुनियों का उल्लेख मिलता है ÷, जिससे प्रमाणित है कि "महाभारतकाल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैनशास्त्रानुसार उस समय स्वयं तीर्थंकर अरिष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथों का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थङ्कर ऋषभदेव जी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते हैं, यह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है वह देखिये †। वहाँ मैत्रेय पाराशरऋषिसे पूछते हैं कि 'नग्न किसको कहते हैं ?' उत्तरमें पाराशर कहते हैं कि "जो वेदको न माने वह नग्न है।" अर्थात् वेदविरोधी नंगे साधु 'नग्न' हैं। इस संबंध में देव और असुर संग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णुके द्वारा जैनधर्म की उत्पत्ति हुई, यह वह कहते हैं। इसमें भी जैनमुनिका स्वरूप 'दिगंबर' लिखा हैः—

× योगवासिष्ठ अ० १५ श्लो० ८

÷ आदिपर्व, अ० ३ श्लो० २६-२७

† विष्णुपुराण तृतीयांश अ० १७ व १८--वेजै०, पृ० २५ व पुरातत्व ४।१८०

"ततो दिगंबरो मुंडो बर्हिपत्र धरो द्विज।"

देवासुर युद्ध की घटना इतिहासातीत कालकी है। अतः इस उल्लेख से भी उस प्राचीन कालमें दिगंबर मुनिका अस्तित्व प्रमाणित होता है। तथा वह निर्बाध विहार करते थे, यहभी इससे प्रगट है; क्योंकि इसमें कहा गया है कि वह दिगंबर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरों के पास पहुँचा और उन्हें निजधर्म में दीक्षित कर लिया!‡

'पद्मपुराण' प्रथम सृष्टि खंड १३ (पृ० ३३) पर जैनधर्म की उत्पत्ति के संबन्ध में एक ऐसीही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रूप दिगंबर मुनि द्वारा जैनधर्म का निकास हुआ बताया गया है:—

बृहस्पति साहाय्यार्थं विष्णुना मायामोह समुत्पादयम् दिगम्बरेण मायामोहेन दैत्यान् प्रति जैनधर्मोपदेशः दानवानां मायामोह मोहितानां गुरुणा दिगंबर जैनधर्म दीक्षा दानम्।

मायामोह को इसमें "योगी दिगंबरो मुण्डो बर्हिपत्र- धरो ह्यंय" लिखा है+। इससे भी उक्त दोनों बातों की पुष्टि होती है।

इसी 'पद्मपुराण' में (भूमिखंड अ० ६६) × में राजा वेण की कथा है। उसमें लिखा है कि एक दिगंबर मुनिने उस राजा को जैनधर्म में दीक्षित किया था। मुनिका स्वरूप यूं लिखा है:—

---

‡ पुरातत्व ४।१७६ + वेजै०, पृ० १५

× R. C. Dutt, Hindu Shastras, pt. VIII pp 213-22 व JG XIV 89

"नग्नरूपो महाकायः सितमुण्डो महाप्रभः ।
मार्ज्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां सद्धिधारयन् ॥
गृहीत्वा पानपात्रञ्च नारिकेल मयंकरे ।
पठमानो भरच्छास्त्रं वेदशास्त्र विदूषकम् ॥
यत्रवेणो महाराजस्तत्रोपापारश्चरान्वितः ।
सभायां तस्य वेणस्य प्रत्रिवेश सपापवान् ॥"

वह नग्न साधु महाराज वेण की राजसभा में पहुंच गया और धर्मोपदेश देने लगा ÷ । इससे प्रगट है कि दिगंबर मुनि राजसभा में भी बे रोक टोक पहुँचते थे । वेण ब्रह्मासे छटी पीढ़ी में थे + । इसलिए वह एक अतीव प्राचीनकाल में हुये प्रमाणित होते हैं ।

'वायुपुराण' में भी निर्ग्रन्थ श्रमणोंका उल्लेख है कि श्राद्धमें इनको न देखना चाहिये ।*

'स्कंधपुराण' (प्रभासखंडके वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य अ० १६ पृ० २२१) में जैनतीर्थङ्कर नेमिनाथको दिगम्बरशिवके अनुरूप मानकर जाप करनेका विधान है† :—

÷ उसने बताया कि मेरे मत में--

"अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते ।
दया वै परमो धर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते ।"

यह सुनकर वेण जैनी होगया । (एवं वेणस्य वै राज्ञः छष्टिरेस्व महात्मनः । धर्माचारं परित्यज्य कथं पापे मतिर्भवेत ॥) जैन सम्राट् खारवेल के शिलालेख से भी राजा वेण का जैनी होना प्रमाणित है । (जर्नल ऑव दी बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भा० ११ पृ० २१४)

+JG., XIV 162 * पुरातत्व, पृ० ४ पृ० १८१

† वेजै०, पृ० ३४ ।

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्।
यादृग्रूपः शिवोहष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बर ॥९४॥
पद्मासन स्थितः सौम्य स्तथातं तत्र संस्मरन्।
प्रतिष्ठाप्य महामूर्ति पूजयामासवासरम् ॥९५॥
मनोभीष्ठार्थं सिद्ध्यर्थं ततः सिद्धमवाप्तवान्।
नेमिनाथ शिवेत्येवं नामचक्रे शवामनः ॥९६॥"

इस प्रकार हिन्दूपुराण ग्रन्थभी इतिहासातीतकालमें दिगम्बर जैन मुनियोंका होना प्रमाणित करते हैं।

बौद्ध शास्त्रोंमें भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो भगवान् महावीरके पहले दिगम्बर मुनियोंका होना सिद्ध करते हैं। बौद्ध साहित्यमें अन्तिम तीर्थंकर निर्ग्रन्थ महावीरके अतिरिक्त श्री सुपार्श्व‡ अनन्तजिन+ और श्री पुष्पदन्त× के भी नामोल्लेख मिलते हैं। यद्यपि उनके सम्बन्धमें यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे जैनतीर्थंकर और नग्न थे; किन्तु जब जैन साहि-

---

‡ 'महावग्ग' (१।२२-२३ SBE. p. 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृहमें जब पहले पहले धर्म प्रचारको आएतो लाठी वनमें "सुप्पतित्थ" के मंदिरमें ठहरे। इसके बाद इस मन्दिर में ठहरनेका उल्लेख नहीं मिलता। इसका यही कारण है कि इस जैन मन्दिरके प्रबन्धकोंने जब यह जान लिया कि म० बुद्ध अब जैनमुनि नहीं रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिए देखो भमबु० पृ० ५०-५१

+ उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु बताता है। आजीविकोंने जैनधर्मसे बहुत कुछ लिया था। अतः यह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आरिय-परियेषण-सुत्त IHQ III, 247

× 'महावस्तु में पुष्पदन्तको एक बुद्ध और ३२ लक्षणयुक्त महापुरुष बताया है। —ASM. p. 30.

त्यमें उस नामके दिगम्बर वेषधारी तीर्थङ्कर महामुनीश मिलते हैं, तब उन्हें जैन और नग्न मानना अनुचित नहीं है। वैसे बौद्ध साहित्य भ० पार्श्वनाथके तीर्थवर्ती मुनियोंको नग्न प्रगट करता है× । अतः इस स्रोतसे भी प्राचीनकालमें दिगम्बर मुनियोंका होना सिद्ध है।

इस अवस्थामें जैनशास्त्रोंका यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भ० ऋषभनाथके समयसे बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आरहे हैं और उनके द्वारा जनताका महत कल्याण हुआ है। जैनतीर्थङ्कर सबही राजपुत्र थे और बड़े २ राज्योंको त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारतके प्रथम सम्राट् भरत, जिनके नामसे यह देश भारतवर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुयेथे। उनके भाई श्रीबाहुबलिजी अपनी तपस्याके लिए प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रूपमें उनकी महान् मूर्ति आजभी श्रवणबेलगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी इस महाकाय नग्नमूर्तिके दर्शन करके स्त्री-पुरुष, बालक वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं । रामचन्द्रजी, सुग्रीव, युधिष्ठर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस कालमें हुये हैं; जिनके भव्य-चरित्रोंसे जैन शास्त्र भरे हुये हैं। सारांशतः गतकालमें भारत में दिगंबरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

×. 'महावग्ग' [१-७०-३] में है कि बौद्ध भिक्षुओंने नंगे और भोजन पात्रहीन मनुष्यों को दीक्षितकर लिया; जिसपर लोग कहने लगे कि बौद्धभी "तित्थियों" की तरह करने लगे। तित्थिय म० बुद्ध और म० महावीर से प्राचीन साधु और खासकर दि० जैन साधु थे। इसलिये इन्हें भ० पार्श्वनाथ के तीर्थका मुनि मानना ठीक है। भमबु०, पृ० २३६-२३७. व जैसिभा०, ११२-३।२४-२६; तथा IA., august 1930.

[१०]

भ० महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि !

'निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेसं ञाण दस्सनं परिजानातिः।'

—मज्झिमनिकाय ।

'निगण्ठो नातपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचार्यो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिर पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता।' —दीघनिकाय !

भगवान् महावीर वर्द्धमान् ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके प्रमुख राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी त्रिशलाके सुपुत्र थे। रानी त्रिशला वज्जियन राष्ट्रसंघके प्रमुख लिच्छवि-अग्रणी राजा चेटककी सुपुत्री थीं। लिच्छवि क्षत्रियोंका आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था। ज्ञातृक क्षत्रियों की बसती भी उसीके निकट थी। कुण्डग्राम और कोल्लाग-सन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे। भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और वह अपने ज्ञातृवंशके कारण "ज्ञातृपुत्र" के नामसे भी प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख इसी नामसे हुआ मिलता है और वहां उन्हें

म० गौतम बुद्धका समकालीन बताया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो भ० महावीर आजसे लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले इस धरातलको पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।*

भरी जवानी में ही महावीरजी ने राजपाठका मोह त्याग कर दिगम्बर मुनिका वेष धारण किया था और तीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर होगये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थमें उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शनका ज्ञाता लिखा है†। तीर्थङ्कर महावीरने सर्वज्ञ होकर देश-विदेश में भ्रमण किया था और उनके धर्म प्रचारसे लोगोंका आत्मकल्याण हुआ था। उनका विहार संघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' में लिखा है कि "निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (महावीर) संघके नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेषके प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थङ्कर हैं, बहु मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत कालसे साधु अवस्थाका पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"‡

जैन शास्त्र 'हरिवंश पुराण' में लिखा है कि "भगवान महावीरने मध्यके (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट,

---

* विशेषके लिये हमारा "भगवान महावीर और म० बुद्ध" नामक ग्रन्थ देखो।

† मज्झिमनिकाय (P. T. S.) भा० १ पृ० ९२-९३

‡ दीघनिकाय (P. T. S.) भा० १ पृ० ४८-४९

त्रिगर्तपञ्चाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक), समुद्रतटके (कलिङ्ग, कुरुजाङ्गल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गांधार, सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और क्वाथ-तोय) और उत्तर दिशाके (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्मकी ओर ऋजु किया था।" ×

भगवान् महावीरका धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही; किन्तु उन्होने साधुओंके लिये दिगम्बरत्वका भी उपदेश दिया था + । उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैनधर्ममें दिगम्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है । बिना दिगम्बर वेष धारण किये निर्वाण प्राप्तकर लेना असंभव है। और उनके इस वैज्ञानिक उपदेशका आदर आबाल-वृद्ध-वनिताने किया था !

विदेह में जिस समय भ० महावीर पहुंचे तो उनका वहां लोगों ने विशेष आदर किया । वैशाली में उनके शिष्यों की संख्या अधिक थी । स्वयं राजा चेटक उनका शिष्य था । अङ्गदेश में जब भगवान पहुंचे तो वहां के राजा कुणिक अजात शत्रु के साथ सारी प्रजा भगवान की पूजा करने के लिये उमड़ पड़ी । राजा कुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुंचाने गये । कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिगंबर मुनि होगये । मगधदेश में भी भगवान् महा-

---

× हरिवंशपुराण (कलकत्ता) पृ० १८
+ भमबु० ५४-८० व ठाणा, पृ० ८१३

वीर का खूब विहार हुआ था और उनका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होंने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिकके अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिगंबर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारतमें जब भगवान् का विहार हुआ तो हेमांग देशके राजा जीवंधर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहां २ विहार हुआ वहां वहां दिगंबर धर्मका प्रचार हो गया। शतानीक, उदयन, आदि राजा; अभय, नंदिषेण आदि राजकुमार; शालिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतंकर आदि धनकुबेर; इन्द्रभूति, गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान्; विद्युच्चर आदि सदृश पतितात्मायें—अरे न जाने कौन कौन भगवान् महावीर की शरणमें आकर मुनि हो गये।*

सचमुच अनेक धर्म-पिपासु भगवान के निकट आकर धर्मामृत पान करते थे। यहां तक कि स्वयं म० गौतमबुद्ध और उनके संघ पर भगवानके उपदेशका प्रभाव पड़ा था। बौद्ध भिक्षुओं ने भी नग्नता धारण करनेका आग्रह म० बुद्ध से किया था†। इसपर यद्यपि म०बुद्धने नग्न वेषको बुरा नहीं बतलाया, किन्तु उससे कुछ ज्यादा शिष्य पानेका लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया! ‡ पर तोभी एक

* भमबु०, पृष्ठ ६५-६६ † भमबु०, पृ० १०२-११०

‡ 'महावग्ग' (८-२८-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने म० बुद्ध के पास नंगे हो आकर कहा कि भगवन् ने संयमी पुरुष की बहुत प्रशंसा की

समय नैपाल के तांत्रिक बौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था + । सच बात तो यह है कि नग्नवेष को साधु-पद के भूषण रूपमें सबही को स्वीकार करना पड़ता है। उसका विरोध करना प्रकृति को कोसना है। उसपर म० बुद्ध के ज़मानेमें तो उसका विशेष प्रचार था। अभी भ०महावीरने धर्मोपदेश देना प्रारंभ नहीं किया था कि प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नंगे घूमकर उसका प्रचारकर रहेथे ×!

है. जिसने पापों को धो डाला है और कषायों को जीत लिया है तथा जा दयालु, विनयी और साहसी है। हे भगवन् ! यह नग्नता कई प्रकार से संयम और संतोष को उत्पन्न करने में कारणभूत है—इससे पाप मिटता, कषाय दबते, दयाभाव बढ़ता तथा विनय और उत्साह आता है। प्रभो ! यह अच्छा हो यदि आप भी नग्न रहने की आज्ञा दें।" बुद्ध ने उत्तरमें कहा कि "भिक्षुओं के लिए यह उचित न होगी—एक श्रमण के लिये यह अयोग्य है। इसलिये इसका पालन नहीं करना चाहिये। हे मूर्ख ! तित्थियों की तरह तू भी नग्न कैसे होगा ? हे मूर्ख, इससे नये लोग भी दीक्षित न होंगे।"

+ 'नेपाल में गुरु और तांत्रिक नामकी एक बौद्धधर्म की शाखा है। मि० हाग्सनने लिखा है कि, इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।'— जैसिभा०, १।२-३। पृ० २५

× जेम्स एल्वी, प्रो० जैकोबी तथा डा० बुल्हर इस ही बात का समर्थन करते हैं कि दिगम्बरत्व म० बुद्ध के पहले से प्रचलित था और आजीविक आदि तीर्थंकों पर जैनधर्म का प्रभाव पड़ा था; यथा—

"In James d' Alwis' paper (Ind. Anti. VIII) on the Six *Tirthakas* the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines."---IA., IX, 161.

Prof. Jacobi remarks: "The preceding four

देखिये बौद्धग्रन्थोंके आधारसे इस विषयमें डॉ० स्टीवेन्सन लिखते हैं + :—

Tirthakas (Makkhali Goshal etc.) appear ali to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves..... It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him. This combined with other arguments, leads us to the opinion that the *Nirgranthas* were really in existence long before Mahavira." ---(IA. IX, 162).

Prof. T. W. Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "The sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Swetambara; the latter of which eat naked. They are known to be the successors of the school called Niganthas in the Pali Pitakas."—S.B.E. XIII, 41

Dr. Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread considerably... Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, in order to gain esteem, copied the *Nirgranthas* and went unclothed, or that they were looked upon by the people as *Nirgrantha* holy ones, because they happened to lost their clothes." ---AISJ., p. 36

+ मैलिमा०, १।२-१।२४ "The people bought clothes in abundance for him, but he (Kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect. Kassapa said,

"(एक तीर्थंक नग्न हो गया) लोग उसके लिये बहुतसे वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूं तो संसारमें मेरी अधिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि लज्जा रक्षण के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पापका कारण है; हम अर्हत् हैं, इसलिए विषयवासना से अलिप्त होनेके कारण हमें लज्जाकी कुछभी परवाह नहीं।' इसका यह कथन सुनकर बड़ी प्रसन्नता से वहां इसके पांच सौ शिष्य बन गए; बल्कि जंबूद्वीप में इसी को लोग सच्चा बुद्ध कहने लगे।'

यह उल्लेख संभवतः मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनों साधु भ० पार्श्वनाथकी शिष्यपरंपरा के मुनि थे*। मक्खलि गोशाल भ० महावीरसे रुष्ट होकर अलग धर्मप्रचार करने लगा था और वह "आजीविक" संप्रदायका नेता बन गया था। इस संप्रदाय का निकास प्राचीन जैनधर्मसे हुआ था † और इसके साधु भी नग्न रहते थे ‡। पूरण-काश्यप गोशालका साथी और

"Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin. I am an Arahat. As I am free from evil desires, I know no shame." etc.

---BS ,pp. 74-75

* भमबु०, पृष्ठ १०-२१

† वीर, वर्ष ३ पृ० ३१२ व भमबु० पृष्ठ १७—२१

‡ 'आजीविको ति नग्ग-समणको।'—'पपञ्च-सूदनी १।२०६,— IHQ., III, 248.

वहभी दिगम्बर रहा था। सचमुच दिगम्बर जैनधर्म पहले से ही चला आरहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था !

उस पर, भगवान महावीरके अवतीर्ण होतेही दिगम्बरत्वका महत्व औरभी बढ़ गया। यहांतककि दूसरी संप्रदायोंके लोगभी नग्न-वेष धारण करनेको लाला-यित होगये; जैसेकि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रोंमें निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) महामुनि महावीरके विहारका उल्लेखभी मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के 'अभय-राजकुमार सुत्त' से प्रगट है कि वे राजगृहमें एक समय रहे थे †। 'उपालीसुत्त' से भ० महावीरका नालन्दमें विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बड़ी संख्यामें निर्ग्रन्थ साधु थे ‡। 'सामगामसुत्त' से यह प्रगट है कि भग-वान् ने पावासे मोक्ष प्राप्त की थी +। 'दीघनिकाय' का 'पासादिक सुत्त' भी इसी बातका समर्थन करता है ×। 'संयुत्तनिकाय' से भगवान महावीरका संघसहित 'मच्छिका-खण्ड' में विहार करना स्पष्ट है ÷। 'ब्रह्मजालसुत्त' में

---

† मज्झिम० (P. T. S.) भा० १ पृ० ३९२—भमवु० पृ० १६१

‡ मज्झिम० १। ३७१ व "The M.N. tells us that once Nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas."---AIT., p. 147.

+ मज्झिम० १।९३—भमवु० २०२

× दीघ०, III 117-118,—भमवु० पृ० २१४

÷ संयुत्त० ४। २८७—भमवु० पृ० २१६

राजगृहके राजा अजातशत्रुको भगवान महावीरके दर्शनके लिये गया लिखा है *। 'विनयपिटक' के 'महावग्ग' ग्रंथसे महावीर स्वामीका वैशालीमें धर्मप्रचार करना प्रमाणित है +। एक 'जातक' में भ० महावीरको 'अचेलक नातपुत्त' कहा गया है ×। 'महावस्तु' से प्रगट है कि अवन्तीके राजपुरोहित का पुत्र नालक बनारस आया था। वहां उसने निर्ग्रन्थनाथ-पुत्त (महावीर को) धर्म प्रचार करते पाया ‡। 'दीघनिकाय' से यह स्पष्ट है कि कौशलके राजा पसेनदीने निर्ग्रन्थ नातपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था ☛। उसकी रानी मल्लिका ने निर्ग्रन्थोंके उपयोगके लिये एक भवन बनवाया था †। सारांशतः बौद्ध शास्त्रभी भगवान् महावीरके दिगन्तव्यापी और सफल विहारकी साक्षी देते हैं।

भगवान्‌के विहार और धर्मप्रचारसे जैनधर्मका विशेष उद्योत हुआ था। जैनशास्त्र कहते हैं कि उनके संघमें चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे, जिनमें ९९०० साधारण मुनि, ३०० अङ्गपूर्वधारी मुनि, १३०० अवधिज्ञानधारी मुनि, ९०० ऋद्धिविक्रिया युक्त, ५०० चार ज्ञानके धारी, ७०० केवलज्ञानी

---

* भमबु०, पृ० २२२
+ महावग्ग ६। ३१। ११—भमबु पृ० २३१-२३६
× जातक २।१८२
‡ ASM., p. 159.
☛ दीघ० १।७८-७९—IHQ. I, 153.
† LWB., p. 109

और ६०० अनुत्तरवादी थे। महावीर-सङ्घके ये दिगम्बर मुनि दस गणोंमें विभक्त थे और ग्यारह गणधर उनकी देख-रेख रखते थे‡। इन गणधरोंका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है :—

(१) इन्द्रभूति गौतम, (२) वायुभूति, (३) अग्निभूति, ये तीनों गणधर मगध देशके गौर्वर ग्राम निवासी वसुभूति (शांडिल्य) ब्राह्मणकी स्त्री पृथ्वी (स्थिण्डिला) और केसरीके गर्भसे जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागनेके बाद ये क्रमसे गौतम, गार्ग्य और भार्गव नामसे भी प्रसिद्ध हुये थे। जैन होनेके पहले ये तीनों वेदधर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान् थे। भ०महावीर के निकट इन तीनोंने अपने कई सौ शिष्यों सहित जैन-धर्मकी दीक्षा ग्रहणकी थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियोंके नेता हुये थे। देश देशान्तरमें विहार करके इन्होंने खूब धर्म-प्रभावनाकी थी!+

चौथे गणधर व्यक्त कोल्लाग सन्निवेश निवासी धन-मित्र ब्राह्मणकी वारुणी × नामक पत्नीकी कोख से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यहभी गणनायक हुये थे।

पांचवे सुधर्म नामक गणधरभी कोल्लग सन्निवेशके निवासी धम्मिल ब्राह्मणके सुपुत्र थे। इनकी माताका नाम भद्दिला था। भ० महावीरके उपरान्त इनके द्वारा जैनधर्मका विशेष प्रचार हुआ था।+

---

‡ ममा०, ११७। + हजैश०, पृ० ६०-६१।
× हजैश०, पृ० ८। + हजैश०, पृ० ८।

छठे मण्डिक नामक गणधर मौर्य्याख्यदेश निवासी धनदेव ब्राह्मणकी विजया देवी स्त्रीके गर्भसे जन्मे थे। दिग-म्बर मुनि होकर यह वीर सङ्घमें सम्मिलित हो गये थे और देश-विदेशमें धर्म प्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देशके निवासी 'मौर्यक' ब्राह्मणके पुत्र थे। इन्होंने भी भ० महावीरके निकट दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म-प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन् थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मणकी जयन्ती नामक स्त्रीके उदरसे जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें धवल नामक गणधर कोशलापुरी के वसु विप्रके सुपुत्र थे। इनको मांका नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। वह वत्सदेशस्थ तुङ्गिकाख्य नगरीके निवासी दत्त ब्राह्मणकी स्त्री करुणाके गर्भसे जन्मे थे। इन्होंनेभी अपने गणके साधुओं सहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधर प्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मणकी पत्नी भद्राकी कुक्षिसे जन्मे थे। और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्मका उद्योत करते हुए विचरे थे।*

---

* हजैश०, पृ० ८

इन गणधरोंकी अध्यक्षतामें रहे उपरोक्त चौदह हजार दिगम्बर मुनियोंने तत्कालीन भारतका महान् उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सद् उद्योगसे भारत में खूब फैले थे। जैन और बौद्धशास्त्र यही प्रकट करते हैं :—

"The Buddhist and Jaina texts tell us that the itinerant teachers of the time wandered about in the country, engaging themselves wherever they stopped in serious discussion on matters relating to religion, philosophy, ethics morals and polity." †

भावार्थ—बौद्ध और जैन शास्त्रोंसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म-गुरु देशमें सर्वत्र विचरते थे और जहां वे ठहरते थे वहां धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवार्ता विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान् हित हुआ था।

बौद्धशास्त्रोंमें भी भ० महावीरके संघके किन्हीं दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है; यद्यपि जैनशास्त्रोंमें उनका पता लगा लेना सुगम नहीं है। जो हो, उनसे यह स्पष्ट है कि भ० महावीर और उनके दिगम्बर शिष्य देशमें निर्बाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

† LWB., p. 50

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके पुत्र राजकुमार अभय दिगम्बर मुनि होगये थे, यह बात बौद्धशास्त्रभी प्रगट करते हैं *। उन राजकुमारने ईरान देशके वासियोंमें भी धर्मप्रचार कर दिया था। फलतः उस देशका एक राजकुमार आर्द्रक निर्ग्रन्थ साधु होगया था। †

बौद्ध शास्त्र वैशालीके दिगम्बर मुनियोंमें सुणक्खत्त, कलारमत्थुक, और पाटिकपुत्र का नामोल्लेख करते हैं। सुणक्खत्त एक लिच्छवि राजपुत्र था और वह बौद्धधर्म छोड़कर निर्ग्रन्थ मतका अनुयायी हुआ था ‡।

वैशालीके सन्निकट एक कन्डरमसुक नामक दिगम्बर मुनिके आवासकाभी उल्लेख बौद्धशास्त्रोंमें मिलता है। उन्होंने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधिमें विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी। +

श्रावस्तीके कुल 'पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिगम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे। ×

---

* PB., p. 30 व भमबु०, पृ० २६६।

† ADJB., I. p. 92 ‡ भमबु, पृ० २५५।

+ "अचेलो कन्डरमसुको वेसालियम् पटिवसति लामग्ग-प्पत्तोच एव पसग्ग, प्पत्तोच वज्जिगामें। तस्स सत्तवत्त-पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति—'यावजीवम् अचेलको अस्सम्, न वत्थम् पविदहेय्यम् : यावजीवम् ब्रह्मचारी अस्सम् न मेथनुम पटिसेवेय्यम् ·········इत्यादि।"—दीघनिकाय (P. T. S.) भा० ३ पृ० ६-१० व भमबु०, पृ० २१३।

× PB. p. 83 व भमबु०, पृ० २६७।

यह दिगम्बर मुनि और इनके साथ जैन साध्वीयाँभी सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओंको जैनधर्ममें दीक्षित करते थे+। इसी उद्देश्यको लेकर वे नगरोंके चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और वाद भेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "उस समय तीर्थक साधु—प्रत्येक पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासीको एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे।"*

इन साधुओंको जहांभी अवसर मिलता था वहाँ ये अपने धर्मकी श्रेष्ठताको प्रमाणित करके अवशेष धर्मोंको गौण प्रकट करते थे।

भ० महावीर और म० गौतम बुद्ध दोनों ने ही अहिंसा धर्मका उपदेश दियाथा; किन्तु भ० महावीरकी अहिंसा मन, वचन, काय पूर्वक जीवहत्यासे विलग रहनेका विधान था—भोजन या मौज शौकके लिये भी उसमें जीवोंका प्राण-व्यपरोपण नहीं किया जा सकताथा। इसके विपरीत म० बुद्धकी अहिंसामें बौद्ध भिक्षुओंको मांस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी। एक बार नहीं अनेक बार स्वयं० म० बुद्ध ने मांस-भोजन किया था†। ऐसेही अवसरों पर दिगम्बर मुनि

+ बौद्धों के थेर-थेरी गाथाओं से यह प्रगट है। भमबु०, पृ० २५६—२६८।

* महावग्ग २।१।१ व भमबु०, पृ० २४०। † भमबु० पृष्ट १७०।

बौद्ध भिक्षुओंको आड़े हाथों लेतेथे। एक मरतबा जब भगवान महावीरने बुद्धके इस हिंसक कर्मका निषेध किया, तो बुद्धने कहा: "भिक्षुओ, यह पहला मौका नहींहै बल्कि नातपुत्त (महावीर) इससे पहिलेभी कई मरतबा खास मेरे लिये पके हुए माँसको मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके हैं † ।" एक दूसरी बार जब वैशालीमें म० बुद्धने सेनापतिसिंहके घर पर मांसाहार किया तो, बौद्ध शास्त्र कहता है कि "निर्ग्रन्थ एक बड़ी संख्यामें वैशालीमें सड़क २ और चौराहे २ पर यह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापतिसिंहने एक बैलका बध कियाहै और उसका आहार श्रमण गौतमके लिये बनाया है। श्रमण गौतम जानबूझ कर कि यह बैल मेरे आहार के निमित्त मारा गया है, पशुका मांस खाताहै; इसलिए वही उस पशुके मारनेके लिये बधक है‡।" इन उल्लेखोंसे उस समय दिगम्बर मुनियोंका निर्बाधरूपमें जनताके मध्य विचरने और धर्मोपदेश देनेका स्पष्टीकरण होता है।

† Cowell, Jatakas II, 182--भमबु०, पृष्ठ २४६।

‡ "At that time a great number of the Niganthas (running) through Vaisali, from road to road, cross-way to cross-way, with outstretched arms cried, 'Today Siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Samana Gotama, the Samana Gotama knowingly eats this meat of an animal killed for this very purpose, & has thus become virtually the author of that deed.'—Vinaya Texts, S.B.E., Vol. XVII, p. 116 & HG., p. 85.

बौद्ध गृहस्थोंने कई मरतबा दिगम्बर मुनियोंको अपने घरके अन्तःपुरमें बुलाकर परीक्षा की थी+ । सारांशतः दि० मुनि उस समय हाट—बाज़ार, घर—महल, रंक—राव—सब ठौर सबही को धर्मोपदेश देते हुये विहार करते थे। अब आगेके पृष्ठोंमें भगवान महावीरके उपरान्त दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व और विहारका विवेचन कर देना उचित है।

+ HG., pp. 88—95 व भमबु०, पृष्ठ २४६—२५६।

नन्द-साम्राज्यमें दिगम्बर-मुनि !

"King Nanda had taken away 'image' known as 'The Jina of Kalinga'...... .....Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early..."

—K.P. Jayaswal.*

शिशुनागवंशमें कुणिक अजातशत्रुके उपरान्त कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ और मगधसाम्राज्यकी बागडोर नन्दवंशके राजाओंके हाथमें आगई। इस वंशमें 'वर्द्धन्' (Increaser) उपाधि-धारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतट वर्त्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तरमें हिमालय प्रदेश और काश्मीर एवं अवन्ती और कलिङ्ग देशको भी उसने अपने आधीन कर लिया था†। कलिङ्ग-विजयमें वह वहांसे 'कलिङ्ग-जिन' नामक एक प्राचीन मूर्त्ति लेआया था और उसे विनय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्रमें स्थापित किया

---

* JBORS., Vol, XIII p. 245.

† Ibid., Vol. I. pp. 78--79

था। उसके इस कार्यसे नन्दवर्द्धनका जैनधर्मावलम्बी होना स्पष्ट है। 'मुद्राराक्षस नाटक' और जैनसाहित्यसे इस वंशके राजाओंका जैनी होना सिद्ध है और उनके मन्त्रीभी जैन थे। अन्तिम नन्दका मन्त्री राक्षस नामक नीतिनिपुण पुरुष था। 'मुद्राराक्षस' नाटकमें उसे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिके प्रति विनय प्रगट करते दर्शाया गयाहै तथा यह जीवसिद्धि सारे देशमें—हाटबाज़ार और अन्तःपुर—सब ही ठौर बेरोक टोक विहार करता था, यह बातभी उक्त नाटकसे स्पष्ट है‡। ऐसा होना है भी स्वाभाविक; क्योंकि अब नन्दवंशके राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्यमें दिगम्बर जैन मुनिकी प्रतिष्ठा होना लाज़मी थी। जनश्रुतिसे यहभी प्रगट है कि अन्तिम नन्दराजाने 'पञ्चपहाड़ी' नामक पाँच स्तूप पटनामें बनवाये थे+। 'पञ्चपहाड़ी' (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्दने उसीके अनुरूप पाँच स्तूप पटना

---

‡ Chanakya says:—
"There is a fellow of my studies, deep
The Brahman Indusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hither;
And here repairing as a Buddha (?क्षपणक) mendicant."†

† Having the marks of a Ksapanaka....the individual is a Jaina....Raksasa repose in him implicit confidence.—HDW., p. 10

+ "Sir G. Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans. ....the Nandas were Jainas and therefore hateful to

में बनवाये प्रतीत होते हैं। यह कार्य्यभी उनकी मुनि-भक्ति का परिचायक है।

जैन कथाग्रन्थोंसे विदित है कि एक नन्द राजा स्वयं दिगम्बर जैन मुनि होगये थे तथा उनके मन्त्री शकटालभी जैनी थे*। शकटालके पुत्र स्थूलभद्रभी दिगम्बर मुनि होगये थे†। सारांश यह कि नन्द-साम्राज्यके प्रसिद्ध पुरुषोंने स्वयं दिगंबर मुनि होकर तत्कालीन भारतका कल्याण किया था और नन्दराजा जैनोंके संरक्षक थे‡।

शिशुनागवंशके अन्त और नन्दराज्यके आरम्भकालमें जम्बूस्वामी अन्तिमकेवलीसर्वज्ञने नग्नवेषमें सारे भारतका

---

the Brahmans .. ... The supposition that the last Nanda was either a Jaina or Buddhist is strengthened by the fact that one form of the local tradition attributed to him the erection of the Panch Pahari at Patna, a group of ancient stupas, which be either Jaina or Buddhist."—EHI., p. 44

उनका जैन होना ठीक है, क्योंकि नन्दवर्द्धनके जैन होनेमें सन्देह नहीं है और "मुद्राराक्षस" नन्दमन्त्री आदि को जैन प्रगट करता है।

* हरिषेण कथाकोष तथा आराधनाकथाकोष देखो।

† सातवीं गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट, पृष्ठ ४१ तथा "भद्र-बाहु चरित्र" (पृष्ठ ४१) में स्थूलभद्रादिको दिगम्बर मुनि लिखा है। (रामल्यस्थूल भद्राख्य स्थूलाचार्यादियोगिनः।)

‡ "Nanda were Jains."—CHI., Vol. I. p. 164

"The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira)."—HARI., p. 59.

भ्रमण किया था। कहते हैं कि बङ्गालके कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्तकी थी + । उनका विहार बङ्गालके प्रसिद्ध नगर पुंड्रवर्द्धन् ,ताम्रलिप्त आदिमें हुआ था। एक दफ़ा वह मथुराभी पहुँचे थे। अन्तमें जब वह राजगृह विपुलाचलसे मुक्त हो गये, तो मथुरामें उनकी स्मृतिमें एक स्तूप बनाया गया था × ।

मथुरा जैनोंका प्राचीन केन्द्र था। वहां भ० पार्श्वनाथ जी के समयका एक स्तूप मौजूद था ÷ । इसके अतिरिक्त नन्दकालमें वहां पांच सौ एक स्तूप और बनाये गये थे; क्योंकि वहांसे इतने ही दिगम्बर मुनियोंने समाधिमरण किया था। ये सब मुनि श्री जम्बूस्वामीके शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चरनामक एक नामी डाकूभी अपने पाँच सौ साथियों सहित दिगंबर मुनि हो गया था। एक दफ़ा यह मुनिसङ्घ देश-विदेशमें विहार करता हुआ शामको मथुरा पहुँचा। वहां महाउद्यानमें वह ठहर गया। उपरान्त रातको उन मुनियों पर वहां महा

+ "In Kotikapur Jambu attained emancipation (? Omniscience)"

—वीर, वर्ष ३ पृष्ठ ३७।

× अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ १४१ :—

"मगधादिमहादेश मथुरादिपुरीस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेशं स केवलज्ञानलोचनः ॥११८॥१२॥ वर्षाष्टादशपर्यन्तं स्थितस्तत्र जिनाधिपः, ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात् ॥११९॥—जम्बूस्वामी चरित्र

÷ JOAM., p. 13

उपसर्ग हुआ और उसके परिणामरूप मुनियोंने साम्यभावसे प्राण त्याग किये। इस महत्वशाली घटनाकी स्मृतिमें ही वहाँ पांच सौ एक स्तूप बना दिये गये थे।*

इस प्रकार न जाने कितने मुनि-पुङ्गव उससमय भारत में विहार करके लोगोंका हितसाधन करते थे! उनका पता लगा लेना कठिन है! नन्द-साम्राज्यमें उनको पूरा पूरा संरक्षण प्राप्त था!

[१२]

मौर्य्य-सम्राट् और दिगम्बर मुनि!

"भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः।
अस्यैवयोगिनं पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः ॥३८॥
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम्।
सर्व संघाधिपो जातो विशाखाचार्य संज्ञकः ॥३९॥
अनेनसह संघोपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
दक्षिणा पथदेशस्थ पुन्नाट विषयं ययौ ॥४०॥"

—हरिषेण कथाकोष †

---

* अनेकान्त वर्ष १ पृ० १३९-१४१—
"अथ विद्युच्चरो नाम्ना पर्यटन्निह सन्मुनिः॥
एकादशांगविद्यायामधीती विदधत्तपः।
अथान्येद्युः सनिःसंगो मुनि पंचशतैर्वृतः॥
मथुरायां महोद्यान प्रदेशेष्वगमन्मुदा।
तदागच्छत्स वैलक्षयं भानुरस्ताचलं श्रितः॥ इत्यादि॥"

† ०, भा० १४ पृ० २१७।

'मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्खं धरदि चन्दगुत्तो य ।'
—त्रिलोक प्रज्ञप्ति ‡

नन्द राजाओंके पश्चात् मगधका राजछत्र चन्द्रगुप्त नामके एक क्षत्रिय राजपुत्रके हाथ लगा था। उसने अपने भुजविक्रमसे प्रायः सारे भारत पर अधिकार करलिया था और 'मौर्य्य' नामक राजवंशकी स्थापनाकी थी। जैनशास्त्र इस राजाको दिगम्बर मुनि श्रमणपति श्रुतकेवली भद्रबाहुका शिष्य प्रगट करतेहैं *। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़भी चन्द्रगुप्तको श्रमण-भक्त प्रगट करताहै†। सम्राट् चन्द्रगुप्तने

‡ जैहि०, भा० १३, पृ० ५३१

* "चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम्। चन्द्रगुप्तिर्नृपस्तत्राऽचकचारुगुणोदयः ॥७॥२॥

ज्ञानविज्ञानपारीणो जिनपूजापुरंदरः। चतुर्धा दान दक्षो यः प्रतापजित भास्करः ॥८।"—भद्र०

"समासाद्य स सूरीशं (भद्रबाहु) परीत्य प्रश्रयान्वितः। समभ्यर्च्य गुरोः पादावन्गंधसदकादिकैः ॥२६॥"—भद्र०

† "That Chandragupta was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course, and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. The documentory evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion........The testimony of Megasthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the *Sram-*

अपने बृहत् साम्राज्यमें दिगम्बर मुनियोंके विहार और धर्म-प्रचार करनेकी सुविधाकी थी। अमरापति भद्रबाहुके संघकी वह राजा बहुत विनय करताथा। भद्रबाहुजी बङ्गाल देशके कोटिकपुर नामक नगरके निवासीथे‡। एक दफ़ा वहाँ श्रुत-केवली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियों सहित आनि-कले; भद्रबाहु उन्हींके निकट दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामीने संघसहित गिरनारजी की यात्राका उद्योग कियाथा +। इस उल्लेखसे स्पष्ट है कि उनके समयमें दि-गम्बर मुनियोंको विहार करनेकी सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहुजी ने भी संघसहित देश-देशान्तरमें विहार कियाथा और वह उ-ज्जैनी पहुँचे थे। वहींसे उन्होंने दक्षिण देशकी ओर संघ सहित विहार कियाथा; क्योंकि उन्हें मालूम होगया था कि उत्तरापथ में एक द्वादशवर्षीय विकाल दुष्काल पड़नेको है जिसमें मुनि-चर्याका पालन दुष्कर होगा ×। सम्राट् चन्द्रगुप्तने भी इसी समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रबाहु स्वामीके निकट जिन-दीक्षा धारणकी थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियोंके साथ

---

anas, as opposed to the doctrines of the Brahmanas. (Strabo, XV. i. 60)." ---JRAS., Vol. IX pp. 175-176.

‡ "तमालपत्रवत्तस्य देशोऽभूतपौण्ड्रवर्द्धनः।"—"तत्रकोट्टपुरं रम्यं द्योतते नाकसद्मवत्।"

'भद्रबाहुरितिख्यातिं प्राप्तवान्बन्धुवर्गतः।" इत्यादि"—भद्र०, पृ० १०—२१।

+ "चिकीर्षुर्नेमितीर्थेशयात्रां रैवतकाचले।"—भद्र० पृ० ११।

× भद्र० पृ० २७—४१

दक्षिण भारतको चले गयेथे + । श्रवणबेलगोलका कटवप्र नामक पर्वत उन्हींके कारण "चन्द्रगिरि" नामसे प्रसिद्ध होगया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्तने तपश्चरण कियाथा और वहीं उनका समाधिमरण हुआथा + ।

बिन्दुसारने जैनियोंके लिये क्या किया ? यह ज्ञात नहीं है; किन्तु जब उसका पिता जैनथा, तो उस पर जैन प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावीहै × । उस पर उसका पुत्र अशोक अपने

+ Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a great twelve years' famine occurred, he abdicated, accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called *Srutakevalins*, to the, South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately committed Suicide by Starvation at that place, where his name is still held in remembrance. In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as 'imaginary history'. But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and that chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic."

---Sir Vincient Smith, EHI, p. 154

+ Narasimhachar's Sravanabelagola, p. 25-40, विको०, भाग ७ पृ० १५६-१५७ तथा जैशिसं० भूमिका पृ० ५४—७०

× "We may conclude····· that Vindusara followed the faith (Jainism) of his father (Chandragupta)

आरम्भिक जीवनमें जैनधर्मपरायण रहा था; बल्कि अन्त समय तक उसने जैनसिद्धान्तोंका प्रचार किया, यह अन्यत्र सिद्ध किया जाचुका है + । इस दशामें बिन्दुसारका जैनधर्म प्रेमी होना उचित है । अशोकने अपने एक स्थम्भलेखमें स्पष्टतः निर्ग्रन्थ साधुओंकी रक्षाका आदेश निकालाथा * ।

सम्राट् सम्प्रति पूर्णतः जैनधर्म परायणथे । उन्होंने जैन मुनियोंके विहार और धर्मप्रचारकी व्यवस्था न केवल भारतमें ही की, बल्कि विदेशोंमें भी उनका विहार कराकर जैनधर्मका प्रचार करा दिया †।

उस समयमें दशपूर्वके धारक विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय

---

and that, in the same belief, whatever it may prove to have been, his childhood's lessons were first learnt by Asoka." ---E. Thomas, JRAS. IX. 181.

+ हमारा "सम्राट अशोक और जैनधर्म" नामक ट्रैक्ट देखो।

* स्तम्भलेख नं० ७

"The founder of the Maurayan dynasty, Chandragupta. as well as his Brahmin minister, Chanakya, were also inclined towards Mahavira's dootrines and even Asoka is said to have been laid towards Buddhism by a previous study of Jain teaching."

—E. B. Havell, HARI., p. 59.

† कुणालसूनुस्त्रिखंडभरताधिपः परमार्हतो अनार्य्यदेशेष्वपि प्रवर्तित श्रमणविहारः सम्प्रति महाराजाऽसौऽभवत्"

—पाटलीपुत्र कल्पग्रन्थ EHI. pp. २०२-२०३

आदि दिगम्बर जैनाचार्योंके संरक्षणमें रहा जैनसंघ खूब फला फूलाथा। जिस साम्राज्यके अधिष्ठाता ही स्वयं जब दिगम्बर मुनि होकर धर्मप्रचार करनेके लिये तुल गये तो भला कहिये जैनधर्मकी विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियोंकी बाहुल्यता उस राज्यमें क्यों न होती! मौर्योंका नाम जैनसाहित्यमें इसी लिए स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है!

[१२]

सिकन्दर महान् एवं दिगम्बरमुनि !

"Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages. For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked, inused themselves to hardships and were held in highest honour; that when invited they did not go to other persons." —Mc Crindle, Ancient India, p. 70.

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारतमें राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्यकी नीव डालनेमें लगे हुयेथे, उस समय भारतके पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्त पर यूनानका प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुँचातो वहां उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लाये जावें; किन्तु ऐसा होना असंभवथा,क्योंकि दिगं-

कर मुनि किसीका शासन नहीं मानते और न किसीका निम-न्त्रण स्वीकार करतेहैं। उस पर सिकन्दरने अपने एक दूतको, जिसका नाम अन्शकृतस (Oneskritos) था, उनके पास भेजा। उसने देखा, तक्षशिलाके पास उद्यानमें बहुतसे नंगे मुनि तपस्या कर रहेहैं। उनमें से एक कल्याण नामक मुनि से उसकी बातचीत होती रहीथी। मुनि कल्याणने अन्शकृतस से कहाथा कि यदि तुम हमारे तपका रहस्य समझना चाहतेहो तो हमारी तरह दिगम्बर मुनि होजाओ*। अंशकृतसके लिये ऐसा करना असंभवथा। आखिर उसने सिकन्दरसे आकर इन मुनियोंके ज्ञान और चर्याकी प्रशंसनीय बातें कहीं। सिक-न्दर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने चाहा कि इन ज्ञान ध्यान—तपोरत्नका प्रकाश मेरे देशमें भी पहुँचे। उसकी इस शुभ कामनाको मुनि कल्याणने पूरा कियाथा। अब सिकन्दर

* Al., p. 69.---"(Alexander) despatched Onesikritos to them (gymnosophists), who relates that he found at the distance of 20 stadia from the city (of Taxilla) 15 men standing in different postures, sitting or lying down naked, who did not move from these positions till the evening, when they return to the city. The most difficult thing to endure was the heat of the sun.etc."

"Calanus bidding him (Onesi:) to strip himself, if he desired to hear any of his doctrine."

---Plutarch. Al. p. 71

ससैन्य यूनानको लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे, किन्तु ईरानमें ही उनका देहावसान हो गयाथा। अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैनव्रत सल्लेखनाका पालन किया था। नंगे रहना, भूमिशोधकर चलना, हरितकायका विराधन न करना, किसीका निमन्त्रण स्वीकार न करना, इत्यादि जिन नियमोंका पालन मुनि कल्याण और उनके साथी मुनिगण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्धहै†। आधुनिक विद्वान्‌भी यही प्रगट करतेहैं‡।

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्रमें निष्णातथे। उन्होंने बहुत सी भविष्यद्वाणियाँकी थीं+ और सिकन्दरकी मृत्युको भी उन्होंने पहिलेसे ही घोषित कर दियाथा। इन भारतीय सन्तोंकी शिक्षाका प्रभाव यूनानियों पर विशेष पड़ाथा। यहाँ तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक

---

† वीर वर्ष ७ पृ० १७६ व १४१

‡ Encyclopaedia Britannica (11th. ed.) Vol. XV p. 128. "....the term Digambara....is referred to in the well-known Greek phrase, Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Niganthas (Digambara Jainas)."

+"A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd. century B. C., gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus."

—QJMS., XVIII, 297

यूनानी तत्ववेत्ताने दिगम्बरवेष धारण कियाथा + । और यूनानियोंने नंगी मूर्तियांभी बनवाईथीं * ।

यूनानी लेखकोंने इन दिगम्बर मुनियोंके विषयमें खूब लिखाहै । वे बताते हैं कि यह साधु नंगे रहतेथे । सर्दी-गर्मीकी परीषह सहन करतेथे । जनतामें इनको विशेष मान्यताथी । हाट-बाज़ारमें जाकर यह धर्मोपदेश देतेथे । बड़े २ शिष्ट घरोंके अंतःपुरोंमें भी ये जातेथे । राजागण इनकी विनय करते और सम्मति लेतेथे । ज्योतिषके अनुसार ये लोगोंको भविष्यका फलाफलभी बतातेथे । भोजनका निमन्त्रण ये स्वीकार नहीं करतेथे । विधिपूर्वक नगरमें कोई सभ्य उन्हें भोजन-दान देता तो उसे ये ग्रहण कर लेतेथे × । यूनानी लेखकोंके इस वर्णन

+ NJ., Intro. p. 2

* Pliny, XXXIV. 9---JRAS , Vol. IX, p. 232

× Aristoboulos---says "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market-place in respect their being public councillors, they receive great homage. etc."

Cicero (Tusc. Disput. V. 27)---"What foreign land is more vast & wild than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend their lifetime naked & endure the snows of Caucasus & the rage of winter without grieving & when they have committed their body to the flames, not a groan escapes them when they are burning."

Clemens Alexendrinus---"Those Indians, who

से उस समयके दिगम्बर जैन मुनियोंका महत्व स्पष्ट होजाता है। उनके द्वारा भारतका नाम विदेशोंमें भी चमकाथा! भला इन जैसे मुनीश्वरोंको पाकर कौन न अपनेको धन्य मानेगा ?

---

are called *Semnoi* (श्रमण) go naked all their lives. These practise truth, make predictions about futurity and worship a kind of pyramid, beneath which they think the bones of some divinity lie buried (Stupas)."

---AI. p. 183.

"St. Jerome--'Indian Gymnosophists.' The king on coming to them worships them & the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers." ---AI. p. 184.

"Every wealthy house is open to them to the apartments of the women. On entering they share the repast."---AI. p. 71

"When they repair to the city they disperse themselves to the market place. If they happen to meet any who carries figs or bunches of grapes they take what he bestows without giving anything in return.

[१४]

शुङ्ग और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि ।

"The Andhra or Satvahana rule is characterised by almost the same social features as the farther south; but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Buddhists."—S. K. Aiyangar's Ancient India, p. 34.

अन्तिम मौर्य्य सम्राट् बृहद्रथका उनके सेनापति पुष्पमित्र शुङ्गने वध कर दिया था। इस प्रकार मौर्य्य साम्राज्यका अन्त करके पुष्पमित्रने 'शुङ्ग राजवंश' की स्थापना की थी। नन्द और मौर्य्य साम्राज्यमें जहाँ जैन और बौद्धधर्म उन्नतिको प्राप्त हुये थे, वहाँ शुङ्गवंशके राजत्वकालमें ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुआ था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणेतर जैन आदि धर्मों पर इस समय कोई संकट आया हो। हम देखते हैं कि स्वयं पुष्पमित्रके राजप्रासादके सन्निकट नन्दराज द्वारा लाई गई 'कलिङ्ग जिन की मूर्ति' सुरक्षित रही थी। इस अवस्थामें यह नहीं कहा जासका कि इस समय दिगम्बर जैनधर्मको विकट बाधा सहनी पड़ी थी।

उसपर शुङ्ग राजागण अधिक समय तक शासनाधिकारीभी न रहे। भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और

पञ्जाबकी ओर तो यवन राजाओंने अधिकार जमाना प्रारंभ करदिया और मगध तथा मध्यभारत पर जैनसम्राट् खारवेल तथा आन्ध्रराजाओंके आक्रमण होने लगे। खारवेलकी मगध विजयमें आन्ध्रवंशी राजाओंने उनका साथ दिया था*। मगध पर आन्ध्र राजाओंका अधिकार होगया! इन राजाओं के उद्योगसे जैनधर्म फिर एक बार चमक उठा।

आन्ध्रवंशी राजाओंमें हाल, पुलुमायि आदि जैनधर्म प्रेमी कहे गये हैं†। इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियोंको विहार और धर्मप्रचार करनेकी सुविधा प्रदानकी प्रतीत होती है। उज्जैनीके प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यभी इसी वंशसे सम्बन्धित बताये जाते हैं। वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्यके उपदेशसे जैन हो गये थे‡।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दिमें एक भारतीय राजाका सम्बन्ध रोमके बादशाह ऑगस्टससे था। उन्होंने उस बादशाहके लिये भेंट भेजी थी। जो लोग उस भेंटको लेगये थे,

---

*"In the decadance that followed the death of Asoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Khaivela of Kalinga, when he invaded Magadha in the middle of the 2nd century B. C. When the Kanvar were overthrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha." —SAI., pp. 15-16.

† JBORS. I, 76--118. & CHE., I p. 532

‡ Allahabad university Studies, pt. II pp.113-147

उनके साथ भृगुकच्छ (भड़ौंच) से एक श्रमणाचार्य (दिगंबर जैनाचार्य) भी साथ हो लिये थे। वह यूनान पहुँचे थे और वहां उनका सम्मान हुआ था। आखिर सल्लेखना व्रतको धारण करके उन्होंने अथेन्स (Athens) में प्राणविसर्जन किये थे। वहाँ उनकी एक निषधिका बना दीगई थी‡। अब भला कहिये, जब उस समय दिगम्बर मुनि विदेशों तकमें जाकर धर्मप्रचार करनेमें समर्थ थे, तो वे भारतमें क्यों न विहार और धर्मप्रचार करने में सफल होते। जैन साहित्य बताता है कि गंगदेव, सुधर्म, नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन आदि दिगम्बर जैनाचार्योंके नेतृत्वमें तत्कालीन जैनधर्म सजीव हो रहा था।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दिमें भारतमें अपोलो और दमस नामक दो यूनानी तत्ववेत्ता आये थे। उनका तत्कालीन दिगंबर

---

‡ "In the same year (25 B. C.) went an Indian embassy with gifts to Augustus, from a King called Purus by some and Pandian by others............They were accompanied by the man who burnt himself at Athens. He with a smile leapt upon the pyre naked ....On his tomb was this inscription, 'Zermanochegas, to the custom of his country, lies here'. Zermanochegas seems to be the Greek rendering of Sramanacharya or Jaina Guru and the self-immolation, a variety of Sallekhna." —IHQ.. vol. II p. 293.

मुनियोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ था† । सारांशतः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्वशाली थे कि वे विदेशियोंका भी ध्यान आकृष्ट करनेको समर्थ थे ।

[१५]

यवन-छत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि !

"About the second century B. C. when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in high esteem by the Indo-Greeks, as is apparent from an account given in the Milinda Panho." —HG., p. 78.

मौर्यों के उपरान्त भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, पञ्जाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियोंका अधिकार होगया था । इन विदेशी लोगोंमें भी

†"Apollonius of Tyana travelled with Damus. Born about 4 B. C., he came to explore the wonders of India.........He was a Pythogorian philosopher & met Iarchas at Taxilla and disputed with Indian Gymnosophists (Niganthas)"

—QJMS., XVIII, pp. 305--306

जैन मुनियोंने अपने धर्मका प्रचार कर दिया था और उनमें से कई बादशाह जैनधर्ममें दीक्षित हो गये थे।

भारतीय यवनों (Greek) में मनेन्द्र (Menander) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पञ्जाब प्रान्त का प्रसिद्ध नगर साकल (स्यालकोट) था। बौद्धग्रंथ 'मिलिन्द-पण्ह' से विदित है कि उस नगरमें प्रत्येक धर्मके गुरु पहुँच कर धर्मोपदेश देते थे*। मालूम होता है कि दिगम्बर जैन मुनियोंको वहाँ विशेष आदर प्राप्त था; क्योंकि 'मिलिन्दपण्ह' में कहा गया है कि पांचसौ यूनानियोंने राजा मनेन्द्रसे भ० महावीरके 'निर्ग्रन्थ' धर्म द्वारा मनस्तुष्टि करनेका आग्रह किया था और मनेन्द्रने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था†। अन्तः वह जैनधर्ममें दीक्षित होगया था और उसके राज्य में अहिंसा धर्मकी प्रधानता हो गई थी।‡

यवनों (Indo Greek) को हराकर शकोंने फिर उत्तर पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होंने 'क्षत्रप'—प्रान्तीय शासक नियुक्त करके शासन किया था। इनमें राजा अज़ेस (Azes I) के समय में तक्षशिलामें जैनधर्म उन्नति

---

* "They resound with cries of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the leading men of each of the differing sects."
—QKM. p. 3.

† QKM., p. 8

‡ वीर, वर्ष २ पृ० ४४६--४४६. .

पर था। उस समयके बने हुये जैन ऋषियोंके स्मारक-रूप स्तूप आजभी तक्षशिलामें भग्नावशेष हैं। +

शक राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेवके राजकाल में भी जैनधर्म उन्नत दशामें रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रन्थ साधु वहाँ विचरते थे। उन नग्न साधुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जनसमुदाय किया करते थे। ×

क्षत्रप नहपानभी जैनधर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरातसे मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्यमें उसका उल्लेख नरवाहन और नहवाण रूपमें हुआ मिलता है। नहपान ही संभवतः भूतबलि नामक दिगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्खण्डागम शास्त्र" की रचना की थी। +

क्षत्रप नहपानके अतिरिक्त क्षत्रप रुद्रदमनका पुत्र रुद्र सिंहका भी जैनधर्मभुक्त होना संभव है। जूनागढ़की 'अपर-कोट' की गुफाओंमें इसका एक लेखहै, जिसका सम्बन्धजैन-धर्मसे होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैनमुनियोंके उपयोगमें आती थीं। *

+ AGT., pp. 76—80

× "Another locality in which the Jainas seem to have been formly established from the middle of the 2nd Century B. C. onwards was Mathura in the old kingdom of Curasena."

—CHI, I, p. 167 & see JOAM.

+ सरस्वती, भा० २६ अंक १ पृ० ७४८--७४९

* IA, XX, 163 ff.

इन उल्लेखोंसे यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी लोगों में धर्मप्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि पहुंचे थे और उन्हों ने उनलोगोंके निकट सम्मान पाया था।

[१६]

सम्राट् ऐलखारवेल आदि कलिंग नृप और दिगम्बर मुनियोंका उत्कर्ष।

"नन्दराज-नीतानि कालिंग-जिनम्-संनिवेसं............
गहरतनान पडिहारेहि अङ्गमागध वसवु नेयाति।"

(१२ वीं पंक्ति)

"सुकति-समण-सुविहितानुं च सतदिसानुं अनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे पभरे वर-कारु—सुमुथपतिहि अनेकयोजनाहिताहि प सि ओ सिलाहि सिहपथ-रानि सिधुडाय निसयानि..................घंटा (अ) क (तो) चतरे च वेडूरियगभे थंभे पतिठापयति।" (१५-१६ वीं पंक्ति)

—हाथीगुफा शिलालेख।

कलिङ्गदेशमें पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेवके एक पुत्रने पहले पहले राज्य कियाथा। जब सर्वज्ञ होकर तीर्थंकर ऋषभने आर्यखण्डमें विहार किया तो वह कलिङ्गभी पहुंचेथे। उनके धर्मोपदेशसे प्रभावित होकर तत्कालीन कलिङ्ग राज अपने पुत्रको राज्य देकर दिगंबरमुनि होगये थे*। बस,

* हरिवंशपुराण अ० ३ श्लो० ३-७ व अ० ११ श्लो० ६४-७१

कलिङ्गमें दिगम्बर-मुनियोंका सद्भाव उस प्राचीन कालसे है।

राजा दशरथ अथवा यशधरके पुत्र पांचसौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिङ्गदेशसे ही मुक्त हुयेथे। तथा वह पवित्र कोटिशिलाभी उसी कलिङ्गदेशमें है, जिसको श्रीराम-लक्ष्मणने उठाकर अपना बाहुबल प्रगट किया था और जिस पर से एक करोड़ दिगम्बर-मुनि निर्वाणको प्राप्त हुयेथे† । सारांशतः एक अतीव प्राचीन कालसे कलिङ्ग देश दिगम्बर-मुनियोंके पवित्र-चरण-कमलोंसे अलंकृत होचुका है!

इक्ष्वाकुवंशके कौशलदेशीय क्षत्रिय राजाओंके उपरान्त कलिङ्गमें हरिवंशी क्षत्रियोंने राज्य कियाथा। भगवान महावीरने सर्वज्ञ होकर जब कलिङ्गमें आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिङ्गके जितशत्रु नामक राजा दिगम्बर मुनि हो गये और उनके साथ और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुयेथे‡ ।

उपरान्त दक्षिण कौशलवर्ती चेदिराजके वंशके एक महापुरुषने कलिङ्ग पर अधिकार जमा लियाथा+ । ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दिमें इस वंशका ऐल खारवेल नामक राजा अपने भुजविक्रम, प्रताप और धर्म-कार्यके लिये प्रसिद्धथा। यह जैनधर्मका दृढ़ उपासकथा। उसने सारे भारतकी दिग्विजय

---

† "जसधर राइस्स सुवा। पंचसयाभूव कलिंग तेसम्मि ॥
कोटिसिल कोडि मुणि णिव्वाण गया वामो तेसम्मि ॥१८॥"
--णिव्वाण-कंड गाहा

‡ हरिवंशपुराण (-कलकत्ता संस्करण) पृ० ६२३

+ JBORS. Vol III pp. 434-484.

की थी। वह मगधके शुङ्गवंशी राजाको हराकर वह 'कलिङ्ग जिन' नामक अर्हत्-मूर्तिको वापस कलिङ्ग ले आयाथा। दिगम्बर मुनियोंकी वह भक्ति और विनय करताथा। उन्होंने उन के लिये बहुतसे कार्य कियेथे। कुमारी पर्वत पर अर्हत्भगवान की निषद्याके निकट उन्होंने एक उन्नत जिन प्रासाद बनवाया था। तथा पचहत्तर लाख मुद्राओं को व्यय करके उस पर वैडूर्यरत्न जड़ित स्तम्भ खड़े करवायेथे। उनकी रानीने भी जैनमन्दिर तथा मुनियोंके लिये गुफायें बनवाई थीं; जो अब तक मौजूदहैं×। और भी न जाने उन्होंने दिगम्बर मुनियोंके लिये क्या २ नहीं किया था!

उस समय मथुरा, उज्जैनी और गिरिनगर जैन ऋषियों के केन्द्रस्थान थे+। खारवेलने जैन ऋषियोंका एक महासम्मेलन ऐकत्र कियाथा। मथुरा, उज्जैनी, गिरिनगर काञ्चीपुर आदि स्थानोंसे दिगंबर मुनि उस सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये कुमारी पर्वत पर पहुंचेथे। बड़ा भारी धर्म महोत्सव किया गया था*। बुद्धिलिङ्ग, देव, धर्मसेन, नक्षत्र आदि दिगम्बर जैनाचार्य उस महासम्मेलनमें सम्मिलित हुये थे†। इन ऋषि-

---

× बंबि ओ जैस्मा०. पृ० ६१

÷ IHQ, Vol IV p. 522.

* "सतदिसानुं भनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे·········चोयथि अंगसतिकं तुरियं उपादयति।"

—JBORS., XIII 236-237.

† अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ २२८

पुरुषोंने मिलकर जिनवाणीका उद्धार किया था तथा सम्राट् खारवेलके सहयोगसे वे जैनधर्म प्रचार करनेमें सफलमनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्रायः सारे भारतमें जैनधर्म फैला हुआ था। यहाँ तक कि विदेशियोंमें भी उसका प्रचार होगया था; जैसेकि पूर्व परिच्छेदमें लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल खारवेलके राजकालमें दिगंबर मुनियोंका महती उत्कर्ष हुआ था।

ऐल खारवेलके बाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिङ्गके राजा हुए थे। वहभी जैनधर्मानुयायी थे ‡। उनके बादभी एक दीर्घ समय तक कलिङ्गमें जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। बौद्धग्रन्थ 'दाठावंसो' से ज्ञात है कि कलिङ्गके राजाओंमें म० बुद्धके समयसे जैनधर्मका प्रचार था। गौतमबुद्धके स्वर्गवासी होनेके बाद बौद्धभिक्षु खेमने कलिङ्गके राजा ब्रह्मदत्तको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया था। ब्रह्मदत्तका पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्दभी बौद्ध रहे थे + ! किन्तु उप-

---

‡ JBORS, III p. 505.

+ दन्त धातुं ततो खेमो अत्तना गहितं अदा।
दन्तपूरे कलिङ्गस्स ब्रह्मदत्तस्स राजिनो ॥४७॥२॥
देसयित्वान सो धम्मं भेत्वा सब्ब कुदिट्ठियो।
राजानं तं पसादेसि अग्गभिक्खुरतनत्तये ॥४८॥

× × ×

अनुजातो ततो तस्स कासिराज व्हयो सुतो।
रज्जं लद्धा धमधानं सोकसल्लमपानुदि ॥६६॥

× × ×

रान्त फिर जैनधर्मका प्रचार कलिङ्गमें होगया। यह समय संभवतः खारवेल आदिका होगा। कालान्तरमें कलिंगका गुहशिव नामक प्रतापी राजा निर्ग्रन्थ साधुओंका भक्त कहा गया है। उसके बौद्ध मंत्रीने उसे जैनधर्म विमुख बना लिया था। निर्ग्रन्थ साधु उसकी राजधानी छोड़कर पाटलिपुत्र चले गये थे। सम्राट् पाण्डु वहाँ पर शासनाधिकारी था। निर्ग्रन्थ साधुओंने उससे गुहशिवकी धृष्टताकी बात कही थी ×। यह घटना लगभग ईस्वी तीसरी या चौथी शताब्दि

सुनन्दो नाम राजिन्दो आनन्दजननो सतं।
तस्स अजो ततो आसि बुद्धसासननामको ॥६६॥

— दाठा० पृ० ११-१२

× गुहसीव व्हेयाराजा दुरतिक्कमसासनो।
ततो रज्जसिरिं पत्वा अनुगरिह महाजनं ॥७२॥२॥
सच्चत्थानभिञ्ञो सो लाभासक्कारलोलुपे।
मायाविनो अविज्जन्धे निगन्थे समुपट्ठहि ॥७३॥

× × ×

तस्स मच्चस्स सोराजा सुत्वाधम्मसुभासितं।
दुल्लद्धिमलमुज्झित्वा पसीदिरतनत्तये ॥८४॥

× × ×

इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो।
पब्बाजेसि सकारट्ठ निगण्ठे ते असेसके ॥८९॥
ततो निगण्ठा सब्बेपि धतसित्तानला यथा।
कोपग्गिजलिता गच्छुं पुरं पाटलिपुत्तकं ॥९०॥

× × ×

तत्थ राजा महातेजो जम्बुदीपस्स इस्सरो।
पण्डु नामोतदा आसि अनन्त बलवाहनो ॥९१॥

की कही जा सकती है। और इससे प्रगट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियोंकी प्रधानता कलिङ्ग–अङ्ग–बङ्ग और मगधमें विद्यमान् थी। दिगम्बर मुनियोंको राजाश्रय मिला हुआ था।

कुमारीपर्वत परके शिलालेखोंसे यहभी प्रगट है कि कलिङ्गमें जैनधर्म दसवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहाँ पर दिगम्बर जैनमुनियोंके विविध संघ विद्यमान् थे; जिनमें आचार्य यशनन्दि, आचार्य कुलचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द्र मुख्य साधु थे।+

इस प्रकार कलिङ्गमें दिगम्बर जैनधर्मका बाहुल्य एक अतीव प्राचीनकालसे रहा है और वहाँ पर आजभी सराक लोग एक बड़ी संख्या में हैं, जो प्राचीन श्रावक हैं†। उनका अस्तित्व इस बातका प्रमाण है कि कलिंगमें जैनत्वकी प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान रही थी।

---

*'कोपन्धोऽय निगण्ठा ते सब्बे पेसुञ्ञकारका।
उपसङ्कम्मराजानं इदं वचनमब्रवुं ॥६२॥ इत्यादि'
--दाठा०, पृ० १३-१४

+ बंबिओ जैस्मा०, पृ० ६४-६६

† बंबिओ जैस्मा०, १०१-१०४

गुप्त-साम्राज्यमें दिगम्बर-मुनि !

"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture; but the masses followed the religions traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continuedto be public schools and universities for the greater part of India."

—E. B. Havell., HARI., p. 156.

यद्यपि गुप्तवंशके राज्यकालमें ब्राह्मण धर्मकी उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारणमें अबभी जैन और बौद्ध धर्मोंकाही प्रचारथा। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनताका कल्याण कर रहेथे और दिगम्बर उपाध्याय जैन-विद्यापीठोंके द्वारा ज्ञान-दान करते थे। गुप्त कालमें मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ता, राजगृह आदि स्थान जैनधर्मके केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगंबर जैन साधुओंके सङ्घ विद्यमान् थे। गुप्त-सम्राट अब्राह्मण साधुओंसे द्वेष नहीं रखते थे;* तथापि उनका वाद ब्राह्मण विद्वानोंके साथ कराकर सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री सिद्धसेनदिवाकरके उद्गारोंसे पता चलता है कि

---

* भाइ०, पृ० ६१।

"उस समय सरलवाद पद्धति और आकर्षक शान्तिवृत्तिका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निर्ग्रन्थ अकेले दुकेले ही ऐसे स्थलों पर आ पहुंचतेथे और ब्राह्मणादि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य समूह और जनसमुदाय सहित राजसी ठाठ-बाठके साथ पेश आते थे; तो भी जो यश निर्ग्रंथोंको मिलता था वह उन प्रतिवादियोंको अप्राप्य था।"†

बङ्गालमें पहाड़पुर नामक स्थान दिगंबर जैन सङ्घका केन्द्र था। वहांके दिगंबर मुनि प्रसिद्ध थे।‡

गुप्तवंशमें चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारणकी थी। विद्वानोंका कथन है कि उसीकी राज-सभामें निम्नलिखित विद्वान् थे+ :—

'धन्वन्तरिःक्षपणकोऽमरसिंहशंकुर्वेतालभट्टघटखर्परका-लिदासाः। ख्याता वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥'

इन विद्वानोंमें 'क्षपणक' नामका विद्वान् एक दिगंबर मुनि था। आधुनिक विद्वान् उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करतेहैं ×। जैनशास्त्रभी उनका समर्थन करते हैं। उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेनने 'महाकाली' के मन्दिर

---

† जैहि० मा० १४ पृ० १४६

‡ IHQ VII. 441.

+ रभा०, १३३।

× रभा० चरित्र पृ० १३३-१४१।

में चमत्कार दिखाकर चन्द्रगुप्तको जैनधर्ममें दीक्षित कर लिया था।+

उपरोक्त विद्वानोंमें से अमरसिंह*, वराहमिहिर† आदिने अपनी रचनाओंमें जैनोंका उल्लेख किया है, उससेभी प्रकट है कि उस समय जैनधर्म काफी उन्नतरूपमें था। वराहमिहिरने जैनोंके उपास्यदेवताकी मूर्ति नग्न बनती लिखी है, इससे यह स्पष्ट है कि उस समय उज्जैनीमें दिगम्बर धर्म महत्वशाली था। जैनसाहित्यसे प्रकट है कि उज्जैनीके निकट भद्दलपुर (बीलनगर) में उस समय दिगंबर मुनियोंका संघ मौजूद था, जिसके आचार्योंकी कालानुसार नामावली निम्नप्रकार है:—

१. श्री मुनि वज्रनन्दी	...	सन् ३०७ में आचार्य हुये
२. „ „ कुमारनन्दी	...	३२६ „ „
३. „ „ लोकचन्द्रप्रथम	...	३६० „ „
४. „ „ प्रभाचन्द्र „	...	३६६ „ „
५. „ „ नेमिचन्द्र „	...	४२१ „ „
६. „ „ भानुनन्दि	...	४३० „ „
७. „ „ जयनन्दि	...	४५१ „ „
८. „ „ वसुनन्दि	...	४६८ „ „
९. „ „ वीरनन्दि	...	४७४ „ „

+ वीर, वर्ष १ पृ० ४७१

* अमरकोष देखो

† 'नग्नान् जिनानां विदुः।'--वराहमिहिर संहिता

१०. श्री मुनि रत्ननन्दी	...	सन् ५०४ में आचार्य हुये।	
११. " " माणिक्यनन्दी	...	५२८	" "
१२. " " मेघचन्द्र	...	५४४	" "
१३. " " शान्तिकीर्ति प्रथम		५६०	" "
१४. " " मेरुकीर्ति	...	५८५	" *

इनके बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होंने भद्दल-पुर (मालवा) से हटाकर जैनसंघका केन्द्र उज्जैनमें बना दिया †। इससेभी स्पष्टहै कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके निकट जैनधर्मको आश्रय मिलाथा। उसी समय चीनी-यात्री फाह्यान भारतमें आयाथा। उसने मथुराके उपरान्त मध्यदेशमें ९६ पाखण्डोंका प्रचार लिखाहै। वह कहताहै कि "वे सब लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु-संघहैं। वे भिक्षा करतेहैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नानारूपसे धर्मानुष्ठान करतेहैं‡।" दिगम्बर-मुनियोंके पास भिक्षापात्र नहीं होता—वे पाणिपात्र भोजी और उनके संघ होतेहैं। तथा वे अहिंसा धर्मका उपदेश मुख्यतासे देतेहैं। फाह्यानभी कहताहै कि "सारे देशमें सिवाय चाण्डालके कोई अधिवासी न जीवहिंसा करताहै, न मद्य पीताहै और न लहसुन खाताहै।......न कहीं

---

* पट्टावली जैहि०, भाग ६ अङ्क ७-८ पृ० २६-३० व IA., XX 351-352
† IA., XX. 352.
‡ फाह्यान पृ० ३६।

सूनागार और मद्यकी दूकानेंहैं+ ।" उनके इस कथनसे भी जैनमान्यताका समर्थन होता है कि भद्दलपुर, उज्जैनी आदि मध्यदेशवर्ती नगरोंमें दिगम्बर जैन मुनियोंके संघ मौजूदथे और उनके द्वारा अहिंसाधर्मकी उन्नति होतीथी ।

फाह्यान संकाश्य, श्रावस्ती, राजगृह आदि नगरोंमें भी निर्ग्रन्थ-साधुओंका अस्तित्व प्रगट करताहै । संकाश्य उस समय जैन-तीर्थ माना जाताथा । संभवतः वह भगवान विमल नाथ तीर्थङ्करका केवलज्ञान स्थान है । दो-तीन वर्ष हुये वहीं निकटसे एक नग्न जैनमूर्ति निकलीथी और वह गुप्तकालकी अनुमानकी गई है × । इस तीर्थके सम्बन्धमें निग्रन्थों और बौद्धभिक्षुओंमें वाद हुआ वह लिखताहै ÷ । श्रावस्तीमें भी बौद्धोंने निर्ग्रन्थोंसे विवाद किया वह बतलाताहै* । श्रावस्तीमें उस समय सुहृद्ध्वज वंशके जैनराजा राज्य करते थे † । कुहाऊं (गोरखपुर) से जो स्कन्दगुप्तके राजकालका जैनलेख मिलाहै ‡, उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्यही दिगम्बर जैनधर्म उन्नतावस्था परथा ।

साँचीसे एक जैन लेख विक्रम सं० ४६८ भाद्रपद चतुर्थीका मिलाहै । उसमें लिखाहै कि उन्दानके पुत्र आमरकार

+ फाह्यान, पृ० ६१

× IHQ., Vol. V p. 142

÷ फाह्यान, पृ० ३५-३६

* फाह्यान, पृ० ४३-४५

† संप्राजैस्मा० पृ० ६५

‡ भाप्राग०, भा० २ पृ० २८६

देवने ईश्वरवासक गांव और २५ दीनारोंका दान किया। यह दान काकनाबोटके जैन विहारमें पाँच जैनभिक्षुओंके भोजनके लिये और रत्नगृहमें दीपक जलानेके लिये दिया गयाथा। उक्त आमरकारदेव चन्द्रगुप्तके यहां किसी सैनिकपद पर नियुक्त था+। यहभी जैनोत्कर्ष का द्योतकहै।

राजगृह परभी फाह्यान निर्ग्रन्थोंका उल्लेख करताहै*। वहांकी सुभद्रगुफामें तीसरी या चौथी शताब्दिका एक लेख मिलाहै जिससे प्रगटहै कि मुनिसंघने मुनि वैरदेवको आचार्य पद पर नियुक्त कियाथा‡। राजगृहमें गुप्तकालकी अनेक दिगम्बर मूर्तियांभीहैं+।

सारांशतः गुप्तकालमें दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य था और वे सारे देशमें घूम २ कर धर्मोद्योत कर रहेथे।

+ भाप्राराo, भा०:२ पृ० २६३

* "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which he invited Buddha to partake. (The Niganthas were ascetics who went naked.)" ---Fa-Hian, Beal., pp. 110-113 यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।

‡ वंबिओ जैस्मा०, पृ० १६

+ "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to the Patna Court by R. B. Ramprasad chanda. B. A. Ch. IV. p. 30. (Jain Images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

[१८]

हर्षवर्द्धन् तथा हुएनसांगके समयमें दिगम्बर-मुनि !

"बौद्धों और जैनियोंकी भी......संख्या बहुत अधिक थी।.........बहुतसे प्रान्तीय राजाभी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक-सिद्धान्त और रीति-रिवाजभी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाजमें साधुओं, तपस्वियों, भिक्षुओं और यतियोंका एक बड़ा भारी समुदाय था, जो उस समयके समाजमें विशेष महत्व रखता था।......(हिन्दुओं में) बहुतसे साधु अपने निश्चित स्थानों पर बैठे हुये ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुतसे साधु शहरों व गांवोंमें घूम घूम कर लोगों को उपदेश एवं शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओंका भी था।...................... साधारणतः लोगोंके जीवनको नैतिक एवं धार्मिक बनानेमें इन साधुओं, यतियों और भिक्षुओंका बड़ा भारी भाग था।"

—कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार. ‡

गुप्त-साम्राज्यके नष्ट होने पर उत्तर-भारतका शासन योग्य हाथोंमें न रहा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही हूण जातिके लोगोंने भारत पर आक्रमण करके उस पर

‡ हर्षकालीन भारत—"त्यागभूमि" वर्ष २ खण्ड १ पृ० १०१

अधिकार जमा लिया। उनका राज्य सभी धर्मोंके लिये थोड़ा बहुत हानिकर हुआ; किन्तु यशोधर्मन् राजाने संगठन करके उन्हें परास्त कर दिया । इसके बाद हर्षवर्द्धन् नामक सम्राट् एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारतमें प्रायः अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारतको हथियानेकी भी जिन्होंने कोशिशकी थी। इनके राजकालमें प्रजाने संतोषकी सांस ली थी और वह धर्म-कर्मकी बातोंकी ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकालसे ही ब्राह्मण-धर्मका पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी; किन्तु जैन और बौद्धधर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृतिका वह उन्नत काल था। गुप्तकालसे जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानोंमें वाद और शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ होगये थे। हर्षकालमें उनको वह उन्नतरूप मिला कि समाजमें विद्वान् ही सर्व श्रेष्ठपुरुष गिना जाने लगा*। इन विद्वानोंमें दिगम्बर-मुनियोंका भी सद्भाव था। सम्राट् हर्षके राजकवि बाणने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा जब गहन जङ्गल में जा पहुँचा तो वहां उसने अनेक तरहके तपस्वी देखे। उन में नग्न (दिगम्बर) आर्हत (जैन) साधुभी थे‡।" हर्षने अपने महासम्मेलनमें उन्हें शास्त्रार्थके लिये बुलाया था और वहएक

---

* भाइ०, पृ० १०१—१०४।

‡ दिमु०, पृ० २१.

बड़ी संख्यामें उपस्थित हुये थे‡। इससे प्रकट है कि उस समय हर्षकी राजधानीके आस-पासभी जैनधर्मका प्राबल्य था; वैसे तो वह सारे भारतमें फैला हुआ था। उज्जैनका दिगम्बर जैनसङ्घ अबभी प्रसिद्ध था और उसमें तत्कालीन निम्न दिगम्बर जैनाचार्य मौजूद थे + :—

१. श्रीदिगं०	जैनाचार्य	महाकीर्त्ति,	सन्	६२६	को आचार्य	हुये;
२	„	„ विष्णुनन्दि,	„	६४७	„	„
३.	„	„ श्रीभूषण,	„	६६६	„	„
४.	„	„ श्रीचन्द्र,	„	६७८	„	„
५.	„	„ श्रीनन्दि,	„	६९२	„	„
६.	„	„ देशभूषण.	„	७०८	„	„

इत्यादि।

सम्राट् हर्षके समयमें (७ वीं श०) चीनदेशसे हुएनसांग नामक यात्री भारत आयाथा। उसने भारत और भारतके बाहर दिगम्बर जैन मुनियोंका अस्तित्व बतलाया है × । वह उन्हें निर्ग्रंथ और नङ्गेसाधु लिखताहै तथा उनकी केशलुञ्चनक्रियाका भी उल्लेख करताहै ÷। वह पेशावरकी ओरसे भारतमें घुसाथा।

---

‡ HARI., p. 270.

+ जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० ३० व IA., XX. 352.

× "Hieun Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries."---AISJ., p. 45. विशेषके लिये व्हुँनसाँग का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि०) देखो।

÷ "The Li-Hi (Nirgranthas) distinguish them-

और वहीं सिंहपुरमें उसने नंगे जैन मुनियोंको पाया था* । इसके उपरान्त पंजाबके और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, अहिक्षेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, बनारस, श्रावस्ती, इत्यादि मध्यदेशवर्ती नगरोंमें यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियोंका प्रथक उल्लेख नहीं किया है; परन्तु एक साथ सब प्रकारके साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्वको इन नगरोंमें प्रकट कर दिया है । मथुराके सम्बंधमें यह लिखता है कि "पांच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें सब प्रकारके साधु उपासना करते हैं ।†" स्थानेश्वरके विषयमें उसने लिखा है कि "कई सौ देवमन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जातिके अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते हैं‡ ।" ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरोंके सम्बन्धमें उसने किये हैं ।

राजगृहके वर्णनमें हुएनसांगने लिखा है कि "विपुल पहाड़ीकी चोटी पर एक स्तूप उस स्थानमें है, जहां प्राचीन-कालमें तथागत भगवान्‌ने धर्मकी पुनरावृत्ति की थी । आज-कल बहुतसे निर्ग्रन्थ लोग (जो नङ्गे रहते हैं) इस स्थान पर

---

selves by leaving their bodies naked & pulling out their hair. Their skin is all cracked, their feet are hard & chapped like cotting trees."

---(St. Julien, Vienna, p224).

* हुआं०, पृष्ठ १४३
† हुआ०, पृ० १८१
‡ हुआ०, पृ० १८६

आते हैं और रातदिन अविराम तपस्या किया करते हैं तथा सवेरेसे सांझ तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके बड़ी भक्ति से पूजा करते हैं।'' +

पुण्ड्रवर्द्धन् (बंगाल) में वह लिखता है कि "कई सौ देवमन्दिरभी हैं, जिनमें अनेक सम्प्रदायके विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। अधिक संख्या निर्ग्रन्थ लोगों (दिगम्बर मुनियों) की है ×।"

समतट (पूर्वी बंगाल) में भी उसने अनेक दिगम्बर साधु पाये थे। वह लिखता है, "दिगम्बर साधु, जिनको निर्ग्रन्थ कहते हैं, बहुत बड़ी संख्यामें पाये जाते हैं + ।"

ताम्रलिप्तिमें वह विरोधी और बौद्ध दोनोंका निवास बतलाता है। कर्णसुवर्णके सम्बन्धमेंभी यही बात कहता है*।

कलिङ्गमें इस समय दिगम्बर जैनधर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुये था। हुएनसाँग कहता है कि वहाँ 'सबसे अधिक संख्या निर्ग्रन्थ लोगोंकी है।†' इस समय कलिङ्गमें सेनवंशके राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैनधर्मसे सम्बन्ध होना बहुत कुछ संभव है।‡

+ हुआ०, पृ० ४७४-४७५

× हुआ० ५२६

+ हुआ०, पृ० ५३१

* हुआ०, पृ० ५३५-५३७

† हुआ०, पृ० ५४५

‡ वीर वर्ष ४ पृ० ३२८-३३२

दक्षिण कौशलमें वह विधर्मी और बौद्ध दोनोंको बताता है। आन्ध्रमें भी विरोधियोंका अस्तित्व वह प्रगट करता है।+

चोलदेशमें वह बहुतसे निर्ग्रन्थ लोग बताता है।×
द्रविड़के सम्बन्धमें वह कहता है कि "कोई असली देवमन्दिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनको निर्ग्रन्थ कहते हैं।"÷

मालकूट (मलयदेश) में वह बताता है कि "कई सौ देव-मन्दिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निर्ग्रंथ लोग हैं।"†

इस प्रकार हुएनत्सांग के भ्रमण-वृतान्तसे उस समय प्रायः सारे भारतवर्षमें दिगम्बर जैन मुनि निर्वाध्र विहार और धर्मप्रचार करते हुये मिलते हैं।

+ हुआ०, पृ० ५५६-५५७
× हुआ०, पृ० ५७०
÷ हुआ०, पृ० ५७२
† हुआ०, पृ० ५७४

मध्यकालीन हिन्दू राज्यमें दिगम्बर मुनि !

"श्री धाराधिप भोजराज मुकुट प्रोताश्मरश्मिच्छटा—
च्छाया-कुङ्कुम-पङ्क-लिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि—
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक-तरणि श्रीमान्प्रभाचंद्रमाः॥"

—चन्द्रगिरि शिलालेख।

राजपूत और दिगम्बर मुनि

हर्षके उपरांत उत्तर भारतमें कोई एक सम्राट् न रहा; बल्कि अनेक छोटे २ राज्योंमें यह देश विभक्त होगया। इन राज्योंमें अधिकांश राजपूतोंके अधिकारमें थे और इनमें दिगम्बर मुनि निर्बाध विचर कर जनकल्याण करतेथे। राजपूतोंमें अधिकांश जैसे चौहान, पड़िहार आदि एक समय जैनधर्म-भुक्तथे और उनके कुलदेवता चक्रेश्वरी, अम्बा आदि शासन-देवियांथीं*।

उत्तर भारतमें कन्नौजको राजपूत-कालमेंभी प्रधानता प्राप्त रहीहै। वहांका राजाभोज परिहार (८४०—६० ई०) सारे उत्तरभारतका शासनाधिकारीथा। जैनाचार्य बप्पसूरिने उसके दरबारमें आदर प्राप्त कियाथा †।

* "वीर", वर्ष ३ पृ० ४७२ एक प्राचीन जैन गुटका में यह बात लिखी हुई है।

† भाइ०, पृ० १०८ व दिजै०, वर्ष २१-पृ० ८४

श्रावस्ती, मथुरा, श्रसाईखेड़ा, देवगढ़, बारानगर, उज्जैन आदि स्थान उस समयभी जैनकेन्द्र बने हुयेथे। ग्यारहवीं शताब्दि तक श्रावस्तीमें जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहाथा। वहां का अन्तिमराजा सुहृद्ध्वजथा‡। उसके संरक्षणमें दिगम्बर मुनियोंका लोककल्याणमें निरत रहना स्वाभाविकहै।

बनारस के राजा भीमसेन जैनधर्मानुयायीथे और वह अन्तमें पिहिताश्रव नामक जैनमुनि हुयेथे+।

मथुरामें रणकेतु नामक राजा जैनधर्मका भक्त था। वह अपने भाई गुणवर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था। आखिर गुणवर्माको राज्य देकर वह जैनमुनि होगयाथा।×

सूरीपुर (ज़िला आगरा) का राजा जितशत्रुभी जैनीथा वह बड़े २ विद्वानोंका आदर करताथा। अन्तमें वह जैनमुनि होगया था और शान्तिकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुआथा+।

मालवा के परमार राजा और दिगम्बर मुनि

मालवाके परमारवंशी राजाओंमें मुञ्ज और भोज अपनी विद्यारसिकताके लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी राजधानी धारानगरी विद्याकी केन्द्रथी। मुञ्जके दरबारमें धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुध आदि अनेक

‡ संप्राजैस्मा०, पृ० ६५
+ जैप्र० पृ० २४२
× पूर्व०
+ पूर्व०, पृ० २४१

विद्वान् थे×। मुञ्जनरेशसे दिगम्बर जैनाचार्य महासेनने विशेष सम्मान पायाथा÷। मुञ्जके उत्तराधिकारी सिंधुराजके एक सामन्तके अनुरोधसे उन्होंने 'प्रद्युम्न चरित्' काव्यकी रचना कीथी। कवि धनपालका छोटा भाई जैनाचार्यके उपदेशसे जैन होगयाथा, किन्तु धनपालको जैनोंसे चिढ़थी। आख़िर उनके दिलपर भी सत्य जैनधर्मका सिक्का जम गया और वह भी जैनी होगयेथे†।

दिगंबर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्रभी राजा मुञ्जके समकालीनथे। उन्होंने राजका मोह त्यागकर दिगंबरी दीक्षा ग्रहण कीथी‡।

राजा मुञ्जके समयमें ही प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री अमितगतिजी हुये थे। वह माथुरसंघके आचार्य माधवसेनके शिष्य थे। 'आचार्यवर्य अमितगति बड़े भारी विद्वान् और कवि थे। इनकी असाधारण विद्वताका परिचय पानेको इनके ग्रंन्थोंका मनन करना चाहिये। रचना सरल और सुखसाध्य होने परभी बड़ी गंभीर और मधुर है। संस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था *।'

'नीतिवाक्यामृत' आदि ग्रन्थोंके रचयिता दिगम्बरा-

× भाप्राra०, भा० १ पृ० १००

÷ मप्राजैस्मा०, भूमिका, पृ० २०

† भाप्रा०० भा० १ पृ० १०३-१०४

‡ मजैइ०, पृ० ५४-५५

* विको०, भा० २ पृ० ६४

चार्य श्री सोमदेव सूरि श्री अमितगति आचार्यके समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यों द्वारा दिगम्बर धर्मकी खूब प्रभावना होरही थी।†

राजाभोज और दिगम्बर मुनि

मुञ्जके समान राजा भोजके दरबारमें भी जैनोंको विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वयं शैव था, परन्तु 'वह जैनों और हिन्दुओंके शास्त्रार्थका बड़ा अनुरागी था।' श्री प्रभाचन्द्राचार्यका उसने बड़ा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसेनने भोजकी सभामें सैकड़ों विद्वानोंसे वाद करके उन्हें परास्त किया था।‡

एक कवि कालिदास राजा भोजके दरबारमें भी थे। कहतेहैं कि उनकी स्पर्द्धा दिगम्बराचार्य श्रीमानतुङ्गजीसे थी। उन्हींके उकसाने पर राजा भोजने मानतुङ्गाचार्यको अड़तालीस कोठोंके भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने योगबलसे बन्धनमुक्त हो गए थे। इस घटनासे प्रभावित होकर कहते हैं, राजा भोज जैनधर्ममें दीक्षित होगये थे+; किन्तु इस घटनाका समर्थन किसी अन्य श्रोतसे नहीं होता!

श्री ब्रह्मदेवके अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्त्ता श्री नेमि-

---

† विर०, पृ० ११५
‡ भाप्रारा० भाग १ पृष्ठ ११८-१२१
+ भक्तामरकथा—जैग०, पृ० २१६

चन्द्राचार्यभी राजा भोजदेवके दरबारमें थे + । श्री नयनन्दि नामक दिगम्बर जैनाचार्यने अपना "सुदर्शन चरित्र" राजा भोजके राजकालमें समाप्त किया था । ÷

उज्जैनी का दिगम्बर संघ

भोजने अपनी राजधानी उज्जैनीमें स्थापितकी थी । उस समयभी उज्जैनी अपने "दि० जैन संघ" के लिए प्रसिद्ध थी । उस समय तक उस संघमें निम्न आचार्य हुए थे* :—

अनन्तकीर्ति	...	...	सन् ७०८ ई०
धर्मनन्दि	...	...	" ७२८ "
विद्यानन्दि	...	...	" ७५१ "
रामचन्द्र	...	...	" ७८३ "
रामकीर्ति	...	...	" ७६० "
अभयचन्द्र	...	...	" ८२१ "
नरचन्द्र	...	...	" ८४० "
नागचन्द्र †	...	...	" ८५६ "
हरिनन्दि	...	...	" ८८२ "
हरिचन्द्र	...	...	" ८६१ "
महीचन्द्र	...	...	" ६१७ "

+ द्रसं०, पृष्ठ १ प्रस्ति०

÷ मप्राजैस्मा०, भूमिका पृ० २०

* जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० ३०-३१

† ईडर से प्राप्त पट्टावली में लिखा है कि "इन्होंने दश वर्ष विहार किया था और यह स्थिर व्रती थे ।"—दिजै० वर्ष १४ अङ्क १० पृ० १७-१४

माघचन्द्र ···	सन् ९९३	ई०
लक्ष्मीचंद्र ···	" ९९६	"
गुणकीर्त्ति ···	" ९७०	"
गुणचन्द्र ···	" ९९१	"
लोकचन्द्र ···	" १००६	"
श्रुतकीर्त्ति ···	" १०२२	"
भावचन्द्र ···	" १०३७	"
महीचन्द्र ···	" १०५८	"

आपके सङ्घमें दिगं० मुनियोंकी संख्या अधिक थी और आपके धर्मोपदेशके द्वारा धर्म प्रभावना विशेष हुई थी।*

इनकी उपाधियाँ 'त्रिविधविधेश्वर वैयाकरणभास्कर-महा-मंडलाचार्यतर्कवागीश्वर' थी। इनके विहारद्वारा खूब प्रभावना हुई।†

उपरान्त परमार राजाओंके समयमें दिगम्बरमुनि

मालवाके परमार राजाओंमें विन्ध्यवर्माका नामभी उल्लेखनीय है। इसराजा के राजकालमें प्रसिद्ध जैन कवि आशाधरने ग्रन्थरचनाकी था और उस समय कई दिगम्बर मुनिभी राजसम्मान पाये हुये थे। इनमें मुनि उदयसेन और मुनि मदनकीर्ति उल्लेखनीय हैं। मुनि मदनकीर्त्ति ही विन्ध्यवर्माके पुत्र अर्जुनदेवके राजगुरु मदनोपाध्याय अनुमान किये गये हैं। इन्हें और मुनि विशालकीर्त्ति, मुनि विनयचन्द्र आदिको कविवर आशाधरने जैनसिद्धान्त और साहित्यज्ञानमें निपुण बनाया था। नालछा उस समय जैनधर्मका केन्द्र था।‡

---

* दिजैo, वर्ष १४ अङ्क १० पृ० १७-२४।
† पूर्व०
‡ भाप्राRा०, भाग १ पृ० १५७ व सागार०, भूमिका पृ० ६

श्वेताम्बर ग्रन्थ "चतुर्विंशति प्रबन्ध" में लिखा है कि उज्जैनीमें विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदन, कीर्ति नामके दिगंबर साधु थे। उन्होंने वादियोंको पराजित करके 'महाप्रामाणिक' पदवी पाई थी और कर्णाटक देशमें आ कर विजयपुर नरेश कुन्तिभोजके दरबारमें आदर पाया था और अनेक विद्वानोंको पराजित किया था; किन्तु अन्तमें वह मुनिपदसे भ्रष्ट होगए थे।+

गुजरातके शासक और दिगम्बर मुनि

मालवाके अनुरूप गुजरातभी दिगम्बर जैन मुनियोंका केन्द्र था। अङ्कलेश्वरमें भूतबलि और पुष्पदन्ताचार्यने दिगंबर आगम ग्रन्थोंकी रचनाकी थी। गिरिनगरके निकटकी गुफाओंमें दिगंबर मुनियोंका संघ प्राचीन कालसे रहता था। भृगुकच्छभी दिगंबर जैनोंका केन्द्र था।

गुजरातमें चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओंके समयमें दिगंबर जैनधर्म उन्नतशील था। सोलंकियोंकी राजधानी अणहिलपुरपट्टनमें अनेक दिगंबर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनिने वहीं ग्रन्थ रचनाकी थी×। योगचन्द्र मुनि÷ और मुनि कनकामरभी शायद गुजरातमें हुए थे। ईडरके दिगम्बरसाधु प्रसिद्ध थे।

+जैहि०, भा० ११ पृ० ४८४

× वीर वर्ष १ पृ० ६१७

÷ वीर, वर्ष १ पृ० ६३८

सोलंकी सिद्धराजने एक वाद सभा कराई थी; जिस में भाग लेनेके लिये कर्णाटक देशसे कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बराचार्य नग्न ही पाटन पहुँचे थे। सिद्धराजने उनका बड़ा आदर किया था। देवसूरि नामक श्वेताम्बराचार्यसे उनका वाद हुआथा ‡। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समयभी दिगंबरजैनोंका गुजरातमें इतना महत्व था कि शासक राजकुलका भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण
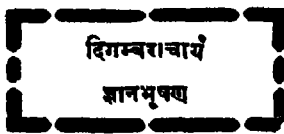
गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशोंमें जिनधर्मका प्रचार श्री दिगम्बर भट्टारक ज्ञानभूषणजी द्वारा हुआ था। अहीरदेशमें उन्होंने ऐलकपद धारण किया था और वाग्वरदेशमें महाव्रतोंको उन्होंने अङ्गीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिलंग, द्राविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, भेदपाट, मालव, मेवात, कुरुजांगल, तुरुव, विराटदेश, नमियाड़देश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशोंमें विचरे थे। तौलवदेशके महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्र-वर्तियोंके मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरवदेशमें षट्दर्शन के ज्ञाताओंका गर्व उन्होंने नष्ट किया था। नमियाड़ देशमें जिनधर्म प्रचारके लिए नौ हज़ार उपदेशकोंको उन्होंने नियुक्त किया था। दिल्ली पट्टके वह सिंहसनाधीश थे। श्रीदेवराय-

* विको०, भा० ५ पृ० १०५

राज, मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजाओंने उनके चरणोंकी वन्दनाकी थी।*

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र
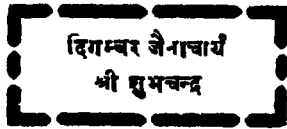
श्री ज्ञानभूषणजी के प्रशिष्य श्री शुभचन्द्राचार्यभी दिगम्बर मुनि थे। उनका पट्टभी दिल्लीमें रहा था। उन्होंने भी विहार करते हुये गुजरातके वादियोंका मद नष्ट किया था। वह एक अद्वितीय विद्वान् और वादी थे। अनेक ग्रन्थोंकी उन्होंने रचनाकी थी। पट्टावलीमें उनके लिये लिखा है कि "वह छन्द-अलङ्कारादिशास्त्र—समुद्रके पारगामी, शुद्धात्मा के स्वरूपचिन्तन करनेही से निद्राको विनिष्ट करने वाले, सब देशोंमें विहार करनेसे अनेक कल्याणोंको पाने वाले, विवेक, विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता और गुणगणके समुद्र, प्रकृष्ट पात्र वाले, अनेक छात्रोंका पालन करने वाले, सभी विद्वत्मण्डलीमें सुशोभित शरीर वाले, गौड़वादियोंके अन्धकारके लिये सूर्यकेसे, कलिङ्गवादि-रूपी मेघके लिये वायुके से, कर्णाटवादियोंके प्रथम वचन खण्डन करनेमें परम समर्थ, पूर्ववादीरूपी मातङ्गके लिए सिंहके से, तौलवादियोंकी विडम्बनाके लिए वीर, गुर्जर वादिरूपी समुद्रके लिए अगस्त्यके से, मालववादियोंके लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियोंके गर्वका नाश करने वाले,

---

* जैसिभा०, भाग १ किरण ४ पृष्ठ ४८-४९

स्वसमय तथा परसमयके शास्त्रार्थको जानने वाले और महाव्रत अङ्गीकार करने वाले थे।"†

बारानगर का दिगम्बर संघ
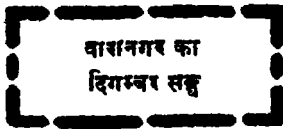
उज्जैनके उपरान्त दिगम्बर मुनियोंका केन्द्र विन्ध्याचल पर्वतके निकट स्थित बारानगर नामक स्थान होगया था‡। बारा एक प्राचीनकालसे ही जैनधर्मका गढ़ था। आठवीं या नवीं शताब्दिमें वहाँ श्री पद्मनन्दि मुनिने 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' की रचनाकी थी। इस ग्रन्थ की प्रशस्तिमें लिखा है कि "बारानगरमें शान्ति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्यसे परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि जनोंसे, मुनियोंके समूहसे और जैनमन्दिरोंसे विभूषित था। राजा शान्तिजिनशासनवत्सल,वीर और नरपति संपूजितथा। श्री पद्मनन्दिजी ने अपने गुरु व अन्यरूप इन दिगम्बर मुनियों

---

† जैसिभा०, भा० १ कि० ४ पृ० ४६-५० :—

"छन्दोलङ्कारादि शास्त्रसरित्पतिपार प्राप्तानां, शुद्धचिद्रूपचिन्तन विनाशितनिद्राणां, सर्वदेशविहारावाप्तानेकभद्राणां, विवेकविचार चातुर्य्य गाम्भीर्य्यधैर्य्यवीर्य्यगुणगणसमुद्राणां, उत्कृष्टपात्राणां, पालितानेक शच्छात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्रायाम् सकलविद्वज्जनसभाशोभितगात्राणां, गौड़वादितमःसूर्य्य, कलिङ्गवादिजलदसदागति, कर्णाटवादिप्रथमवचन खण्डनसमर्थ, पूर्ववादि मत्तमातङ्गमृगेन्द्र, तौलवादिविडम्बनवीर, गुर्जर वादिसिन्धुकुम्भोद्भव, मालववादिमस्तकशूल, जितानेका सर्वगर्वशाटन वज्रधराणां, ज्ञानसकलस्वसमयपरसमय शास्त्रार्थानां, अङ्गीकृतमहाव्रतानाम्।"

‡ IA., XX. 353—354.

का उल्लेख किया है : वीरनन्दि*, बलनन्दि, ऋषिविजयगुरु, माघनन्दि, सकलचन्द्र और श्रीनन्दि। इन्हीं ऋषियोंकी शिष्य परम्परामें उपरान्त बारानगरमें निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों का अस्तित्व रहा था †:—

माघचन्द्र	...	...	सन् १०८३
ब्रह्मनन्दि	...	...	„ १०८७
शिवनन्दि	..	...	„ १०९१
विश्वचन्द्र	...	...	„ १०९८
हरिनन्दि (सिंहनन्दि)	...		„ १०९९

---

* "सिरिनिलओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरुत्ति विक्खाओ।"
"तव संजमसंपण्णो विक्खाओ माघनन्दिगुरु।"
"णवणियमसीलकलिदो गुणउत्तो सयलचन्द गुरु।"
"तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरण संजुत्तो।
सम्मदंसणसुद्धो सिरिणंदिगुरुत्ति विक्खाओ॥१५६॥"
"पंचाचार समग्गो छज्जीवदयावरो विगद मोहो।
हरिस-विसाय-विहूणो णामेण य वीरणंदित्ति॥१५९॥"
"सम्मत्त अभिगदमणो णाणेण तह दंसणे चरित्ते य।
परतंतिणियत्तमणो बलणंदि गुरुत्ति विक्खाओ॥१६१॥"
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदंसण चरित्ते।
आरम्भकरण रहियो णामणे य पउ मणंदीत्ति॥१६३॥"
"सिरि गुरुविजय सयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं।"
"जिणसासणवच्छलो वीरो— णरवइ संपूजिओ—बारायणयरस्स पहु
णरोत्तमोसत्ति भूपालो सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहि मंडियं रम्मे"। इत्यादि।—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति; जैसासं०, भाग १ अङ्क ४ पृ० १५०

† जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० ३१ व IA. XX. 354

भावनन्दि	...	...	सन् ११०३
देवनन्दि	...	...	" १११०
विद्याचन्द्र	...	...	" १११३
सूरचन्द्र	...	..	" १११६
माघनन्दि	...	...	" ११२७
ज्ञाननन्दि	...	...	" ११३१
गङ्गकीर्त्ति	...	...	" ११४२

इन दिगम्बराचार्यों द्वारा उस समय मध्यदेशमें जैन धर्मका खूब प्रचार हुआ था।

वि० सं० १०२५ में अल्लू नामक राजाकी सभामें दिगंबराचार्यका वाद एक श्वेताम्बर आचार्यसे हुआ था।‡

चन्देल राज्य में दिगम्बर मुनि
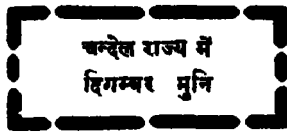
चन्देल राजा मदनवर्मदेव के समय (११३०–११६५ ई०) में दिगम्बर धर्म उन्नतरूप रहा था+। खजुराहोमें घंटाईके मन्दिर वाले शिलालेखसे उस समय दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रका पता चलता है।×

तेरहवीं शताब्दिमें अनन्त वीर्य नामक दिगम्बराचार्य प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने वादियोंको गतमद किया था+। इसी समयके लगभग एक गुणकीर्ति नामक महामुनि विशद

‡ ADJB, p. 45.
+ विको०-भा० ७ पृ० १६२।
× विको०, भा० ५ पृ० ६८०।
+ ADJB., p. 86

धर्म-प्रचारक थे। उन्हींके उपदेशसे पद्मनाभ नामक कायस्थ कविने 'यशोधर चरित्र' की रचनाकी थी।×

राजपूताना, मध्यप्रान्त बङ्गाल आदि देशों के शासक और दिगम्बर मुनि।

अजमेरके चौहान राजाओं में भी दिगंबर जैनधर्मका आदर था। बीजोलियाके श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिरको दिगम्बर मुनि पद्मनन्दि और शुभचन्द्रके उपदेशसे पृथ्वीराजने मोराकुरीगाँव और सोमेश्वर राजाने रेवाणनामक गाँव भेंट किये थे।*

चित्तौरका जैनकीर्त्ति स्तम्भ वहां पर दिगम्बर जैन धर्मकी प्रधानताका द्योतक है। सम्राट् कुमारपालके समय वहां पहाड़ी पर बहुतसे दिगम्बर जैन (मुनि) थे।†

दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्रजी का सम्मान और और विनय महाराणा हम्मीर किया करते थे।‡

झाँसी ज़िलेका देवगढ़ नामक स्थानभी मध्यकालमें दिगम्बर मुनियोंका केन्द्र था। वहां पाँचवीं शताब्दिसे तेर-

---

× उपदेशेन ग्रन्थोऽयं गुणकीर्ति महामुनेः।
कायस्थ पद्मनामेन रचितः पूर्व्व सूत्रतः॥ —यशोधर चरित्र।

* राइ०, भा० १ पृ० ३६३

† "It (जैन कीर्तिस्तम्भ) belongs to the Digambar Jains; many of whom seem to have been upon the Hill in Kumarpal's time." —मप्राजैस्मा०, पृ० १३५

‡ "श्रीधर्मचन्द्रोऽजनितस्यपट्टे हमीर भूपाल समर्चनीयः।" जैहि— भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० २६।

हवीं शताब्दि तकका शिल्पकार्य दिगम्बर धर्मकी प्रधानता का द्योतक है।

ग्वालियरमें कच्छपघाट (कछवाहे) और पड़िहार राजाओंके समयमें दिगम्बर जैनधर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किलेकी नग्नजैनमूर्तियां इस व्याख्याकी साक्षी हैं। धारानगर के बाद दिगंबर मुनियोंका केन्द्रस्थान ग्वालियर हुआ था। और वहांके दिगम्बर मुनियोंमें सं० १२९६ के आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्याद्वादविद्याके समुद्र, बाल ब्रह्मचारी, तपस्वी और दयालु थे। उनके शिष्य नाना देशोंमें फैले हुये थे।+

मध्यप्रान्तके प्रसिद्ध हिन्दू शासक कलचूरीभी दिगंबर जैनधर्मके आश्रयदाता थे।

बङ्गालमें भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओंसे स्पष्ट है। 'भक्तामरकथा' में चम्पापुरका राजा कर्ण जैनी लिखा है। भ० महावीरकी जन्मनगरी विशाखा का राजा लोकपाल जैनीथा। पटनाका राजा धात्रीवाहन श्रीशिवभूषण नामक मुनिके उपदेशसे जैनी हुआ था। गौड़देश का राजा प्रजापति बौद्धधर्मीथा, परन्तु जैनसाधु मतिसागरकी वादशक्ति पर मुग्ध होकर प्रजासहित जैनी हुआ था×। इस समयका जो जैन शिल्प बङ्गाल आदि प्रांतोंमें मिलता है, उस से उक्त जैन कथाओंका समर्थन होता है। आजतक बङ्गाल में

+ जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० २९।

× जैप्रा०, पृ० २४०—२४३

प्राचीन श्रावक 'सराक' लोगोंका बड़ी संख्यामें मिलना वहां पर एक समय दिगम्बर जैनधर्मकी प्रधानताका द्योतक है।

इस प्रकार मध्यकालके हिन्दू राज्योंमें प्रायः समग्र उत्तर भारतमें दि० मुनियोंका विहार और धर्मप्रचार होताथा। आठवीं शताब्दिके उपरान्त जब दक्षिण भारतमें दिगम्बरजैनों के साथ अत्याचार होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्रस्थान उत्तर भारतकी ओर बढ़ाना शुरू कर दिया था। उज्जैन, बारा-नगर, ग्वालियर आदि स्थानोंका जैनकेन्द्र होना, इसही बात का द्योतक है। ईस्वी ९-१० शताब्दिमें जब अरबका सुलेमान नामक यात्री भारतमें आया तो उसने भी यहां नङ्गे साधुओं को एक बड़ी संख्यामें देखा था÷। सारांशतः मध्यकालीन हिन्दूकालमें दिगम्बर मुनियोंका भारतमें बाहुल्य था।

÷ "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rarely communicate with the rest of mankind...... .....Some of them go about naked."

—Sulaiman of Arab; Elliot., I. p. 6.

[२०]

भारतीय संस्कृत-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशा सुदश कममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी॥
येषां निःसङ्गताङ्गी करणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषितास्ते।
धन्याः सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति॥"

—वैराग्यशतक।

भारतीय संस्कृत साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंके उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्यसे हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी संस्कृत साहित्यसे है, जो किसी खास सम्प्रदायका नहीं कहा जा सकता। उदाहरणतः कविवर भर्तृहरिके शतक-त्रयको लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' में उपरोक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनिकी प्रशंसा इन शब्दों में कीगई है कि "जिनका हाथही पवित्र बर्तन है, मांग कर लाई हुई भीखही जिनका भोजन है, दशों दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं, सम्पूर्ण पृथ्वीही जिनकी शय्या है, एकान्तमें निःसंग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दीनताको जिन्होंने छोड़ दिया है तथा कर्मोंको जिन्होंने निर्मूल कर दियाहै और जो अपने में ही संतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषोंको धन्य है*।" आगे इसी

* वेजै०, पृ० ५६

'शतक' में कविवर दिगम्बर मुनिवत् चर्या करनेकी भावना करते हैं :—

अशीमहिवय भिक्षामाशा वासोवसीमहि।
शयी महि मही पृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥६०॥

अर्थात्—"अब हम भिक्षाही करके भोजन करेंगे, दिशाही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि परही शयन करेंगे। फिर भला हमें धनवानों से क्या मतलब?" †

इस प्रकारके दिगम्बर मुनिको कवि समाधि गुणलीन अभय प्रकट करते हैं :—

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरंगेहिनी।
सत्यं मित्र मिदं दया च भगिनी भ्राताममः संयमः॥
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं।
ह्येते यस्यकुटंबिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥६८॥

अर्थात्—"धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संयम किया हुआ मन जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या है, दशों दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं और ज्ञानामृतही जिसका भोजन है—यह सब जिसके कुटुंबी हों भला उस योगी पुरुषको किसका भय हो सकता है?"‡

'वैराग्यशतक' के उपरोक्त श्लोक स्पष्टतया दिगम्बर

---

† वैजै०, पृ० ४७
‡ वैजै०, पृ० ४७

मुनियोंको लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमें वर्णित सबही लक्षण जैन मुनियोंमें मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटकमें क्षपणक जीवसिद्धिका पार्ट दिगम्बर मुनिका द्योतक है +। वहाँ जीवसिद्धि के मुखसे कहलाया गया है कि—

"सासणमलिहंताणं पडिवज्जह मोहवाहि वेज्जाणं।
जेमुत्तमात्तकडुअं पच्छापत्थं मुपदिसन्ति ॥१८॥४॥"

अर्थात्—"मोहरूपी रोगके इलाज करने वाले अर्हंतोंके शासनको स्वीकार करो, जो मुहूर्त मात्रकेलिये कडुवे हैं, किंतु पीछेसे पथ्यका उपदेश देते हैं।"

इस नाटकके पाँचवें अङ्कमें जीवसिद्धि कहता है कि—
"अलहंताणं पणमामि जेदेगंभीलदाए बुद्धीए।
लोउत लेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहि गच्छन्दि ॥२॥"

भावार्थ—"संसारमें जो बुद्धिकी गंभीरतासे लोकातीत (अलौकिक) मार्गसे मुक्तिको प्राप्त होते हैं, उन अर्हन्तों को मैं प्रणाम करता हूँ।"*

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेखसे नन्दकालमें क्षपणक—दिगम्बर मुनियोंके निर्बाध विहार और धर्मप्रचारका समर्थन होता है, जैसे कि पहले लिखा आचुका है।

'वराहमिहिर संहिता' में भी दिगंबर मुनियोंका

+ HDW., p. 10.
* वेजै०, पृ० ४०-४१

उल्लेख है। उन्हें वहां जिन भगवानका उपासक बताया है† । वराहमिहिरके इस उल्लेखसे उनके समयमें दिगंबर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अर्हंत् भगवानकी मूर्तिको भी वह नग्न ही बताते हैं।‡

कवि दण्डिन् (आठवीं श०) अपने "दशकुमारचरित्" दिगंबर मुनिका उल्लेख 'क्षपणक' नामसे करते हैं; जिससे उनके समयमें नग्नमुनियोंका होना प्रमाणित है।+

'पञ्चतन्त्र' (तन्त्र ४) का निम्न श्लोक उस कालमें दिगंबर मुनियोंके अस्तित्वका द्योतक है × :—

"स्त्रीमुद्रां मकरध्वजस्य जयिनीं सर्वार्थ सम्पत् करीं।
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्या फलान्वेषिणः ॥
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः ।
केचिद्रक्तपटीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥"

"पञ्चतन्त्र" के "अपरीक्षितकारक पञ्चमतन्त्र" की कथा दिगम्बर मुनियोंसे सम्बन्ध रखती है। उससे पाटलिपुत्र

---

† "शाक्यान् सर्वहितस्य शान्ति मनसो नग्नान् जिनानां विदुः"
॥१९।६१॥

‡ "आजानु लम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः ॥४५॥४८॥"
—वराहमिहिर संहिता।

+ वीर, वर्ष २ पृ० ३१७

× पंत० निर्णयसागर प्रेस सं० १९०९ पृ० १६४—JG. XIV. 124.

(पटना) में दिगम्बर धर्मके अस्तित्वका बोध होता है। कथा में एक नाईको क्षपणक विहारमें आकर जिनेन्द्रभगवान्‌की वन्दना और प्रदक्षिणा देते लिखा है। उसने दिगम्बर मुनियों को अपने यहां निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंने आपत्तिकी कि श्रावक होकर यह क्या कहते हो? ब्राह्मणोंकी तरह यहां आमन्त्रण कैसा? दि० मुनि तो आहार बेला पर घूमते हुये भक्त श्रावकके यहां शुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं +। इस उल्लेखसे दिगम्बर मुनियोंके निमन्त्रण स्वीकार न करने और आहारके लिये भ्रमण करनेके नियमका समर्थन होता है। इस तन्त्रमें भी दिगम्बर मुनिको एकाकी, गृहत्यागी, पाणिपात्र भोजी और दिगम्बर कहा है।‡

"प्रबोधचंद्रोदयनाटक" के अङ्क ३ में निम्नलिखित वाक्य दिगम्बर जैन मुनिको तत्कालीन बाहुल्यताके बोधक हैं:—

"सहि पेक्ख पेक्ख एसो गलन्तमल पङ्क पिच्छिलवीहच्छदेहच्छवीउल्लुञ्चि अचिउरो मुक्कवसणवेसदुद्दसणो सिहिसिहदपिच्छआहत्थो इदोज्जेव पडिवहदि।"

भावार्थ—"हे सखि देख देख, यह इस ओर आरहा

+ "क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय.........। 'भोः श्रावक, धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि। किं वयं ब्राह्मणसमाना: यत्र आमन्त्रणं करोषि? वयं सदैव तत्काल परिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः।'.........पंत., पृ० ९-६ व JG. XIV.126—130

‡ 'एकाकीगृहसंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।'

है। उसका शरीर भयङ्कर और मलाच्छन्न है। सिरके बाल लुञ्चित किये हुये है और वह नङ्गा है। उसके हाथमें मोरपिच्छिका है और वह देखने में अमनोज्ञ है।"

इस पर उस सखीने कहा कि—

"आं ज्ञातं मया, महामोहप्रवर्त्तितोऽयं दिगम्बर सिद्धांतः।"

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः क्षपणकवेशो दिगम्बरसिद्धांतः)

भावार्थ—"मैं जान गई! यह मायामोह द्वारा प्रवर्तित दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त है।" (क्षपणकवेषमें दिगम्बर मुनिने वहाँ प्रवेश किया।)*

नाटकके उक्त उल्लेखसे इस बातका भी समर्थन होता है कि दिगम्बर मुनि स्त्रियोंके सम्मुख घरोंमें भी धर्मोपदेशके लिये पहुंच जाते थे।

"गोलाध्याय" नामक ज्योतिष ग्रन्थमें दिगम्बर मुनियों की दो सूर्य्य और दो चन्द्रादि विषयक मान्यताका उल्लेख करके उसका निरसन किया गया है। इस उल्लेखसे 'गोलाध्याय', के कर्त्ताके समयमें दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य प्रमाणित होता है। 'गोलाध्याय' के टीकाकार लक्ष्मीदास दिगम्बर सम्प्रदाय से भाव "जैनों" का प्रकट करते हैं और कहते हैं कि "जैनोंमें दिगम्बर प्रधान थे।"+

---

* प्रबोध चन्द्रोदय नाटक अंक ३—JG., XIV. pp. 46-50.

+(Goladhyaya 3, Verses 8—10)--The naked sectarians and the rest affirm that two suns, two

संस्कृत साहित्यके उपरोक्त उल्लेखोंसे दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व और उनके निर्बाध विहार और धर्मप्रचार करनेका समर्थन होता है।

---

[२१]

दक्षिण भारतमें दिगम्बर जैन मुनि।

"सरसा पयसा रिक्तं याति तुच्छजलेन च।
जिनजन्मादिकल्याणक्षेत्रे तीर्थस्थमाश्रिते ॥४०॥
नाशमेष्यति सद्धर्मो मारचोर मदच्छिदः।
स्थास्यतीह क्वचित्प्रान्ते विषये दक्षिणादिके ॥४१॥"
—श्री भद्रबाहुचरित्र।

> दिगम्बर जैनधर्म दक्षिण भारत में बहना निश्चित है।

दिगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्तने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह गये हैं कि "जलरहित तथा कहीं थोड़े

---

moons and two sets of stars appear alternately; against them I allege this reasoning. How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons, and stars, when you see the revolution of the polar fish (*Ursa Minor*).' The commentator Lakshamidas agree that the Jainas are here meant....& remarks that they are described as 'naked sectarians' etc., because the class of Digambaras is a principal one among these people."—AR., Vol. IX. p. 317.

जलसे भरे हुये सरोवरके देखनेसे यह सच जानो कि जहाँ तीर्थङ्कर भगवानके कल्याणादि हुये हैं ऐसे तीर्थस्थानोंमें कामदेवके मदका छेदन करने वाला उत्तम जिनधर्म नाशको प्राप्तहोगा तथा कहीं दक्षिणादि देशमें कुछ रहेगा भी*!" और दिगम्बराचार्यकी यह भविष्यद्वाणी क़रीब क़रीब ठीक ही उतरी है। जब कि उत्तर भारतमें कभी २ दिगम्बर मुनियोंका अभाव भी हुआ, तब दक्षिण भारतमें आजतक बराबर दिगम्बर मुनि होते आयेहैं। और दिगंबर जैनोंके श्री कुन्दकुन्दादि बड़े २ आचार्य दक्षिण भारतमें ही हुये हैं। अतः दक्षिण भारतको दिगम्बर मुनियोंका गढ़ कहना बेजा नहीं है।

ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियों का सद्भाव किस ज़माने से हुआ है? जैनशास्त्र बतलाते हैं कि इस कल्पकालमें कर्मभूमिकी आदिमें श्री ऋषभदेवजीने सर्व प्रथम धर्मका निरूपण किया था और उनके पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारतके शासनाधिकारी थे। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। भगवान् ऋषभदेव ही सर्वप्रथम वहाँ धर्मोपदेश देते हुये पहुँचे थे†। वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उनके समयमें ही बाहुबलि भी राजपाट छोड़कर दिगम्बर मुनि होगये थे। इन दिगम्बर मुनि

---

* भद्र०, पृ० ३३

† आदिपुराण

की विशालकाय नग्न मूर्तियां दक्षिण भारतमें अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। श्रवणबेलगोलमें स्थित मूर्ति ५७ फीट ऊंची अति मनोज्ञ है, जिसके दर्शन करने देश-विदेशके यात्री आते हैं। कारकल—वेनूर आदि स्थानोंमें भी ऐसी ही मूर्तियां हैं। दक्षिण भारतमें बाहुबलि मुनिराजकी विशेष मान्यता है।‡

अन्य तीर्थंकरोंका दक्षिण भारतसे सम्बन्ध

ऋषभदेवके उपरान्त अन्य तीर्थंकरोंके समयमें भी दिगम्बर धर्मका प्रचार दक्षिण भारतमें रहा था। तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजीके तीर्थमें हुये राजा करकण्डुने आकर दक्षिण भारतके जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावणके वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने वन्दना की थी+। वहीं बाहुबलिकी और श्रीपार्श्वनाथजी की मूर्तियां थीं जिनको रामचन्द्रजीने लङ्कासे लाकर यहां स्थापित किया था×। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीरने भी अपने पुनीत चरणोंसे दक्षिण भारतको पवित्र किया था। मलयपर्वतवर्ती हेमांगदेश में जब वीर प्रभु पहुँचे थे तो वहां का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्बर मुनि होगया था+ । इस प्रकार एक

‡ जैशिसं०, भूमिका पृ० १७-२२
+ करकण्डु चरित्र संधि ५
× जैशिसं०, भूमिका पृ० २६
+ भमबु०, पृष्ठ ६६

अत्यन्त प्राचीनकालसे दिगम्बर मुनियोंका सद्भाव दक्षिण भारतमें है।
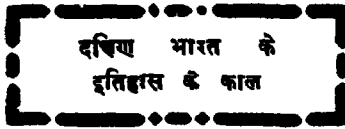
दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक इतिहासवेत्ता दक्षिण भारतका इतिहास ईसवी पूर्व छठी या चौथी शताब्दिसे आरम्भ करते हैं और उसे निम्न प्रकार छै भागों में विभक्त करते हैं *:—

(१) प्रारम्भिक काल—ईस्वी ५ वीं शताब्दि तक;

(२) पल्लवकाल—ई० ५ वीं से ६ वीं शताब्दि तक;

(३) चोल अभ्युदय काल—ई० ६ वींसे १४ वीं शताब्दि तक;

(४) विजयनगर साम्राज्यका उत्कर्ष—१४ वीं से १६ वीं श०

(५) मुसलमान और मरहट्टा काल—१६ वीं से १८ वीं श०

(६) ब्रिटिश काल—१८ वीं से १६ वीं श० ई०

दक्षिण भारतके उत्तर सीमावर्ती प्रदेशके इतिहासके छै भाग इस प्रकार हैं—

(१) आन्ध्र काल—ई० ५ वीं श० तक

(२) प्रारम्भिक चालुक्य काल—ई० ५ वींसे ७ वीं श० और राष्ट्रकूट ७ वीं से १० वीं श०

---

* SAI., p. 31.

(३) अन्तिम चालुक्य काल—ई० १० वीं से १४ वीं श०
(४) विजयनगर साम्राज्य
(५) मुसलमान—मरहट्टा
(६) ब्रिटिश काल।
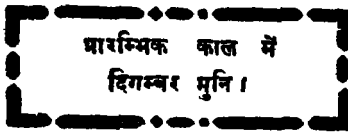
प्रारम्भिक काल में दिगम्बर मुनि।

अच्छा तो उपरोक्त ऐतिहासिक कालोंमें दिगम्बर जैन मुनियोंके अस्तित्वको दक्षिण भारतमें देख लेना चाहिये। दक्षिण भारतके "प्रारम्भिक काल"में चेर, चोल, पाण्ड्य—यह तीन राजवंश प्रधान थे†। सम्राट् अशोकके शिलालेखमें भी दक्षिण भारतके इन राजवंशों का उल्लेख मिलता है‡। चेर, चोल और पाण्ड्य—यह तीनों ही राजवंश प्रारम्भसे जैनधर्मानुयायी थे×। जिस समय करकण्डु राजा सिंहल द्वीपसे लौट कर दक्षिण भारत—द्राविड़ देशमें पहुँचे तो इन राजाओंसे उनकी मुठभेड़ हुई थी। किन्तु रणक्षेत्रमें जब उन्होंने इन राजाओं के मुकुटोंमें जिनेन्द्र भगवान्‌की मूर्त्तियां देखीं तो इनसे सन्धि करली+।

---

† SAI., p. 33 ‡ त्रयोदश शिलालेख

× "Pandya Kingdom can boast of respectable antiquity. The prevailing religion in early times in their Kingdom was Jain creed."
—मजैस्मा०, पृ० १०५

+ "तहि अत्थि विकितिय दिण्णराउ-संचल्लिव ताकरकण्डु राउ।
ता दिविडदेसुमहि पत्तु जमन्तु—संपत्तक तहिं मकुडवहन्तु॥

कलिङ्गचक्रवर्ती ऐलखारवेल जैन थे। उनकी सेवामें इन राजाओं में से पाण्ड्यराजने स्वतः राज-भेंट भेजी थी ×। इससे भी इन राजाओंका जैनहोना प्रमाणित है, क्योंकि एक श्रावक का श्रावकके प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। और जब ये राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियोंको आश्रय देना प्राकृत आवश्यक है।

पाण्ड्यराज उग्रपेरूवलूटी (१२८-१४० ई०) के राजदरबारमें दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तामिलग्रन्थ "कुरल" प्रगट किया गया था‡। जैन कथाग्रन्थोंसे उस समय दक्षिण भारतमें अनेक दिगम्बर मुनियोंका होना प्रगट है। 'करकण्डु चरित्' में कलिङ्ग, तेर, द्रविड़ आदि दक्षिणावर्ती देशोंमें दिगम्बर मुनियोंका वर्णन् मिलता है। भ० महावीरने सङ्घसहित इन देशोंमें विहार किया था, यह ऊपर लिखा जा चुका है। तथा मौर्यचन्द्रगुप्तके समय श्रुतकेवली भद्रबाहु का सङ्घ सहित दक्षिण भारतको आना इस बातका प्रमाण है कि दक्षिण भारतमें उनसे पहले दिगम्बर जैनधर्म विद्यमान था। जैनग्रन्थ "राजावली कथा"में वहां दिगम्बर जैन मन्दिरों और

तहिं घोडे चोर पंडिय णिवाइं—केण विलणइते मिलीयाहि।"
"करकण्डए' चरियाते सिरमो सिरमउड मणिय वरकोहिं तहो।
मउड महि देखिवि जिणपणिव करकण्डवोजायउ वहुदु दुहु ॥१०॥
—करकण्डुचरित्र सन्धि ८

× JBORS., III p. 446.

‡ मजैस्मा०, पृ० १०५

दिगम्बर मुनियोंके होनेका वर्णन मिलता है। बौद्धग्रन्थ 'मणि-मेखलै' में भी दक्षिण भारतमें ईस्वीकी प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियोंके होनेका उल्लेख मिलता है।*

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वीकी पहली शताब्दिमें पश्चिम और दक्षिण भारत दिगम्बर जैनधर्मके केन्द्र थे। श्रीधर सेनाचार्यजीका संघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। उनके पास आगमग्रन्थोंको अवधारण करने के लिये दो तीक्ष्ण-बुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आये थे और उपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरामें चतुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेखसे उस समय दक्षिण मथुराका दिगम्बर मुनियोंका केन्द्र होना सिद्ध है। †

"नाल दियार" और दिगम्बर मुनि।

तामिल जैनकाव्य "नालदियार", जो ईस्वी पांचवीं शताब्दिकी रचना है, इस बात का प्रमाण है कि पाण्डयराजका देश प्राचीन कालमें दिगम्बर मुनियोंका आश्रय-स्थान था। स्वयं पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियोंके भक्तथे। "नालदियार" की उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक दफ़ा उत्तर भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा। उससे बचनेके लिये आठ हज़ार दिगम्बर मुनियोंका संघ पाण्ड्यदेश में आ रहा। पाण्ड्यराज उन मुनियोंकी विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अच्छे दिन आये तो

* SSIJ., pp. 32—33. † श्रुता०, पृ० १६-२०

इस सङ्घने उत्तर भारतकी ओर लौट आना चाहा; किन्तु पाण्ड्यराज उनकी सत्संगति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आख़िर उस मुनिसङ्घ का प्रत्येक साधु एक एक श्लोक अपने अपने आसन पर लिखा छोड़कर विहार कर गये। अब ये श्लोक एकत्र किये गये तो वह संग्रह एक अच्छा खासा काव्यग्रन्थ बन गया। यही "नालदियार" था ‡। इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्यदेश उस समय दिग० जैनधर्मका केन्द्र था और पाण्ड्यराज कलभ्रवंशके सम्राट् थे। यह कलभ्रवंश उत्तरभारत से दक्षिणमें पहुंचा था और इस वंशके राजा दिगम्बर मुनियों के भक्त और रक्षक थे + ।

गङ्गवंशके राजा और दिगम्बर मुनिगण।

ईस्वी दूसरी शताब्दिमें मैसूर में गङ्गवंशी क्षत्रीराजा माधव कोंगुणिवर्मा राज्य कर रहे थे ×। उनके गुरु दि० जैनाचार्य सिंहनन्दि थे। गङ्गवंशकी स्थापनामें उक्त आचार्यका गहरा हाथ था। शिलालेखोंसे प्रकट है कि इक्ष्वाकु (सूर्यवंश) के राजा धनञ्जयकी सन्ततिमें एक गंगदत्त नामका राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नामसे इस वंश का नाम 'गङ्ग' वंश पड़ा था। इस गङ्गवंशमें एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका झगड़ा उज्जैनके राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारतकी ओर चला गया था।

‡ SSIJ., p. 91 + मजैस्मा०, भूमिका पृ० ८-९
× स्मा०, परिचय, पृ० १६५

उसके दो पुत्र दद्दिग और माधव भी उसके साथ गये थे। दक्षिण में पेरूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट काणूरगणके आचार्य सिंहनन्दिसे हुई; जिन्होंने उन्हें निम्नप्रकार उपदेश दिया था :—

"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग करोगे, यदि तुम जिन-शासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्रीका ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अधमोंका संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यक्ता रखने वालोंको दान न दोगे और यदि तुम युद्धमें भाग जाओगे तो तुम्हारा वंश नष्ट होजायगा।"*

दिगम्बराचार्यके इस साहस बढ़ाने वाले उपदेशको दद्दिग और माधवने शिरोधार्य किया और उन आचार्यके सहयोगसे वह दक्षिण भारतमें अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। उपरान्त इस वंशके सभी राजाओंने जैन-धर्मका प्रभाव बढ़ानेका उद्योग किया था। दिगम्बर जैनाचार्य की कृपासे राज्य पा लेनेकी याददाश्तमें इन्होंने अपनी ध्वजा में "मोरपिच्छिका" का चिन्ह रक्खा था, जो दिगम्बर मुनियों के उपकरणोंमें से एक है।

गङ्गवंशी अविनीत कोंगुणी (सन् ४२५—४७८) ने पुन्नाट १०००० में जैनमुनियोंको भूमिदान दिया था। गङ्गवंशी दुर्विनीतिके गुरू 'शब्दावतार' के कर्त्ता दिगम्बराचार्य श्री पूज्यपाद थे। †

---

* मजैस्मा०, पृ० १४६-१४७ † मजैस्मा०, पृ० १४६

**कादम्ब राजागण
दिग० मुनियों के रक्षक थे**
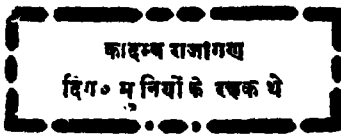
महाराष्ट्र और कोन्कन देशोंकी ओर उस समय कादम्बवंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। यह वंश (१) गोआ और (२) बनवासी, ऐसे दो शाखाओंमें बंटा हुआ था और इसमें जैनधर्मको मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरुओंकी विनय कादम्बराजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि:—

"Kadamba kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism; as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups. Numerous sects of Jaina priests, such as the Yapiniyas, the Nirgranthas and the Kurchakas are found living at Palasika. (IA. VII. 36—37). Again Svetpatas and Aharashti are also mentioned. (Ibid. VI. 31) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks. Four Jaina Mss. named Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala written by Jaina *Gurus* Virasena and Jinasena living at Banavase during the rule of the early Kadambas were recently discovered."

—QJMS. XXII. 61—62

अर्थात्—"मध्यकालके मृगेशसे हरिवर्मा तक कदम्ब-

वंशी राजागण जैनधर्मके प्रभावसे अपने को बचा न सके। 'महान् अर्हतदेव' को नमस्कार करते और जैनसाधुसंघों को खूब दान देते थे। जैन साधुओंके अनेक संघ जैसे यापनीय * निर्ग्रन्थ† और कूर्चक‡ कादम्बोंकी राजधानी पालाशिकमें रह रहे थे। श्वेतपट+ और अहराष्टि× संघोंके वहां होनेका उल्लेखभी मिलता है। इस तरह पालाशिक और बनवासी सबल जैन साधुओंसे वेष्टित मुख्य जैनकेन्द्र थे। दिगम्बर जैन गुरु वीरसेन और जिनसेन ने जिन जयधवल, विजय-धवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रंथों की रचना बनवासीमें रहकर प्रारंभिक कदम्ब राजाओंके समयमें की थी, उन चारों ग्रंथोंकी प्रतियां हालही में उपलब्ध हुई हैं।"

प्रो० शेषागिरि राव इन प्रारंभिक कदम्बोंको भी जैन-धर्मका भक्त प्रगट करते हैं। उनके राज्यमें दिगम्बर जैन मुनियोंको धर्मप्रचार करनेकी सुविधायें प्राप्त थीं। ÷ इस प्रकार कदम्बवंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियोंका समुचित सम्मान किया गया था।

---

* यापनीय संघके मुनिगण दिगम्बर भेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री-मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार

† 'निग्रंन्थ'=दिगम्बर मुनि

‡ 'कूर्चक' किन जैनसाधुओं का द्योतक है यह प्रगट नहीं है !

+ श्वेतपट=श्वेताम्बर

× अहराष्टि संभवतः दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद 'अहीक' शब्द से इसका निकास हो।

÷ SSIJ., pt. II p. 69--72

पल्लवकाल में दिगम्बर मुनि।

एक समय पल्लववंशके राजा भी जैनधर्मके रक्षक थे। सातवीं शताब्दिमें जब ह्वानसांग इस देशमें पहुँचा तो उसने देखा कि यहां दिगम्बर जैन साधुओं (निर्ग्रन्थों) की संख्या अधिक है। पल्लववंशके शिवस्कंदवर्मा नामक राज्यके गुरु † दिगंबराचार्य कुन्दकुन्द थे। उपरान्त इस वंशका प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्म्मन् पहले जैन था और दिगम्बर साधुओंकी विनय करता था +।

चोलदेश में दिगम्बर मुनि।

चोलदेशमें भी उस चीनी यात्री ने दिगम्बरधर्मको प्रचलित पाया था। × मलकूट (पाण्ड्यदेश) में भी उसने नंगे जैनियोंको बहुसंख्यामें पाया था +। सातवीं शताब्दिके मध्यभागमें पाण्ड्यदेशका राजा कुण या सुन्दर पाण्ड्य दिगम्बर मुनियोंका भक्त था। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री अमलकीर्ति थे * और उसका विवाह एक चोल राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शैव थी। उसीके संसर्ग से सुन्दर पाण्ड्य भी शैव हो गया था। ‡

---

† P. S. Hist. Intro., p. XV

+ EHI. p. 495

× हुभा०, पृ० ५७०

+ हुभा०, पृ० ५७४—"The nude Jainas were present in multitudes."—EHI. p. 473

* ADJB. p. 46 ‡ EHI. p. 475

दशवीं श० तक प्रायः सब राजा दिग० जैनधर्मको आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारतमें दिगम्बर जैनधर्मकी मान्यता ईस्वी दसवीं शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्मका उद्योत करते थे। उसी का परिणाम है कि दक्षिण भारतमें आजभी दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है। मि० राइस इस विषयमें लिखते हैं कि:—

"For more than a thousand years after the begining of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese people. The Ganga Kings of Talkad, the Rashtra Kuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains. The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism. The Pandya Kings of Madura were Jainas; and Jainism was dominant in Gujerat and Kathiawar"*

भावार्थ—"ईस्वी सन्‌के प्रारंभ होनेसे एक हज़ारसे ज़्यादा वर्षों तक कन्नड़ देशके अधिकांश राजाओंका मत जैनधर्म था। तलकांडके गङ्ग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मणमतको मानने वाले जो कादम्बराजा

* HKL., p. 16

थे उन्होंने और प्रारंभके चालुक्योंने जैनधर्मके प्रति उदारता का परिचय दिया था। मदुराके पाण्ड्यराजा जैन ही थे और गुजरात तथा काठियावाड़में भी जैनधर्म प्रधान था।"

आन्ध्र और चालुक्य काल में दिगम्बर मुनि।

आन्ध्रवंशी राजाओंने जैनधर्म को आश्रय दिया था, यह पहले लिखा जा चुका है। चोल और चालुक्य अभ्युदयकालमें दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था। चालुक्य राजाओंमें पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदिने दिगम्बर विद्वानोंका सम्मान किया था। विक्रमादित्यके समयमें विजय पंडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रतिभाशाली वादीथे। इस राजाने एक जैनमंदिर का जीर्णोद्धार कराया था*। चालुक्यराज गोविन्द तृतीयने दिगम्बर मुनि अर्ककीर्तिका सम्मान किया और दान दियाथा। वह मुनि ज्योतिष विद्यामें निपुण थे†। वेङ्गिराज चौलुक्य विजयादित्य ६ म के गुरु दिगम्बराचार्य अर्हन्नन्दि थे। इन आचार्यकी शिष्या चामेकाम्बाके कहने पर राजाने दान दिया था‡। सारांश यह कि चालुक्यराज्यमें दिगम्बर मुनियों और विद्वानोंने निरापद हो धर्मोद्योत किया था।

राष्ट्रकूटकालमें दिगम्बर मुनि।

राष्ट्रकूट अथवा राठौर राजवंश जैनधर्मका महान् आश्रयदाता था। इस वंशके कई

---

* SSIJ., pt. I p. 111

† ADJB, p. 97 विको०, भा०५ पृ० ७६

‡ ADJB., p. 68

राजाओंने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिस के कारण जैनधर्मकी विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिग्गज विद्वान् दिगम्बर मुनि विहार और धर्म-प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रंथरत्न आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवंशपुराण", श्री गुणभद्रा-चार्यका "उत्तर पुराण", श्रीमहावीराचार्यका "गणितसार संग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओंके समयकी रचनायें हैं+। इन राजाओंमें अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरबके लेखकोंनेकी है और उसे संसारके श्रेष्ठ राजाओं में गिना है×। वह दिगम्बर जैनाचार्योंका परमभक्त था।

सम्राट् अमोघ वर्ष दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वयं राज-पाठ त्याग कर दिगम्बर मुनिका व्रत स्वीकार किया था ÷। उसका रचा हुआ 'रत्नमालिका' एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे; जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोकमें कहा गया है कि वे श्री जिन सेनके चरणोंमें नतमस्तक होते थे :—

+ SSIJ., pt. I pp. 111—112

× Elliot., Vol. I pp. 3-24—"The greatest king of India is the Balahara, whose name imports 'King of Kings'."—Ibu Khurdabh. व भाप्रारा०, भाग १ पृ० ११-१५

÷ 'रत्नमालिका' में अमोघवर्षने इस बातको इन शब्दों में स्वीकार किया है :—

"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृतिः॥"

"यस्य प्रांशुन खांशुजाल विसरद्धारान्तराविर्भव—
त्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥"

अर्थात्—"जिन श्री जिनसेनके देदीप्यमान नखोंके किरण समूहसे फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके चरणकमलकी शोभा को धारण करते थे उनकी रज से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर लगे हुए रत्नोंकी कांति पीली पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपको पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्थाका सदा स्मरण किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिन- सेनाचार्य सदा संसार का मंगल करें।"

अमोघवर्ष के राज्य काल में एकान्तपक्षका नाश होकर स्याद्वाद मतकी विशेष उन्नति हुई थी। इसीलिये दिगम्बराचार्य श्री महावीर "गणितसारसंग्रह" में उनके राज्यकी वृद्धिकी भावना करते हैं *। किन्तु इन राजा के बाद राष्ट्रकूट राज्यकी शक्ति छिन्न भिन्न होने लगी थी। यह बात गंगवाडीके जैनधर्मानुयायी गङ्गराजा नर- सिंहको सहन नहीं हुई। उन्होंने तत्कालीन राठौर राजा की सहायता की थी और राठौर राजा इन्द्र चतुर्थको पुनः राज्य- सिंहासन पर बैठाया था। राजा इन्द्र दिगम्बर जैनधर्म

---

* "विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्द्धतां तस्य शासनं ॥६॥"

का अनुयायी था और उसने सल्लेखना व्रत धारण किया था * ।

गङ्गराजा और सेनापति चामुण्डराय ।

इस समय गंगवाडी के गङ्गराजाओंने जैनोत्कर्ष के लिये खास प्रयत्न किया था। रायमल्ल सत्यवाक्य और उनके पूर्वज मारसिंह के मन्त्री और सेनापति दिगम्बर जैन धर्मानुयायी वीरमार्तण्ड राजा चामुण्डरायथे। इस राजवंशकी राजकुमारी पनिवव्वेने आर्यिकाके व्रत धारण कियेथें † । श्री अजितसेनाचार्य और नेमिचन्द्राचार्य इन राजाओंके गुरूथे। चामुण्डरायजीके कारण इन राजाओं द्वारा जैनधर्मकी विशेष उन्नति हुई थी । दिगंबर मुनियोंका सर्वत्र आनन्दमई विहार होता था‡ ।

कलचूरि वंशके राजा दिगम्बर मुनियों के बड़े संरक्षक थे ।

किन्तु गङ्गोंका साहाय्य पाकर भी राष्ट्रकूट वंश अधिक टिक न सका । और पश्चिमीय चालुक्य प्रधानता पा गये । किन्तु यह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके—उनको कलच्चूरियों ने हरा दिया। कलच्चूरी वंशके राजा जैनधर्मके परम भक्त थे । इनमें विज्जलराजा प्रसिद्ध और जैनधर्मानुयायी था । इसी राजाके समयमें बासवने "लिंगायत" मत स्थापित कियाथा ।

---

* SSIJ. pt. I p. 112

† मजैस्मा० पृ० १५०

‡ वीर, वर्ष ७ अङ्क १-२ देखो

किन्तु विज्जल राजाकी दिगम्बर जैनधर्मके प्रति अटूट भक्ति के कारण वासव अपने मतका बहुप्रचार करनेमें सफल न हो सका था। आखिर जब विज्जलराज कोल्हापुरके शिलाहार राजाके विरुद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस वासवने धोखे से उन्हें विष देकर मार डाला था + । और तब कहीं लिंगायत मतका प्रचार हो सका था। इस घटनासे स्पष्ट है कि विज्जल दिगम्बर मुनियोंके लिये कैसा आश्रय था!

होयसालवंशी राजा और दिगम्बर मुनि।

मैसोरके होयसाल वंशके राजागण भी दिगम्बर मुनियों के आश्रयदाता थे। इस वंशकी स्थापनाके विषयमें कहा जाता है कि साल नामका एक व्यक्ति एक मंदिरमें एक जैन यतिके पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेरने उन साधुपर आक्रमण किया। सालने शेरको मारकर उनकी रक्षा की और वह 'होयसाल' नामसे प्रसिद्ध हुआ था× । उपरान्त उन्हीं जैनसाधुका आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्यकी नींव जमाई थी, जो खूब फला फूला था। इस वंशके सबही राजाओंने दिगम्बर मुनियोंका आदर किया था, क्योंकि वे सब जैनथे +। होयसाल राजा विनयदित्यके गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे* । इन राजाओंमें विट्टिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन

+ मजैस्मा०, पृ० १४४-१४६

× SSIJ., pt. I p. 115

+ मजैस्मा०, पृ० १४६-१४७ * SSIJ., pt. I p. 115

राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैनधर्मका दृढ़ श्रद्धानी था। उसकी रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्रकी शिष्या थी‡। किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैष्णवधर्म की अनुयायी थी। एक रोज़ राजा इस रानीके साथ राजमहल के झरोखेमें बैठा हुआ था कि सड़क पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजाको बहकाने के लिये यह अवसर अच्छा समझा। उसने राजासे कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथसे भोजन करादो"। राजा दिगम्बर मुनियोंके धार्मिक नियमको भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बड़ी बात है"। अपने हीन अङ्गका उसे खयाल न रहा। दिगम्बर मुनि अङ्ग हीन, रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनिमहाराज को पड़गाह लिया। मुनिराज अंतराय हुआ जानकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ़ गया और वह वैष्णव धर्ममें दीक्षित होगया*। किन्तु उसके वैष्णव हो जानेपर भी दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य उसके राज्यमें बना रहा। उसकी अग्रमहृषी शान्तलदेवी अबभी दिगम्बर मुनियोंकी भक्त थी और उसके सेनापति तथा प्रधान मंत्री गंगराजभी दिगम्बर मुनियोंके परम सेवक थे। उनके संसर्गसे विष्णुवर्द्धनने अन्तिम समयमें भी दिगम्बर

---

‡ Ibid. p. 116

* AR., Vol. IX p.266

मुनियोंका सम्मान किया और जैन मन्दिरों को दान दिया था† । उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वाराभी दिगम्बर मुनियोंका सम्मान हुआ था । नरसिंहका प्रधानमंत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियोंका परम भक्त था । उस समय दक्षिण भारत में चामुण्डराय, गङ्गराज और हुल्ल दिगम्बरधर्मके महान् प्रभावक और स्तंभ समझे जाते थे ‡ । बल्लालराय होयसालके गुरू श्री वासपूज्य व्रती थे+ । राजा पुनिस होयसालके गुरू अजितमुनि थे । ×

विजयनगर साम्राज्य में दिगम्बर मुनि ।

विजयनगर साम्राज्यकी स्थापना आर्य-सभ्यता और संस्कृतिकी रक्षाके लिये हुई थी । वह हिन्दू संगठनका एक आदर्श था । शैव-वैष्णव-जैन—सबही कंधे से कंधा जुटा कर धर्म और देश रक्षाके कार्यमें पगे हुए थे । स्वयं विजयनगर सम्राटोंमें हरिहर द्वितीय और राजकुमार उग दिगम्बर जैनधर्ममें दीक्षित होकर दिगंबर मुनियोंके महान् आश्रयदाता हुये थे+ । दिगंबर मुनि श्री धर्मभूषणजो राजा देवरायके गुरू थे तथा आचार्य विद्यानन्दिने देवराज और कृष्णराय नामक राजाओं के दरबारमें वाद किया था तथा विलंगी और कारकलमें दिगंबर धर्मकी रक्षा की थी ।*

† मजैस्मा० प्रस्तावना पृ० ११ ‡ Ibid.

+ मजैस्मा०, पृ० १६२ × ADJB., p. 31

+ SSIJ., pt. I p. 118 * मजैस्मा०, पृ० १६३

मुस्लिम काल में दिगम्बर मुनि।

मुस्लिमकाल में देश त्रसित और दुःखित हो रहा था। आर्यधर्म संकटाकुल थे। किन्तु उस परभी हम देखते हैं कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक हैदरअलीने श्रवणबेलगोलकी नग्नदेवमूर्त्ति श्री गोमट्टदेवके लिये कई गाँवोंकी जागीर भेंटकी थी †। उस समय श्रवणबेलगोलके जैनमठमें जैनसाधु विद्याध्ययन कराते थे। दिगंबराचार्य विशालकीर्तिने सिकन्दर और वीरु पक्षरायके सामने वाद किया था।‡

मैसोर के राजा और दिगम्बर मुनि

मैसोरके ओडयरवंशी राजाओंने दिगंबर जैनधर्मको विशेष आश्रय दिया था और वर्तमान शासकभी जैनधर्म पर सदय हैं। सत्रहवीं शताब्दि में भट्टाकलङ्क देव नामक दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैनमठके गुरूके शिष्य और महावादी थे। उन्होंने सर्वसाधारणमें वाद करके जैनधर्मकी रक्षा की थी। वह संस्कृत और कन्नड़के विद्वान् तथा छै भाषाओंके ज्ञाता थे+। जैनरानी भैरवदेवीने मणिपुरका नाम बदलकर इनकी स्मृतिमें 'भट्टाकलङ्कपुर' रक्खा था—यही आजकलका भटकल है ×। श्री कृष्णराय और

† AR., Vol. IX. 267 & SSIJ., pt. I p. 117

‡ मजैस्म०, पृ० १६३

\+ HKL., p. 83

× हजैश०, भा० १ पृ० १०

अच्युतराय राजाके सम्मुख श्री दिगंबर मुनि नेमिचन्द्रने वाद किया था। ÷

पण्डाईवेड्डू राजा और दिगम्बर मुनि

पुण्डी (उत्तर अर्काट) के तीसरे ऋषभदेव मंदिरके विषयमें कहा जाता है कि पण्डाईवेड्डू राजाकी लड़कीको भूतबाधा सताती थी। उसी समय कुछ शिकारियोंके पास एक दिगंबर मुनिने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनिजी ने वह मूर्त्ति उनसे लेली। इन्हीं शिकारियोंने राजासे मुनिजी की प्रशंसा की। उसपर राजाने मुनिजी की वन्दना की और उनसे भूतबाधा दूर करनेका अनुरोध किया। मुनिजी ने लड़की की भूतबाधा दूर करदी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त मंदिर बनवाया। *

दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

दक्षिण भारतमें दो सौ वर्ष पहले कई एक दिगंबर मुनियोंका सद्भाव था। उनमें मन्नरगुडीके पर्णकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरोंकी प्रतिष्ठा कराई थी। † उनके अतिरिक्त संधि महा मुनि और पण्डित महामुनिभी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने चिताम्बूर नामक ग्राम

÷ मजैस्मा०, पृ० १६३

* दिजैडा०, मृ० ८५७

† Ibid, p. 864

में वहाँ के ब्राह्मणोंके साथ वाद किया था और जैनधर्म का डएका बजाया था। तब से वहाँ पर एक जैन विद्यापीठ स्थापित है*। सचमुच दक्षिण भारतमें एक अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियोंका सद्भाव रहा है। प्रो० ए० एन० उपाध्याय इस विषयमें लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमितरूपमें दिगम्बर मुनि होते आये हैं। पिछले सौ वर्षों में सिद्धप्प आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस ओर हो गुज़रे हैं; किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नहीं है।

महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि।

दक्षिण भारतकी तरह ही महाराष्ट्रदेशभी जैनधर्मका केन्द्र था† वहाँ अब तक दिगंबर जैनोंकी बाहुल्यता है। कोल्हापुर, बेलगाम आदि स्थान जैनोंकी मुख्य बस्तियाँ थीं। कहते हैं एक मरतबा कोल्हापुरमें दिगंबर मुनियोंका एक बृहत् सङ्घ आकर ठहरा था। राजा और रानीने भक्तिपूर्वक उसको वन्दनाकी थी। दैवयोग से सङ्घ जहाँ पर ठहरा था वहाँ आग लग गई। मुनिगण उसमें भस्म होगये। राजाको बड़ा परिताप हुआ। उसने उनके स्मारकमें १०८ दि० मन्दिर बनवाये। सङ्घ में १०८ ही दिगम्बर मुनि थे‡। इस घटनासे महाराष्ट्रमें एक समयमें दिगंबर मुनियोंकी बाहुल्यता

---

* दिजैडा०, पृष्ट ८५६

† Jainism was specially popular in the Southern Maratha country." EHI., p. 444

‡ बंप्राजैस्मा०, पृ० ७६

का पता चलता है। सचमुच महाराष्ट्रके रट्ट,चालुक्य, शिलाहार आदि वंशके राजा दिगंबर जैनधर्मके पोषक थे; और यही कारण है कि वहां दिगंबर मुनियोंका बड़ी संख्यामें विहार हुआथा। अठारहवीं शताब्दिमें हुये दो दिगंबर मुनियों का पता चलता है। मराठी एक कवि जिनदासके गुरु विद्वान् दिगंबराचार्य श्री उज्जंतकीर्त्ति थे। दूसरे महतिसागर जी थे। उन्होंने स्वतः क्षुल्लकवत् दीक्षा ली थी। उपरान्त देवेन्द्र कीर्ति भट्टारकसे विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की थी। वन्हाड़देश में उन्होंने खूब धर्मप्रभावनाकी थी। गूजरोंको उन्होंने जैनी बनायाथा। दही गांव उनका समाधिस्थान है, जहाँ सदा मेला लगता है। उनके रचे हुए ग्रन्थभी मिलते हैं। (मजइ० पृ० ६५—७२)

शाके ११२७ में कोल्हापुरके अजरिका स्थानमें त्रिभुवनतिलक चैत्यालयमें श्रीविशालकीर्ति आचार्यके श्री सोमदेवाचार्यने ग्रंथ रचना की थी।

दक्षिण भारतके प्रसिद्ध दि० जैनाचार्य।
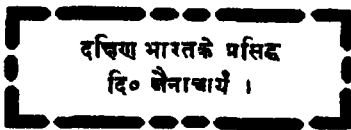
दिगंबर जैनियोंके प्रायः सब ही दिग्गज विद्वान् और आचार्य दक्षिणभारत में ही हुये हैं। उन सबका संक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहाँ संभव नहीं है; किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगंबराचार्योंका वर्णन यहां पर देदेना इष्ट है। अङ्ग-ज्ञानके ज्ञाता दिगंबराचार्योंकेउपरान्त जैनसङ्घमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यका नाम प्रसिद्ध है। दिगंबर जैनोंमें उनकी मान्यता विशेष है। वह महातपस्वी और

बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारतके अधिवासी होने परभी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर आकर श्वेतांबरोंसे वाद किया था + । तामिल साहित्यका नीतिग्रन्थ कुरल उन्हींकी रचना थी × । उन और उन्हींके समान अन्य दिगंबराचार्योंके विषयमें प्रो० रामास्वामी ऐयंगर लिखते हैं:—

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain Guru, 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by *Rajas*, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet'. Uma Svami, the compiler of *Tattvartha Sutra*, Griddhrapinchha, and his disciple Balakapinchha follow. Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the palace of the three worlds filled with the all meaning Syadvada'. This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable predominance, in the early Rashtrakuta period. Jain tradition assigns him Saka 60 or 138 A. D..................He was a great Jaina missionary who tried to spre-

+ दिजैदा०, पृ० ७६५

× SSIJ., I. pp. 40—44 & 89

ad far and wide Jaina doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects wherever he went. Samantabhadra's appearance in South India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature.........After Samantabhadra a large number of Jain *Munis* took up the work of proselytism. The more important of them have contributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affairs. There was, for example, Simhanandi, the Jain sage, who, according to tradition, founded the state of Gangavadi. Other names are those of Pujyapada, the author of the incomparable grammar, *Jinendra Vyakarana* and of Akalanka who, in 788 A. D., is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India."—SSIJ., pt. I pp. 29-31

भावार्थ—"पहले ही महान् जैनगुरु यतीन्द्र कुन्दका नाम मिलता है जो राजाओंके प्रति निस्पृहता दिखाते हुये अधर चलते थे। 'तत्त्वार्थ सूत्र' के कर्त्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ

और उनके शिष्य बलाकपिच्छ उनके बाद आते हैं। तब समन्तभद्रका नाम दृष्टि पड़ता है जो सदा भाग्यवान् रहे और जिनकी स्याद्वादवाणी तीन लोकको प्रकाशमान् करती थी। यह समन्तभद्र प्रारंभिक राष्ट्रकूट कालके अनेक प्रसिद्ध दिगंबर मुनियोंमें सर्व प्रथम थे। उनका समय जैनमतानुसार सन् १३८ ई० है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होंने चहुँओर जैनसिद्धान्त और शिक्षाका प्रचार किया और उन्हें कहीं भी किसी विधर्मी संप्रदायके विरोधको सहन न करना पड़ा। उनका प्रादुर्भाव दक्षिण भारतके दिगंबर जैन इतिहासके लिये ही युगप्रवर्तक नहीं है, बल्कि उससे संस्कृत साहित्यमें एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्रके बाद बहुसंख्यक जैन साधुओंने अजैनोंको जैनी बनानेका कार्य किया था। उनमें से प्रसिद्ध साधुओंने जैनसंसारको साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत बनायाथा। उदाहरणतः जैनाचार्यसिंहनन्दिने गङ्गवाड़ी का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्योंमें पूज्यपाद, जिनकी रचना अद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकलङ्क देव हैं जिन्होंने कांची के हिमशीतल राजाके दरबारमें बौद्धों को वादमें परास्त करके उन्हें दक्षिण भारतसे निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी—श्री कुन्दकुन्दाचार्यके उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो० सा० का यह प्रकटकरना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि० सं० ७६ है। गुजरात

प्रान्तके गिरिनगरमें जब यह मुनिराज विहार कर रहे थे और एक द्वैपायक नामक श्रावकके घर पर उसकी अनुपस्थितिमें आहार लेने गये थे, तब वहां पर एक अशुद्ध सूत्र देखकर उसे शुद्ध कर आये थे। द्वैपायकने जब घर आकर यह देखा तो उसने उमास्वामीसे "तत्वार्थसूत्र" रचनेकी प्रार्थनाकी थी। तदनुसार यह ग्रन्थ रचा गया था। उमास्वामी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकुन्दके शिष्य थे, ऐसा उनके 'गृद्धपिच्छ' विशेषणसे बोध होता है। *

श्री समन्तभद्राचार्य—श्रीसमन्तभद्राचार्य दिगम्बरजैनों में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशामें उन को भस्मक रोग हो गया था, जिसके निवारणके लिये वह काञ्चीपुरके शिवालय में शैव-संन्यासीके भेषमें जारहेथे। वहीं 'स्वयंभू स्तोत्र' रचकर शिवकोटि राजाको आश्चर्यचकित कर दिया था। परिणामतः वह दिगम्बर मुनि होगया था। समन्त-भद्राचार्यने सारे भारतमें विहार करके दिगम्बर जैनधर्म का डंका बजाया था। उन्होंने प्रायश्चित लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रंथ रचनायें जैन धर्मके लिए बड़े महत्व की हैं।†

श्री पूज्यपादाचार्य—कर्नाटक देशके कोलंगाल नामक गांवमें एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रमकी चौथी शताब्दिमें रहता था। उन्हींके भाग्यवान पुत्र श्रीपूज्यपादाचार्यथे। उनका दीक्षा

---

* मजैइ०, पृ० ४४ † Ibid. पृ० ४५।

नाम श्री देवनन्दि था । नाना देशोंमें विहार करके उन्होंने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। गङ्गवंशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था । "जैनेन्द्रव्याकरण", "शब्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं ।‡

श्री वादीभसिंह—यतिवर श्री वादीभसिंह श्रीपुष्पसेन मुनिके शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशाका नाम 'ओडयदेव' था, जिससे उनका दक्षिणदेशवासी होना स्पष्ट है। उन्होंने सातवीं श० में "क्षत्रचूड़ामणि", "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थोंकी रचना की थी ।+

श्री नेमिचन्द्राचार्य—श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्त्ती नन्दिसङ्घके स्वामी अभयनन्दिके शिष्य थे। वि० सं० ७३५ में द्रविड़देशके मथुरा नगरमें वह रहते थे । उन्होंने जैनधर्मका विशेष प्रचार किया था और उनके शिष्य गङ्गवंशके राजा श्री राचमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओंमें "गोमट्टसार" ग्रन्थ प्रधान है।×

श्री अकलङ्काचार्य—श्री अकलङ्काचार्य देवसङ्घके साधु थे। बौद्धमठमें रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया था। उपरांत बौद्धोंसे वाद करके उनका पराभव और जैनधर्मका उत्कर्ष प्रकट कियाथा। काँचीका हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य

‡ Ibid. पृ० ४६।

+ Ibid पृ० ४७ ।

× Ibid पृ० ४७-४८ ।

था। उनके रचे हुये ग्रन्थ में राजवार्त्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्चयालङ्कार आदि मुख्य हैं। ÷

श्री जिनसेनाचार्य—राजाओंसे पूजित श्री वीरसेन स्वामीके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सम्राट् अमोघवर्षके गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैनधर्मका उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह अद्वितीय कवि थे। उनका "पार्श्वाभ्युदयकाव्य" कालिदासके मेघदूत काव्यकी समस्यापूर्ति रूपमें रचा गया था। उनकी दूसरी रचना 'महापुराण' भी काव्यदृष्टिसे एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने इस पुराणके शेषांश की पूर्ति की थी।*

श्री विद्यानन्दि आचार्य—श्रीविद्यानन्दि आचार्य कर्णाटकदेशवासी और गृहस्थदशामें एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। 'देवागम' स्तोत्रको सुनकर वह जैनधर्ममें दीक्षित होगये थे। दिगंबर मुनि होकर उन्होंने राजदरबारोंमें पहुंचकर ब्राह्मणों और बौद्धोंसे वाद किये थे; जिनमें उन्हें विजय श्री प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी दिव्य रचनायें हैं†।

÷ Ibid पृ० ४६।

* Ibid पृ० ५०-५१।

† Ibid पृ० ५१--५२।

श्री वादिराज—श्रीवादिराजसूरि नन्दिसंघके आचार्य थे। उनकी 'षटतर्कषण्मुख', 'स्याद्वादविद्यापति' और 'जगदेकमल्लवादी' उपाधियां उनके गौरव और प्रतिभाकी सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ट रोग होगयाथा, किन्तु अपने योगबल से'एकीभावस्तोत्र' रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रंथभी उन्होंने रचे थे‡।

आप चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंहकी सभाके प्रख्यात् वादी थे। वे स्वयं सिंहपुरके राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा-गुरू श्रीपालभी सिंहपुराधीश थे। (जैमि०, वर्ष ३३ अङ्क ५ पृ० ७२)

इसी प्रकार श्री मल्लिषेणाचार्य, श्रीसोमदेवसूरि आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठ दिगंबर जैनाचार्य दक्षिणभारतमें हो गुजरे हैं; जिनका वर्णन अन्य ग्रन्थोंसे देखना चाहिए।

इन दिगंबराचार्योंके विषयमें उक्त विद्वान् आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान जैन साधुओंके छोटे छोटे समूहोंसे अलंकृत था, जो धीरे २ जैनधर्मका प्रचार जनताकी विविध भाषाओंमें ग्रन्थ रचकर कर रहे थे। किन्तु यह सम-

---

‡ Ibid पृ० ४१।

झना गलत है कि यह साधुगण लौकिक कार्योंसे विमुख थे। किसी हद तक यह सच है कि वे जनतासे ज़्यादा मिलते-जुलते नहीं थे। किन्तु ई० पू० चौथी शताब्दिमें मेगास्थनीज़के कथनसे प्रगट है कि जैन श्रमण, जो जंगलों में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतों को भेजकर राजालोग वस्तुओंके कारण के विषयमें उनका अभिप्राय जानते थे। जैन गुरुओंने ऐसे कई राज्योंकी स्थापना की थी, जिन्होंने कई शताब्दियों तक जैन-धर्मको आश्रय दिया था*"।

---

* "The whole of South India strewn with small groups of learned Jain ascetics, who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. But it is a mistake to suppose that these ascetics were indifferent towards secular affairs in general. To a certain extent it is true that they did not mingle with the world. But we know from the account of Megasthenes that, so late as the 4th century B. C., 'The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequently consulted by the kings through their messengers regarding the cause of things'. Jaina Gurus have been founders of States that for centuries together were tolernat towards the Jain faith."

—SSIJ., I. 106.

प्रो० डॉ० बी० शेषागिरिरावने दक्षिण भारतके दिगंबर मुनियोंके सम्बन्धमें लिखा है कि "जैन मुनिगण विद्या और विज्ञानके ज्ञाता थे; आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्रके भी वे महा विद्वान् थे; ज्योतिषज्ञान उनका अच्छाखासा था; न्याय-शास्त्र सिद्धांत और साहित्य को उन्होंने रचा था। जैनमान्यतामें ऐसे सफल एक प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द कहे गए हैं; जिन्होंने बेलारी ज़िले के कोनकुण्डल प्रदेशमें ध्यान और तपस्या की थी" ‡।

इस प्रकार दक्षिण भारतमें दिगंबर मुनियोंके अस्तित्व का चमत्कारिक वर्णन है और यह इस बातका प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीनकालसे दिगंबर मुनियों का आश्रयस्थान रहा है तथा वह आगे भी रहेगा, इसमें संशय नहीं।

---

‡ SSIJ.,pt. II pp. 9—10

[२२]

तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"Among the systems controverted in the *Manimekhalai*, the Jain system also figures as one and the words *Samanas* and *Amana* are of frequent occurance; as also refrences to their *Viharas*, so that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country." *

तामिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगंबर जैन विद्वान रहे हैं। और उसका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रन्थ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है †। किन्तु हम यहां पर तामिल-साहित्य के जैनों द्वारा रचे हुये अङ्ग को नहीं छूयेंगे। हमें तो जैनेतर तामिल-साहित्यमें दिगम्बर मुनियोंके वर्णनको प्रकट करना इष्ट है।

अच्छा तो, तामिलसाहित्यका सर्वप्राचीन समय "संगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दिसे ईस्वी

* Sc., p. 32 भावार्थ—तामिल काव्य 'मणिमेखलै' में जैन-संप्रदाय और शब्द "समण"—"अमण" तथा उनके विहारों का उल्लेख विशेष है; जिससे तामिल देश में अतीव प्राचीनकाल से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

† SSIJ., pt. I. p. 89

पांचवीं शताब्दि तकका समय है। इस कालकी रचनाओंमें बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखलै" प्रसिद्ध है। "मणिमेखलै" में दिगम्बर मुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठोंका अच्छा खासा वर्णन है। जैनदर्शनको इस काव्यमें दो भागोंमें विभक्त किया है—(१) आजीविक और (२) निर्ग्रन्थ।* आजीविक भ० महावीर के समयमें एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था; किन्तु उपरान्तकालमें वह दिगम्बर जैनसंप्रदायमें समिष्ट हो गया था। निर्ग्रन्थ संप्रदायको 'अरुहन' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनोंका द्योतक है। इस काव्यके पात्रों में सेठ कोवलन्की पत्नी कण्णकिके पिता मानाइकन्के विषयमें लिखा है कि 'जब उसने अपने दामादके मारे जानेके समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ। और वह जैनसंघमें नंगा मुनि होगया †।' इस काव्यसे यहभी प्रगट है कि चोल और पाण्ड्य राजाओंने जैनधर्मको अपनाया था।‡

"मणिमेखलै" के वर्णनसे प्रकट है कि "निर्ग्रन्थगण ग्रामोंके बाहर शीतल मठोंमें रहते थे। इन मठों की दिवालें बहुत ऊंची और लाल रंग से रंगी हुई होती थीं। प्रत्येक मठके साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराहों और चौराहों पर अवस्थित थे। जैनोंने अपने

* BS., p. 15 † Ibid., p. 681
‡ SSIJ., pt. I. p. 47

प्लेटफार्मभी बना रक्खे थे, जिनपरसे निर्ग्रन्थाचार्य अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करते थे। जैनसाधुओंके मठोंके साथ २ जैनसाध्वीयोंके आगमभी होते थे। जैन साध्वीयोंका प्रभाव तामिल महिला समाज पर विशेष था। कावेरीप्पूमपट्टिनम् जो चोल राजाओंकी राजधानी थी, वहां और कावेरी तट पर स्थित उरैयुरमें जैनोंके मठ थे। मदुरा जैनधर्मका मुख्य केन्द्र था। सेठ कोवलन् और उनकी पत्नी कराणकि जब मदुराको जारहे थे तो रास्तेमें एक जैन आर्यिकाने उन्हें किसी जीवको पोड़ा न पहुँचानेके लिये सावधान किया था, क्योंकि *मदुरामें निर्ग्रन्थों द्वारा यह एक महान् पाप* क़रार दिया गया था। यह निर्ग्रन्थगण तीन छत्रयुक्त और अशोक वृक्षके तले बैठाये गये। अर्हत् भगवान्की देदीप्यमान मूर्तिकी विनय करते थे। यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्यके वर्णनसे स्पष्ट है। पुहरमें जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब वहांके राजाने सब धर्मोंके आचार्योंको वाद और धर्मोपदेश करनेके लिये बुलाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी संख्यामें पहुँचेथे और उनके धर्मोपदेशसे अनेकानेक तामिल स्त्री-पुरुष जैनधर्ममें दीक्षित हुये थे।" +

+ Ibid. pp. 47--48. "That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description ....The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith".

"मणिमेखलै" काव्यमें उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निर्ग्रन्थ साधुसे जैनधर्मके सिद्धान्तोंके विषयमें जिज्ञासा करती भी बताई गई है*। इस तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वीकी प्रारम्भिक शताब्दियोंमें तामिल देशमें दिगम्बर मुनियों की एक बड़ी संख्या मौजूद थी और तामिल देशमें वे विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायोंके तामिल साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है। शैवोंके 'पेरियपुराणम्' नामक ग्रन्थ में मूर्ति नायनारके वर्णन में लिखा है कि कलभ्र वंशके क्षत्री जैसे ही दक्षिण भारतमें पहुंचे वैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैनधर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की संख्या वहां अत्यधिक थी और उनके आचार्योंका प्रभाव कलभ्रों पर विशेष था† । इस कारण शैवधर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलभ्रोंके बाद शैवधर्मको उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निष्प्रभ होगये थे, किन्तु जैन अब भी प्रधानता लिये हुये थे ‡। शैवाचार्यों का

---

* "Manimekalai asked the Nigantha to state who was his God and what he was taught in his sacred books. etc." —SSIJ., pt. I. p. 50

† *Ibid*, p. 55

‡ "It would appear from a general study of the literature of the period that Buddhism had declined as an active religion but Jainism had still its

वादशालामें मुकाबला लेने के लिये दिगम्बराचार्य—जैन श्रमण ही अवशेष थे। शैवोंमें सम्बन्दर और अप्पर नामक आचार्य जैनधर्मके कट्टर विरोधी थे। इनके प्रचार से साम्प्रदायिक विद्वेषकी आग तामिल देशमें भड़क उठी थी+, जिसके परिणाम स्वरूप उपरान्तके शैव ग्रंथोंमें ऐसा उपदेश दिया हुआ मिलता है कि बौद्धों और समणों (दिगम्बर मुनियों) के न तो दर्शन करो और न उनके धर्मोपदेश सुनो। बल्कि शिव से यह प्रार्थना की गई है कि वह शक्ति प्रदान करें जिससे बौद्धों और समणों (दि० मुनियों) के सिर फोड़ डाले जायं; जिनके धर्मोपदेश को सुनते २ उन लोगों के कान भर गये हैं×। इस विद्वेष का भी कोई ठिकाना है! किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दि० मुनियोंका प्रभाव दक्षिण भारतमें काफ़ी था।

वैष्णव तामिल साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका विवरण मिलता है। उनके 'तेवारम' (Tevaram) नामक ग्रंथसे ई० सातवीं-आठवीं शताब्दिके जैनोंका हाल मालूम होता है। उक्त ग्रन्थसे प्रगट है कि "इस समय भी जैनों का मुख्य केन्द्र मदुरामें था। मदुराके चहुँओर स्थित अनैमलै, पशुमलै आदि आठ पर्वतों पर दिगम्बर मुनिगण रहते थे और वे ही जैन संघ का संचालन करते थे। वे प्रायः जनता से

---

stronghold. The chief opponents of these saints were the ... *as* or the Jainas." —BS., p. 689

+SSIJ., pt. I pp. 60-66. ; ×तिरुमलै—BS., p. 692

अलग रहते थे—उनसे अत्यधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। स्त्रियोंसे तो वे बिल्कुल दूर २ रहते थे। नासिका-स्वरसे वे प्राकृत व अन्य मंत्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदोंका वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूपमें वे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर वेदोंके विरुद्ध प्रचार करते हुए विचरते थे। उनके हाथमें पीछी, चटाई और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियोंको सम्बन्दर द्वेषवश बन्दरोंकी उपमा देता है; किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करनेके लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षीको परास्त करनेमें आनन्द आता था। केशलोंच ये मुनिगण करते थे और स्त्रियोंके सम्मुख नग्न उपस्थित होनेमें उन्हें लज्जा नहीं आती थी। भोजन लेनेके पहले वे अपने शरीरकी शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे)। मंत्रशास्त्रको वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ़ करते थे।"*

तिरुज्ञानसम्बन्दर और अप्परने जो उपरोक्त प्रमाण दिगम्बर मुनियोंका वर्णन दिया है, यद्यपि वह द्वेषको लिये हुये है, परंतु तोभी उससे उस कालमें दिगम्बर मुनियोंके बाहुल्य रूपमें सर्वत्र विहार करने, विकट तपस्वी और उत्कट वादी होनेका समर्थन होता है।

दक्षिण भारतकी 'नन्दयाल कैफियत' (Nandyala Kaiphiyat) में लिखा है † कि "जैनमुनि अपने सिरों पर

---

* SSIJ.. pt. I pp. 68-70 † Ibid., pt. II pp. 10-11

बाल नहीं रखते थे कि शायद कहीं जूं न पड़ जायं और वे हिंसाके भागी हों। जब वे चलते थे तो मोरपिच्छीसे रास्ताको साफ कर लेते थे कि कहीं सूक्ष्म जीवोंकी विराधना न हो जाय। वे दिगम्बर वेषधारण किये थे, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके कपड़े और शरीरके संसर्गसे सूक्ष्म जीवोंको पीड़ा न पहुँचे। वे सूर्यास्तके उपरान्त भोजन नहीं करते थे, क्योंकि पवनके साथ उड़ते हुए जीवजन्तु कहीं उनके भोजनमें गिर कर मर न जांय।" इस वर्णनसे भी दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य और निर्बाध धर्मप्रचार करना प्रमाणित है।

"सिद्धवत्तम् कैफियत" (Siddhavattam Kaiphiyat) से प्रकट है‡ कि "वरंगलके जैनराजा उदार प्रकृति थे। वे दिगम्बरोंके साथ २ अन्य धर्मों को भी आश्रय देते थे।" "वरंगल कैफियत" से प्रकट है+ कि वहां वृषभाचार्य नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे।

दक्षिणभारतके ग्राम्य-कथा-साहित्यमें एक कहानी है, उससे प्रकट है कि "वरंगलके काकतीयवंशी एक राजाके पास ऐसी खड़ाऊं थीं, जिनको पहन कर वह उड़ सकता था और रोज़ बनारसमें जाकर गङ्गा स्नान कर आता था। किसीको भी इसका पता न चलता था। एक रोज़ उसकी रानीने देखा कि राजा नहीं है। वह जैनधर्मपरायण थी।

---

‡ Ibid. p. 17 + Ibid. p. 18

उसने अपने गुरुओंसे राजाके संबंधमें पूंछा । जैनगुरु ज्योतिषके विद्वान् विशेष थे, उन्होंने राजाका सब पता बता दिया । राजा जब लौटा तो रानीने उसको बताया कि वह कहां गया था और प्रार्थना की कि वह उसेभी बनारस ले आया करे । राजाने स्वीकार कर लिया । वह रानीभी बनारस जाने लगी । एक रोज़ मार्ग में वह मासिकधर्मसे होगई । फलतः खड़ाऊंकी वह विशेषता नष्ट होगई । राजाको उसपर बड़ा दुःख हुआ और उसने जैनोंको कष्ट देना प्रारंभ कर दिया ।*" इस कहानीसे विधर्मी राजाओंके राज्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका प्रतिभाशाली होना प्रकट है ।

अरुलनन्दि शैवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायोंमें दिगम्बर जैनोंका "श्रमणरूप" उल्लेख है†। तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुराके शैवों और दिगम्बर मुनियोंके वादका वर्णन मिलता है ।‡

इस प्रकार तामिलसाहित्यके उपरोक्त वर्णनसे भी दक्षिणभारतमें दिगम्बर मुनियोंका प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है । वे वहां एक अत्यन्त प्राचीनकालसे धर्मप्रचार कर रहे थे ।

---

* SSIJ., pt. II pp. 27—28 † SC., p. 243
‡ IHQ., Vol. IV. p. 564

भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि ।

"Chalcolithic civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation". "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilized and warlike people".

—R. B. Ramprasad Chanda. †

मोहन-जो-दारो का पुरातत्व और दिगम्बरत्व ।

भारतीय पुरातत्वमें सिंधुदेशके मोहन जोदरो और पंजाब के हरप्पा नामक ग्रामोंसे प्राप्त पुरातत्व अतिप्राचीन है। वह ईस्वी सन् से तीन-चार हज़ार वर्ष पहलेका अनुमान किया गया है। जिन विद्वानोंने उसका अध्ययन किया है, वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सिन्धुदेशमें उस समय एक अतीव सभ्य और क्षत्रिय प्रकृतिके मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक-धर्म और सभ्यतासे नितान्त भिन्न थी। एक विद्वान् ने उन्हें "व्रात्य" सिद्ध किया है‡ और मनुके अनुसार "व्रात्य" वह वेद-विरोधी संप्रदाय था "जिसके लोग द्विजों द्वारा उनकी सजातीय पत्नियों से उत्पन्न हुए थे; किन्तु जो

† SPCIV., p. 1 & 25 ‡ Ibid. pp. 25—34

(वैदिक) धार्मिक नियमोंका पालन न कर सकनेके कारण सावित्रीसे प्रथक कर दिये गये थे।" (मनु १०।२०) वह मुख्यतः क्षत्री थे। मनु एक व्रात्य क्षत्रीसे ही झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नात, करण, खस और द्राविड़ वंशोंकी उत्पत्ति बतलाते हैं। (मनु १०।२२) यह पहलेभी लिखा आ चुका है। सिन्धुदेशके उपरोक्त मनुष्य इसी प्रकारके क्षत्री थे और वे ध्यान तथा योगका स्वयं अभ्यास करते थे और योगियोंकी मूर्तियोंकी पूजा करते थे। मोहन-जो-डरो से जो कतिपय मूर्तियां मिलीहैं उनकी दृष्टि जैनमूर्तियोंके सदृश 'नासाग्रदृष्टि' है। किन्तु ऐसी जैनमूर्तियां प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान् प्रकट करते हैं+; यद्यपि जैनोंकी मान्यताके अनुसार उनके मंदिरोंमें बहुप्राचीनकालकी मूर्तियां मौजूद हैं। बस पर, हाथीगुफाके शिलालेखसे कुमारी पर्वत पर नन्दकालकी मूर्तियोंका होना प्रमाणित है× तथा मथुरा के 'देवों द्वारा निर्मित जैनस्तूप' से भगवान पार्श्वनाथके समयमें भी ध्यानदृष्टिमय मूर्तियोंका होना सिद्ध है÷। इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य तथा बौद्धोंके उल्लेखसे भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीरके पहलेके जैनोंमेंभी ध्यान और योगाभ्यासके नियमोंका होना प्रमाणित है। 'संयुत्तनिकाय' में जैनोंके अवितर्क और अविचार श्रेणीके ध्यानोंका उल्लेख

+ Ibid. pp. 25—26 × JBORS.

÷ वीर वर्ष ४ पृ० २६६

है * और "दीघनिकाय" के 'ब्रह्मजालसुत्त' से प्रकट है कि गौतम बुद्धसे पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विचार द्वारा मनुष्यके पूर्वभवोंको बतलाया करते थे†। जैनशास्त्रों में ऋषभादि प्रत्येक तीर्थंकरके शिष्यसमुदायमें ठीक ऐसे साधुओंका वर्णन मिलता है। तथापि उपनिषदोंमें जैनोंके 'शुक्लध्यान' का उल्लेख मिलता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैनसाधु एक अतीव प्राचीन-कालसे ध्यान और योगका अभ्यास करते आये हैं। तथा झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ आदि व्रात्य क्षत्रिय प्रायः जैन थे। अन्यत्र यह सिद्ध किया जा चुका है कि "व्रात्य" क्षत्रिय बहुतकरके जैनथे और उनमेंके ज्येष्ठ व्रात्य सिवाय 'दिगंबर-मुनिके' और कोई न थे‡। इस अवस्थामें सिन्धुदेशके उपरोक्त कालवर्ती मनुष्योंका प्राचीन जैन ऋषियोंका भक्त होना बहुत कुछ संभव है। किन्तु मोहन जोडरो से जो मूर्तियां मिली हैं वह वस्त्रसंयुक्त हैं और उन्हें विद्वान् लोग 'पुजारी' (Priest) व्रात्योंकी मूर्तियां अनुमान करते हैं। हमारे विचारसे वे हीन-व्रात्य (अणुव्रती श्रावकों) की मूर्तियां हैं। व्रात्य-साधुकी मूर्ति वह हो नहीं सकती; क्योंकि उसे शास्त्रोंमें नग्न प्रगट किया गया है। वहां 'ज्येष्ठव्रात्य' का एक विशेषण 'समनिचा-मेढ्र' अर्थात् 'पुरुषलिंगसे रहित' दिया हुआ है जो नग्नताका

---

* PTS. IV, 287 † भमबु०, पृ० २१६—२१०

‡ भपा०, प्रस्तावना पृष्ठ ४४-४५

द्योतक है। हीनव्रात्योंकी पोशाकके वर्णनमें कहा गया है कि वे एक पगड़ी (निर्यम्नद्ध), एक लाल कपड़ा और एक चांदी का आभूषण 'निश्क' नामक पहनते थे। उक्त मूर्तिकी पोशाकभी इसी ढंगकी है। माथे पर एक पट्ट रूप पगड़ी जिसके बीचमें एक आभूषण जड़ा है, वह पहने हुये प्रगट है और बगलसे निकला हुआ एक छींटदार कपड़ा वह ओढ़े हुये है†। इस अवस्थामें इन मूर्तियोंको हीन व्रात्योंकी मूर्तियां मानना ही ठीक है और इस तरह पर यह सिद्ध है कि व्रात्य-क्षत्रिय एक अतीव प्राचीनकालमें अवश्यही एक वेद-विरोधी संप्रदाय था; जिसमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनिके अनुरूप थे। अतः प्रकारान्तरसे भारतका सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगमुद्राका पोषक है *।

अशोक के शासन लेख में निर्ग्रन्थ
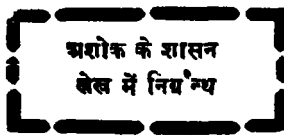
सिंधु देशके पुरातत्वके उपरांत सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्व प्राचीन है। वह पुरातत्वभी दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वका द्योतक है। सम्राट् अशोकने अपने एक शासन लेखमें आजीविक साधुओं के साथ निर्ग्रन्थ साधुओंका भी उल्लेख किया है।‡

---

† SPCIV., Plate 1, Fig, 'b'

* 'SPCIV'. pp. 25—33 में मोहन जोदरो की मूर्तियोंको जिन मूर्तियोंके समान और उनका पूर्ववर्ती टायप प्रकट किया गया है।

‡ स्थम्भलेख नं० ७

खंडगिरि-उदयगिरिके पुरातत्व में दि० मुनि

अशोकके पश्चात् खण्डगिरि-उदयगिरिका पुरातत्व दिगम्बर धर्मका पोषक है। जैन सम्राट् खारवेलके हाथीगुफा वाले शिलालेखमें दिगम्बर मुनियोंका "तापस" (तपस्वी) रूप उल्लेख है†। और उन्होंने सारे भारत के दिगम्बर मुनियोंका सम्मेलन किया था, यह पहले लिखा जाचुका है। खारवेलकी पटरानीने भी दिगम्बर मुनियों—कलिङ्ग श्रमणोंके लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख अपने शिलालेखमें निम्न-प्रकार किया है:—

"अरहन्तपसादायम् कलिङ्गानम् समनानं लेनं कारितम् राञो लालकसहथीसाहसपपोतस् घुतुना कलिङ्गचक्रवर्तिनो श्री खारवेलस अगमहिसिना कारितम्।"

भावार्थ—"अर्हन्तके प्रासाद या मन्दिर रूप यह गुफा कलिङ्ग देशके श्रमणों (दिगम्बर मुनियों) के लिये कलिङ्ग चक्रवर्ती राजा खारवेलकी मुख्य पटरानीने निर्मित कराई, जो हथीसहसके पौत्र लालकसकी पुत्री थी।"‡

खण्डगिरिकी 'तत्वगुफा' पर जो लेख है वह बालमुनि का लिखा हुआ है+। 'अनन्त गुफा' में लेख है कि "दोहदके दिग० मुनियों श्रमणोंकी गुफा" (दोहद समनानम् लेनम्)×।

---

† 'अरहदिसानं तापसानं'.........पंक्ति १४. JBORS.

‡ बांबको जैस्मा०, पृष्ठ ६१

+ Ibid. p. 94

× Ibid. p. 97

इस प्रकार खण्डगिरि--उदयगिरिके शिलालेखोंसे ईस्वी-पूर्व दूसरी शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके कल्याणकारी अस्तित्वका पता चलता है ।

खण्डगिरि–उदयगिरि पर जो मूर्त्तियां हैं, वे प्राचीन और नग्न हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वका पोषण होता है। वह अबभी दिगम्बर मुनियोंका मान्य तीर्थ है।

मथुराका पुरातत्व और दिगम्बर मुनि
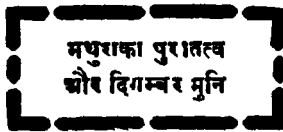
मथुराका पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियोंका जनतामें बहुमान्य और कल्याणकारी होना प्रगट है। यहांकी प्रायः सब ही प्राचीन मूर्त्तियां नग्न-दिगम्बर हैं। एक स्तूपके चित्रमें जैनमुनि नग्नपीछी व कमण्डल लिये दिखाये गयेहैं ÷। उन पर के लेख दिगम्बर मुनियोंके द्योतक हैं; यथा:—

"नमो अर्हतो वर्धमानस आराये गणिकायं लोण शोभिकाये धितु समण साविकाये नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतो देविकुल आयाग-सभा प्रयाशिल (?) पटो पतिस्ठापितो निगन्थानम् अर्हता यतनेसहामातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुजायें।"

अर्थात्—"अर्हत् वर्द्धमान् को नमस्कार। श्रमणोंकी श्राविका आरायगणिका लोणशोभिकाकी पुत्री नादाय गणिका

÷ जैसिभा०, वर्ष १ किरण ४ पृ० १२३

वसु ने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत्‌का एक मन्दिर, एक आयाग-सभा, ताल और एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतोंके पवित्र स्थान पर बनवाये।"*

इसमें दानशीला श्राविकाको श्रमणों-दिगम्बर मुनियों का भक्त तथा निर्ग्रंथ-दिगम्बर मुनियोंके लिये एक शिला बनाया जाना प्रगट किया गया है। एक आयागपट परके लेखमें भी श्रमण-दिगम्बर मुनियोंका उल्लेख है† । प्लेट नं० २८ परके लेखमें भी ऐसा ही उल्लेख है‡। तथा एक दिगम्बर मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है :—

"..........सं० १५ ग्रि ३ दि १ अस्या पूर्वाय ....हिका तो आर्य जयभूतिस्य शिषीनिनं अर्य्य संनामिके शिषीन अर्य्य वसुलये (निर्व्वर्त्त) नं......... लस्य धीतु.........३............धु वेणि श्रेष्टिस्य धर्म-पत्निये भट्टिसेनस्य.........(मातु) कुमरमितयो दनं भग-वतो (प्र) मा सब्ब तो भद्रिका।"

अर्थात्—"(सिद्धं !) सं० १५ ग्रीष्मके तीसरे महीने में पहले दिनको, भगवतकी एक चतुर्मुखी प्रतिमा कुमरमिता के दानरूप, जो.........ल की पुत्री,............की बहू, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता थी, मेहिककुलके

* होलीदरवाजा से मिला आयागपट—वीर, वर्ष ४ पृ० ३०३

† आर्यवती आयागपट--वीर वर्ष ४ पृ० ३०४

‡ JOAM, Plate No. 28.

आर्य जयभूतिकी शिष्या अर्य संगमिकाकी प्रति शिष्या वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी)"*

इसमें दिगम्बर मुनि जयभूतिका उल्लेख 'आर्य' विशेषणसे हुआ है। ऐसे ही अन्य उल्लेखोंसे वहांका पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियोंके सम्माननीय व्यक्तित्वका परिचायक है।

अहिच्छत्र (बरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि ।

अहिच्छत्र (बरेली) पर एक समय नागवंशी राजाओंका राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। वहां के कटारी खेड़ा की खुदाई में डा० फुहरर सा० ने एक समूचा सभामंदिर खुदवा निकलवाया था। यह मंदिर ई० पूर्व प्रथम शताब्दिका अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथजीका मन्दिर था। इसमें से मिली हुई मूर्तियां सन् ९६ से १५२ तक की हैं; जो नग्न हैं। यहां एक ईंटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था :—

"महाचार्य इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिस्स कोट्टारी।"

आचार्य इन्द्रनन्दि उस समय के प्रख्यात् दिगम्बर मुनि थे†।

---

* वीर, वर्ष ४ पृ० ३१०

† संप्राजैस्मा०, पृ० ८१-८२ '(General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues,

कौशाम्बी के पुरातत्व में दिगम्बर-संघ।

कौशाम्बी का पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्वका पोषक है। वहांसे कुशानकालका मथुरा जैसा आयागपट्ट मिला है; जिसे राजा शिवमित्रके राज्यमें आर्य शिवनन्दिकी शिष्या बड़ी स्थविरा बलदासाके कहने से शिवपालितने अर्हत्की पूजाके लिये स्थापित किया था‡। इस उल्लेखसे उस समय कौशाम्बी में एक वृहत् दिगम्बर जैन संघके रहने का पता चलता है।

कुहाऊंका गुप्तकालीन लेख दि० मुनियों का द्योतक है।

कुहाऊं (गोरखपुर) से प्राप्तपुरातत्व गुप्तकालमें दिगम्बर धर्मकी प्रधानताका द्योतक है। वहां के पाषाण-स्तम्भमें नीचेकी ओर जैन तीर्थङ्कर और साधुओंकी नग्न मूर्तियां हैं और उस पर निम्नलिखित शिलालेख है+ :—

"यस्योपस्थानभूमिर्नृपति—शत-शिरः पात—वातावधूता। गुप्तानां वंशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः॥ राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप-शत-पतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः। वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरक—शत—तमे ज्येष्ठ मासे प्रपन्ने—ख्यातेऽस्मिन् ग्राम-रत्ने ककुभ इति

some inscribed with dates ranging from 96 to 152 A. d.'

‡ संप्राजैस्मा०, पृ० २७

+ पूर्व०, पृ० ३-४

अनैस्साधु—संसर्गपूते पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण निधेर्भट्टिसोमो महार्थः तत्सूनु रुद्रसोमः पृथुलमतियशा व्याघ्ररत्यन्य संज्ञो मद्रस्तस्यात्मजो—भूद्द्विज—गुरुय-तिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः ॥ इत्यादि"

भाव यही है कि संवत् १४१ में प्रसिद्ध तथा साधुओं के संसर्गसे पवित्र ककुभ ग्राममें ब्राह्मण-गुरु और यतियों को प्रिय मद्र नामक विप्र रहते थे; जिन्होंने पांच अर्हत्-बिम्ब निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय ककुभ ग्राम में दिगम्बर मुनियोंका एक बृहत् संघ रहता था।

राजगृह (विहार) के पुरातत्व में दि० मुनियों की साक्षी।

राजगृह (विहार) का पुरातत्वभी गुप्तकालमें वहाँ दिगम्बर मुनियोंके बाहुल्यका परिचायक है। वहां पर गुप्तकालकी निर्मित अनेक दिगम्बर जैनमूर्तियां मिलती हैं* और निम्न शिलालेख वहां पर दिगम्बर जैन संघका अस्तित्व प्रमाणित करता है:—

"निर्वाणलाभाय तपस्वि योग्ये शुभेगुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवः विमुक्तये कारय दीर्घतेजः॥"

अर्थात्—"निर्वाणकी प्राप्तिके लिये तपस्वियोंके योग्य और श्री अर्हन्तकी प्रतिमासे प्रतिष्ठित शुभगुफामें मुनि वैरदेव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित किया।" इस शिलालेखके निकट ही एक नग्न जैन मूर्तिका

* SPCIV., plate II (b)

निम्न भाग उकेरा हुआ है; जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है ‡।

बङ्गाल के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि।

गुप्तकाल और उसके बाद कई शताब्दियों तक बङ्गाल, आसाम और ओड़ीसा प्रान्तोंमें दिगम्बर जैनधर्म बहु प्रचलित था। नग्न जैन मूर्तियाँ वहां के कई ज़िलोंमें बिखरी हुई मिलती हैं। पहाड़पुर (राजशाही) गुप्तकालमें एक जैनकेन्द्र था †। वहाँसे प्राप्त एक ताम्र लेख दिगम्बर मुनियों के संघका द्योतक है। उसमें अङ्कित है कि "गुप्तसं० १५६ (सन् ४७६ ई०) में एक ब्राह्मण दम्पतिने निर्ग्रन्थ विहार की पूजा के लिये बटगोहली ग्राममें भूमिदान दी। निर्ग्रन्थसंघ आचार्य गुहनन्दि और उन के शिष्यों द्वारा शासित था!" +

कादम्ब-राजाओं के ताम्रपत्रों में दिगम्बर मुनि

देवगिरि (धाड़वाड़) से प्राप्त कादम्बवंशी राजाओं के ताम्रपत्र ईस्वी पांचवीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके वैभव को प्रकट करते हैं। एक लेख में है कि महाराजा कादम्ब श्री कृष्णवर्माके राजकुमार पुत्र देववर्माने जैन मन्दिरके लिये यापनीय सङ्घके दिगम्बर मुनियोंको एक खेत दान दिया था। दूसरे लेखसे प्रगट है कि

‡ बंबिओजैस्मा०, पृ० १६
† IHQ., Vol. VII p. 441
+ Modern Review, August 1931, p. 150

"काकुत्स्थवंशी श्री शान्तिवर्माके पुत्र का दम्बमहाराज मृगेश्वर-वर्माने अपने राज्यके तीसरे वर्षमें परलूरा के आचार्योंको दान दियाथा"। तीसरे लेख में कहा गया है कि "इसी मृगेश्वरवर्मा ने जैन मन्दिरों और निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) तथा श्वेतपट (श्वेतांबर) सङ्घोंके साधुओंके व्यवहारके लिये एक कालवङ्ग नामक ग्राम अर्पण किया था †।"

उदयगिरि (भिलसा) में पांचवीं शताब्दिकी बनी हुई गुफायें हैं, जिनमें जैनसाधु ध्यान किया करते थे। उनमें लेख भी हैं ‡।

अजन्टाकी गुफाओं में दि० मुनियों का अस्तित्व

अजन्टा (खानदेश) की प्रसिद्धगुफाओंके पुरातत्व से ईस्वी सातवीं शताब्दि में दिगम्बर जैन मुनियोंका अस्तित्व प्रमाणित है। वहांकीगुफा नं० १३ में दिगम्बर मुनियोंका सङ्घ चित्रित है। नं० ३३ की गुफामें भी दिगम्बर मूर्तियां हैं। ×

बादामी की गुफा

बादामी (बीजापुर) में सन् ६५० ई० की जैनगुफा उस ज़मानेमें दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वकी द्योतक है। उसमें मुनियोंके ध्यान करने योग्य स्थान हैं और नग्न मूर्तियां अङ्कित हैं। +

---

† IA. VII 33-34 व बंप्राजैस्मा०, पृ० १२६

‡ मप्राजैस्मा०, पृ० ७० ×बंप्राजैस्मा०, पृ० ५५-५६

+ Ibid. p. 103

चालुक्य-राजा विक्रमादित्यके लेख में दिगम्बर मुनि।

लक्ष्मेश्वर (धाड़वाड़) की संखवस्तीके शिला लेखसे प्रगट है कि संखतीर्थका उद्धार पश्चिमीय चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका ६५६) ने कराया था और जिनपूजाके लिये श्री देवेन्द्र भट्टारकके शिष्य मुनि एकदेवके शिष्य जयदेव पंडितको भूमि-दान दी थी ! इससे विक्रमादित्यका दिगम्बर मुनियोंका भक्त होना प्रगट है। वहींके एक अन्य लेखसे मूलसङ्घके श्री राम-चन्द्राचार्य और श्रीविजयदेव पंडिताचार्यका पता चलता है* । सारांशतः वहां उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैनसङ्घ विद्यमान् था।

एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मुनि

ईस्वी आठवीं शताब्दिकी निर्मित एलोराकी जैन गुफायें भी उस समय दिगम्बर मुनियोंके विहार और धर्म प्रचारको प्रगट करती हैं। वहांकी इन्द्रसभा नामक गुफामें जैन मुनियोंके ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थानहैं और उनमें अनेक नग्न मूर्तियां अङ्कितहैं। श्रीबाहुबलि गोमट्टस्वामीकी भी खड्गासन मूर्ति है। "जगन्नाथसभा"—"छोटा कैलास" आदि गुफायेंभी इसी ढङ्गकी हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्वकी प्रधानताका परिचय मिलता है।†

---

* Ibid. pp. 124—125

† Ibid., pp. 163-171

राष्ट्रराज आदिके शिलालेखों में दिगम्बर मुनि।

सौंदत्ति (बेलगाम) के पुरातत्वमें दिगम्बर मुनियों की मूर्तियें और उनका वर्णन मिलता है *। वहाँ एक आठवीं शताब्दिका शिलालेख है, जिससे प्रकट है कि "मैलेयतीर्थकी कारेयशाखामें आचार्य श्री मूल भट्टारक थे, जिनके शिष्य विद्वान् गणकीर्ति थे और उनके शिष्य इच्छाको जीतने वाले श्रीमुनि इन्द्रकीर्ति स्वामी थे; उनका शिष्य मेरडका बड़ा पुत्र राजा पृथ्वीवर्मा था, जिसने एक जैनमंदिर बनवाया था और उसके लिये भूमिका दान दिया था"। एक दूसरे सन् ६८१ के लेखसे विदित है कि कुन्दुर जैन शाखाके गुरु अति प्रसिद्ध थे; उनको चौथे राष्ट्रराजा शांत ने १५० मत्तर भूमि उस जैनमन्दिरके लिये दी जो उन्होंने सौंदत्तिमें बनवाया था और उतनी ही भूमि उसी मन्दिर को उनकी स्त्री निजिकब्बेने दी थी। उन दिगम्बराचार्यका नाम श्री बाहुबलि जी था और वे व्याकरणाचार्य थे। उस समय श्री रविचन्द्र स्वामी, अर्हनन्दी, शुभचन्द्र, भट्टारकदेव, मौनी-देव, प्रभाचन्द्रदेव मुनिगण विद्यमान थे। राजाकत्तम् की स्त्री पद्मलादेवी जैनधर्म के ज्ञान व श्रद्धान में इन्द्राणी के समान थी। वह दिगम्बर मुनियोंकी भक्तिमें दृढ़ थी।

चालुक्यराजा विक्रम के लेख में दि० मुनियों का उल्लेख।

एक अन्य लेख वहीं पर चालुक्य राज विक्रम के १२ वें

* बंमा जैस्मा०, पृ० ८३—८६

राज्य-वर्षका लिखा हुआ है, जिसमें निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों के नाम दिये हुए हैं :—

"बलात्कारगण मुनि गुणचन्द्र, शिष्य नयनंदि, शिष्य श्रीधराचार्य, शिष्य चन्द्रकीर्ति, शिष्य श्रीधरदेव, शिष्य नेमिचन्द्र और वासुपूज्य त्रैविधदेव, वासुपूज्यके लघुभ्राता मुनि विद्वान् मलपाल थे। वासुपूज्यके शिष्य सर्वोत्तम साधु पद्मप्रभ थे। सेरिंगकावंशका अधिकारी गुरु वासुपूज्यका सेवक था।"

इस प्रकार उपरोक्त लेखोंसे सौंदत्ति और उसके आस पासमें दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य और उनका प्रभावशाली तथा राजमान्य होना प्रकट है।

राठौर राजाओं द्वारा मान्य दि० मुनियों के शिलालेख।

गोविन्दराय तृतीय राठौर मान्यखेट के सन् ८१३ के ताम्रपत्रसे प्रगट है कि गंगवंशी चाकिराजकी प्रार्थना पर उन्होंने विजयकीर्ति कुलाचार्यके शिष्य मुनि अर्ककीर्तिको दान दिया था। अमोघवर्ष प्रथमने सन् ८६० में मान्यखेटमें देवेन्द्रमुनिको भूमिदान किया था।+ इनसे दिग० मुनियोंका राठौर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है।

---

*+ भाप्राारा०, भा० ३ पृ० ३८—४१.

मूलगुंड के पुरातत्व में दि० संघ।

मूलगुंड (धाड़वाड़) को ९ वीं—१० वीं शताब्दिका पुरातत्वभी वहां पर दिगम्बर मुनियोंके प्रभुत्वका द्योतक है। वहाँके एक शिला लेखमें वर्णन है कि "चीकारि, जिसने जैन मन्दिर बनवाया था, उसके पुत्र नागार्यके छोटे भ्राता आलार्यने दान किया। यह आलार्य्य नीति और धर्मशास्त्रमें बड़ा विद्वान् था। इसने नगरके व्यापारियोंकी सम्मतिसे १००० पानके वृक्षोंके खेतको सेनवंशके आचार्य कनकसेनकी सेवामें जैनमन्दिरके लिये अर्पणकिया था। कनकसेनाचार्यके गुरु श्री वीर सेनस्वामी थे, जो पूज्यपाद कुमार सेनाचार्यके दिगम्बर मुनियोंके सङ्घके गुरु थे, चन्द्रनाथ मन्दिरके शिलालेखसे मूलगुंडके राजा मदरसाकी स्त्री भामस्तोकी मृत्यु का वर्णन प्रकट है †। ग़र्ज़ यह कि मूलगुंडमें दिगम्बर मुनियोंको एक समय प्रधानपद मिला हुआ था—वहांका शासकभी उनका भक्त था।

सुन्दी के शिलालेखों में राजमान्य दिगम्बर मुनि।

सुन्दी (धाड़वाड़) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (१० वीं श०) में पश्चिमीय गङ्गवंशीय राजकुमार बुटुगका वर्णन है; जिसने उस जैनमन्दिरके लिये दिगम्बर गुरुको दानदिया था

† बंप्रा जैस्मा०, पृ० ११०—१११

जिसको उसकी स्त्री दिवलम्बाने सुन्दोमें स्थापित किया था। राजा बुटुग गङ्गमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी दिवलम्बा दिगम्बर मुनियों और आर्यिकाओं की परम भक्त थी। उसने छै आर्यिकाओंको समाधिमरण कराया था‡। इससे सुन्दोमें दिगम्बर मुनियोंका राजमान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज बाहुबलि पहाड़ (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि बाहुबलिके कारण प्रसिद्ध है, जो वहां हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहां मौजूद हैं *।

कोल्हापुर के पुरातत्व में दिग० मुनि और शिलाहार राजा

कोल्हापुरका पुरातत्व दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षका द्योतक है। वहांके इरविन म्यूज़ियममें एक शिलालेख शाका दसवीं शताब्दिका है जिससे प्रगट है कि दण्डनायक दासीमरसने राजा जगदेक मल्लके दूसरे वर्षके राज्यमें एक ग्राम धर्मार्थ दिया था। उस समय यापनीयसङ्घ पुन्नागवृक्षमूलगण राद्धान्तादिके ज्ञाता परमविद्वान् मुनि कुमार कीर्तिदेव विराजितथे×। उपरान्त कोल्हापुरके शिलाहार वंशी राजाभी दिगम्बर मुनियोंके परमभक्तथे। वहांके एक शिलालेखसे प्रकट है कि "शिलाहार वंशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्यने माघ

---

‡ बंप्राजैस्मा० पृ० १२७

* बंप्राजैस्मा०, पृ० १४३   × जैनमित्र वर्ष ३३ अङ्क ५ पृ०७१

सुदी १५ शाका १०६५ को एक खेत और एक मकान श्री पार्श्वनाथजीके मन्दिरमें अष्टद्रव्य पूजाके लिये दिया। इस मन्दिरको मूलसंघ देशीयगण पुस्तक गच्छके अधिपति श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्बराचार्य) के शिष्य सामन्त कामदेवके आधीनस्थ वासुदेवने बनवायाथा। दानके समय राजाने श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेवके शिष्य माणिक्यनन्दि पं० के चरण धोये थे।" बमनी ग्रामसे प्राप्त शाका १०७३ के लेख से प्रगट है कि "शिलाहार राजा विजयादित्यने जैनमन्दिरके लिये श्रीकुन्दकुन्दान्वयी श्रीकुलचन्द्र मुनिके शिष्य श्रीमाघनंदि सिद्धान्तदेवके शिष्य श्रीअर्हनन्दि सिद्धान्तदेवके चरण धोकर भूमिदान कियाथा †।" इनसे उस समय दिगम्बर मुनियोंका प्रमुत्व स्पष्ट है।

आरटाल शिला-लेख में चालुक्य राज रजित दिगम्बर मुनि—आरटाल (धाड़वाड़) से एक शिलालेख शाका १०४५ का चालुक्यराज भुवनेकमल्लके राज्य कालका मिलाहै। उसमें एक जैनमन्दिर बननेका उल्लेखहै तथा दिगम्बरमुनि श्री कनकचन्द्रजीके विषयमें निम्नप्रकार वर्णन है‡ :—

"स्वस्ति यम—नियम—स्वाध्याय—ध्यान—मौनानुष्ठान—समाधिशील—गुण-संपन्नरप्प कनक-चन्द्र सिद्धान्त देवः।"

---

† बंप्राजैस्मा०, पृ० १५३-१५४ ‡ दिजैडा०, पृ० ७४१

इससे उस समय के दिगम्बर मुनियोंकी चारित्रनिष्ठा का पता चलता है।

ग्वालियर और दूबकुंड के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि—ग्वालियरका पुरातत्व ईस्वी ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दि तक वहां पर दिगम्बर मुनियोंके अभ्युदयको प्रगट करता है। ग्वालियर किले में इस कालकी बनी हुई अनेक दिगम्बर मूर्तियां हैं, जो बाबरके विध्वंसक हाथसे बच गईहैं। उनपर कई लेखभी हैं, जिनमें दिगम्बर गुरुओंका वर्णन मिलताहै +। ग्वालियरके दूबकुण्ड नामक स्थानसे मिला हुआ एक शिलालेख सन् १०८८ में दिगम्बर मुनियोंके संघका परिचायकहै। यह लेख महाराज विक्रमसिंह कछवाहाका लिखाया हुआहै, जिसने श्रावक ऋषिको श्रेष्ठीपद प्रदान किया था और जो अपने भुजविक्रमके लिये प्रसिद्धथा। इस राजाने दूबकुण्डके जैनमन्दिरके लिये दान दियाथा और दिगम्बर मुनियोंका सम्मान कियाथा। ये दिगम्बर मुनिगण श्रीलाट-वागटगणके थे और इनके नाम क्रमशः (१) देवसेन (२) कुल-भूषण (३) श्रीदुर्लभसेन (४) शांतिसेन और (५) विजयकीर्ति थे। इनके श्री देवसेनाचार्य ग्रंथरचनाके लिये प्रसिद्धथे और श्रीशांतिसेन अपनी वादकलासे विपक्षियोंका मद चूर्ण करतेथे ×।

+ मप्राजैस्मा०, पृ० ६५-६६

× मप्राजैस्मा०, पृ० ७१-८४—"श्रीलाटवागटगणोन्नतरोहणाद्रि

खजराहा के लेखों में दि० मुनि—खजराहाके जैन मन्दिरमें एक लेख संवत् १०११ का है। इस से दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासव चन्द्रः) का पता चलता है। वह धाङ्गराना द्वारा मान्य सरदार पाहिलके गुरु थे।*

झालरापाटनमें दि० मुनियोंकी निषिधिकायें—झालरापाटन शहरके निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियोंके कई समाधिस्थान हैं। उन परके लेखोंसे प्रगट है कि सं० १०६६ में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री बलदेवाचार्यने समाधिमरण किया था।†

अलवरराज्य के लेखों में दि० मुनि—अलवर राज्यके नौगमा ग्राममें स्थित दि० जैन मन्दिरमें श्री अनन्तनाथ जी की एक कायोत्सर्ग मूर्त्ति है जिसके आसन पर लिखा है कि सं० ११७५ में आचार्य विजयकीर्त्तिके शिष्य नरेन्द्रकीर्त्तिने उसकी प्रतिष्ठा की थी।‡

माणिक्यभूतचरितोगुरु देवसेन। सिद्धान्तोद्भिविधोप्यवाधितधिया येनप्रमाध्वनि। ग्रंथेषु प्रभवः श्रियामवगतो हस्तस्थ मुक्तोपमः।··· ·····आस्थानाधिपतौ बुधादविगुणे श्रीभोजदेवे नृपे सभ्येष्वंबरसेन पण्डित शिरोरत्नादिषूद्यन्महान्। योनेकान्शतसो अजेष्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिनः। शास्त्रांभोनिधिपारगो भवदन्तः श्री शान्तिसेनो गुरुः।"

* मप्राजैस्मा०, पृ० ११७

† Ibid. p. 191

‡ Ibid. p. 195

देवगढ़ (झांसी) के पुरातत्वमें दि० मुनि— देवगढ़ (झांसी) का पुरातत्व वहां तेरहवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षका द्योतक है। नग्न मूर्त्तियोंसे सारा पहाड़ ओत प्रोत है। उन परके लेखोंसे प्रगट है कि ११ वीं शताब्दिमें वहां एक शुभदेवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे। सं० १२०६ के लेखमें दिगम्बर गुरुओंकी भक्त आर्यिका धर्मश्रीका उल्लेख है। सं० १२२४ का शिलालेख पण्डित मुनिका वर्णन करता है। सं० १२०७ में वहां आचार्य जयकीर्त्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्योंमें भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थीं। धर्मनन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य, व्याख्याता माघनन्दि, लोकनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियोंका भी उल्लेख मिलता है। नं० २२२ की मूर्त्ति मुनि—आर्यिका—श्रावक—श्राविका, इसप्रकार चतुर्विधसङ्घके लिये बनीथी +। ग़र्ज़ यह कि देवगढ़में लगातार कई शताब्दियों तक दिगम्बर मुनियोंका दौरदौरा रहा था।

बिजोलिया (मेवाड़) में दिग० साधुओं की मूर्त्तियाँ—बिजोलिया (पार्श्वनाथ—मेवाड़) का पुरातत्वभी वहां पर दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षको प्रगट करता है। वहां पर कई एक दिगम्बर मुनियों की नग्न प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक मानस्थम्भ पर तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियोंके साथ दिगम्बर मुनिगणके प्रतिबिम्ब व चरणचिन्ह अङ्कित हैं। दो मुनि·

+ दे़जै०, पृ० १३—२५

राज शास्त्रस्वाध्याय करते प्रगट किये हैं। उनके पास कमंडल पीछी रक्खे हुये हैं। वे अजमेरके चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे×। शिलालेखोंसे प्रगट है कि यहाँ पर श्री मूलसङ्घके दिगम्बराचार्य श्री वसन्तकीर्त्तिदेव, विशालकीर्त्तिदेव, मदनकीर्त्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्त्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और शुभचन्द्रदेव विद्यमान् थे+। इनको चौहान राजा पृथ्वीराज और सोमेश्वरने जैनमन्दिरके लिये ग्राम भेंट किये थे*। सारांशतः बीजोल्यामें एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

अंजनेरीकी गुफाओंमें दि० मुनि— अंजनेरी और अङ्कई (नासिक ज़िला) की जैन गुफायें वहां पर १२ वीं—१३ वीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वको प्रकट करती हैं। पांडुलेना गुफाओंका पुरातत्वभी इसी बात का समर्थक है †।

बेलगामके पुरातत्वमें राजमान्य दि० मुनि— बेलगामका पुरातत्व वहांपर १२ वीं—१३ वीं शताब्दियोंमें दिगम्बर मुनियोंके महत्वको प्रगट करते हैं, जो राज मान्य थे। यहाँ के राट्टराजाओंने जैनमुनियोंका सम्मान किया था, यह उनके लेखोंसे प्रगट है।

× दिजैडा०, पृ० ४०१   + ममाजैस्मा०, पृ० १३३

* राइ०, पृ० ३६३   † बंप्राजैस्मा०, पृ० ४७—४६

सन् १२०५ के लेखमें वर्णनहै कि बेलगाममें जब राष्ट्र-राजा कीर्त्तिवर्म्मा और मल्लिकार्जुन राज्य कर रहेथे तब श्री शुभचन्द्र भट्टारककी सेवामें राजा वोचाके बनाए गए राष्ट्रोंके जैनमन्दिरके लिये भूमिदान किया गयाथा। एक दूसरा लेख भी इन्हीं राजाओं द्वारा शुभचन्द्रजीको अन्यभूमि अर्पण किये जानेका उल्लेख करताहै। इसमें कार्तवीर्यकी रानीका नाम पद्मावती लिखाहै *। सचमुच उस समय वहां पर दिगम्बर मुनियोंका काफी प्रभुत्वथा।

बेलगामान्तर्गत कोन्नूर स्थानसे भी राष्ट्रराजाका एक शिलालेख शाका १००६ का मिलाहै जिसका भावहै कि "चालु-क्यराजा जयकर्णके आधीन रट्टराज मण्डलेश्वर सेन कोन्नूर आदि प्रदेशोंपर राज्य करताथा, तब बलात्कारगणके वंशधरों को इन नगरोंका अधिपति उसने बना दियाथा। यहांके जैन-मन्दिरोंको चालुक्य राजा कोन्न व जयकर्ण द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख मिलताहै†। इनसे दिगम्बर मुनियोंका महत्व स्पष्ट है।

बेलगाम ज़िलेके कलहोले ग्राममें एक प्राचीन जैनमंदिर है, जिसमें एक शिलालेख राष्ट्रराजा कार्तवीर्य चतुर्थ और मल्लिकार्जुनका लिखाया हुआ मौजूदहै। उसमें श्रीशांतिनाथ जी के मन्दिरको भूमिदान देनेका उल्लेखहै। मंदिरके गुरू श्री मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यकी शाखा हणसांगी वंशकथे। इस

* बंप्राजैस्मा०, पृष्ठ ७४-७५ † Ibid pp. 80—81

वंशके तीन गुरु मलधारी थे, जिनके एक शिष्य सैद्धांतिक नेमिचन्द्रथे। श्रीनेमिचन्द्रके शिष्य शुभचन्द्रथे, जिन्होंने दिगम्बर धर्मकी बहुत उन्नतिकीथी। उनके शिष्य श्रीललितकीर्ति थे‡।

बेलगामज़िलेमें स्थित रायबाग ग्राममेंभी एक जैन शिलालेख राट्टराजा कार्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कार्तवीर्य ने भ० शुभचन्द्र को शाका ११२४ में राट्टों के उन जैनमंदिरोंके लिये दान दियाथा जिन्हें उसकी माता चन्द्रिकादेवीने स्थापित किया था+। इससे चन्द्रिकादेवीका दि० मुनियों और तीर्थङ्करोंका भक्त होना प्रगट है।

बीजापुर किलेकी मूर्तियां दि० मुनियों की द्योतक—बीजापुरके किलेकी दिगम्बर मूर्तियां सं० १००१ में श्री विजयसूरि द्वारा प्रतिष्ठित हैं× । उनसे प्रकट है कि बीजापुरमें उस समय दिगम्बर मुनियोंकी प्रधानता थी।

तेवरी की दि० मूर्ति—तेवरी (जबलपुर) के तालाबमें स्थित दि० जैन मंदिरकी मूर्तिपर बारहवीं शताब्दि का लेखहै कि "मानादित्यकी स्त्री रोज़ नमन करती है"+। इससे वहां पर जैनमुनियोंका राजमान्य होना प्रगट है।

दिल्ली के मूर्ति लेखों में दि० मुनि—दिल्ली नयामंदिर कटघरकी मूर्तियों परके लेख १५ वीं शता-

‡ Ibid pp. 82—83

+ Ibid p. 87 × Ibid p. 108 + दिजैबा०, पृष्ठ १८७

ब्दि में वहां दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व प्रगट करते हैं। श्री आदिनाथकी मूर्ति पर लेखहै कि "सं० १४२८ ज्येष्ठ सुदि १२ सोमवासरे काष्ठासंघे माथुरान्वये भ० श्रीदेवसेनदेवास्तत्पदे त्रयोदशविधचारित्रेनालंकृताः सकल विमल मुनिमंडली शिष्यः शिखामणयः प्रतिष्ठाचार्यवर्य श्री विमलसेनदेवास्तेषामुपदेशेन आइसवालान्वये सा० पुरइपति। इत्यादि।" इन्हीं मुनि विमलसेनकी शिष्या अर्जिका गुणश्री विमलश्री थी, यह बात उसी मंदिरकी एक अन्य मूर्तिपर के लेखसे प्रकट है।

लखनऊके मूर्ति-लेख में निर्ग्रन्थाचार्य—

लखनऊ चौकके जैनमंदिरमें विराजमान श्री आदिनाथकी मूर्ति परके लेखसे विदित है कि सं० १५०३ में श्री भ० सकलकीर्तिके शिष्य श्री निर्ग्रन्थाचार्य विमलकीर्ति थे, जिनका उपदेश और विहार चहुँओर होता था।

चावलपट्टी (बंगाल) के जैनमंदिरमें विराजमान दशधर्म यंत्रलेखसे प्रकट है कि सं० १५८६ में आचार्य श्री रत्नकीर्ति के शिष्य मुनि ललितकीर्ति विद्यमान थे; जिनकी भक्ति भ्रमरीबाई करती थी।*

कलकत्ता की मूर्तियां और दि० मुनि—

यहीं के एक अन्य सम्यक्ज्ञान यंत्रके लेखसे विदित होता है कि सं० १६३४ में विहारमें भ० धर्मचन्द्रजीके शिष्यमुनि श्री बाहुनन्दीका विहार और धर्मप्रचार होता था।†

---

* जैप्रयलेसं०, पृष्ठ २५ † जैप्रयलेसं०, पृ० २६

एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि—कुरावली (मैनपुरी) के जैनमंदिर में विराजमान सम्यक्दर्शनयंत्र परके लेखसे प्रगट है कि सं० १५७८ में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान् थे। उनका विहार संयुक्त-प्रान्तमें होता था †। अलीगंज (एटा) के लेखोंसे मुनिमाघनंदि और मुनि धर्मचन्द्रजीका पता चलता है ‡। इटावा नशियां जी पर कतिपय जैनस्तूप हैं और उनपरके लेखसे यहां अठारहवीं शताब्दिमें मुनि विनयसागरजीका होना प्रमाणित है + । उधर पटनाके श्री हरकचंद वाले जैनमन्दिरमें सं० १९६४ की बनी हुई एक दिगम्बर मुनिकी काष्ठमूर्ति विद्यमान है ×।

सारांशतः उत्तरभारत और महाराष्ट्रमें प्राचीनकालसे बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्व-विषयक साक्षीसे प्रमाणित है। अब यह आवश्यक नहीं है कि और भी अनगिनते शिलालेखादिका उल्लेख करके इस व्याख्याको पुष्ट किया जाय। यदि सबही जैनशिलालेख यहां लिखे जायँ तो इस ग्रंथका आकार-प्रकार तिगना-चौगुना बढ़ जाय, जो पाठकोंके लिये अरुचिकर होगा!

---

† प्राजैलेसं, पृष्ठ ४६ ‡ Ibid p. 70 + Ibid pp. 90—91

× Mr. Ajitaprasada, Advocate, Lucknow reports. "Patna Jain temple renovated in 1964 V. S. by daughter-in-law of Harakchand. On the entrance door is the life-size image in wood of a *muni* with a *Kamandal* in the right hand & the broken end of what must have been a *pichi* in the left."

दक्षिण भारतका पुरातत्व और दि० मुनि—

अच्छा तो अब दक्षिण भारतके शिलालेखादि पुरातत्व पर एक नज़र, डाल लीजिये। दक्षिण भारतकी पाण्डवमलय आदि गुफाओंका पुरातत्व एक अति प्राचीनकालमें वहांपर दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व प्रमाणित करताहै। अनुमनामलें (ट्रावनकोर) की गुफाओंमें दिगंबर मुनियोंका एक प्राचीन आश्रम था। वहांपर दीर्घकाय दिगम्बर मूर्तियां अङ्कित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखोंमें मदुरा और रामनद ज़िलोंसे प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपिके शिलालेख अति प्राचीन हैं। यह अशोककी लिपिमें लिखे हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दिका समझना चाहिये। यह जैनमंदिरोंके पास बिखरे हुये मिले हैं और इनके निकटही तीर्थङ्करोंकी नग्न मूर्तियां भी थीं। अतः इनका संबन्ध जैनधर्मसे होना बहुत कुछ संभव है। इनसे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि से ही जैनमुनि दक्षिण भारतमें प्रचार करने लगे थे +। इन शिलालेखोंके अतिरिक्त दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियोंसे संबन्ध रखने वाले सैकड़ों शिलालेख हैं। उन सबको यहां उपस्थित करना असम्भव है। हां, उनमें से कुछ एक का परिचय हम यहांपर अङ्कित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवण बेलगोलमें ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तकमें किया गया है। अस्तु,

---

+ SSIJ., pt. I pp. 33—35

श्रवण बेलगोलके शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण—पहले श्रवण बेलगोलके शिलालेखों से ही दिगम्बर मुनियोंका महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक सं० ५२२ के शिलालेखसे वहां पर श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावोंने दिगम्बर-वेषमें श्रवणबेलगोलको पवित्र किया था *। शक सं० ६२२ के लेखमें मौनिगुरूकी शिष्या नागमति को तीन मासका व्रत धारण करके समाधिमरण करते लिखा है। इसी समयके एक अन्य लेखमें चरित श्री नामक मुनिका उल्लेख है†। धर्मसेन, बलदेव, पट्टिनिगुरु, उग्रसेन गुरु, गुण-सेन, पेरुमालु, उल्लिकल, तीर्थद, कुलापक आदि दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्वभी इसी समय प्रमाणित है‡। शक सं० ८९६ के लेखसे प्रगट है कि गङ्गराजा मारसिंहने अनेक लड़ाइयां लड़कर अपना भुजविक्रम प्रगट कियाथा और अंतमें अजितसेनाचार्यके निकट बङ्कापुरमें समाधिमरण किया था।+

तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति—शक संवत् १०८५ के लेखसे तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनिका तथा उनके शिष्य लकखनन्दि, माधवेन्दु और त्रिभुवनमल्लका पता चलता है। उनके विषयमें कहा है :—

---

* जैशिसं०, पृ० १-२ † Ibid. p. 3

‡ Ibid. pp. 4—18 + Ibid. p. 20

"कुर्व्वंनमः कपिल-वादि-वनोग्र-वन्हये
चार्व्वाक-वादि-मकराकर-वाडवाग्नये ।
बौद्धोग्रवादितिमिरप्रविभेदभानवे
श्रीदेवकीर्त्तिमुनये कविवादिवाग्मिने ॥"

× × ×

"चतुर्म्मुख चतुर्व्वक्त्रनिर्ग्गमागमदुस्सहा ।
देवकीर्तिमुखाम्भोजे नृत्यतीति सरस्वती ॥"

सचमुच मुनि देवकीर्तिजी अपने समयके अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे। वे महामण्डलाचार्य और विद्वान् थे और उनके समस्त सांख्यिक, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, बौद्ध आदि सभी दार्शनिक हार मानते थे।*

महाकविमुनि श्री श्रुतकीर्ति—उक्त समयके एक अन्य शिलालेखमें मुनि देवकीर्तिकी गुरुपरम्परा दी है; जिससे प्रकट है कि मुनि कनकनन्दि और देवचन्द्रके भ्राता श्रुतकीर्ति त्रैविद्य मुनिने देवेन्द्र सदृश विपक्षवादियोंको पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राघव-पाण्डवीयकी रचना की थी, जो आदिसे अन्तको व अन्तसे आदिको, दोनों ओर पढ़ा जा सके। इससे प्रकट है कि उपरोक्त मुनि देवकीर्तिके शिष्य यादव-नरेश नारसिंह प्रथमके प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे।†

श्री शुभचन्द्र और रानी जक्कणब्बे—शक सं० १०९९ के लेखमें मंत्री नागदेवके गुरु श्री नयकीर्ति

---

* जैशिसं०, पृ० २१-२४ † Ibid pp. 24—30

योगीन्द्र व उनकी गुरुपरम्पराका उल्लेख है ‡। शक सं० १०४५ के लेखसे प्रगट है कि होयसाल महाराज गङ्गनरेश विष्णुवर्द्धनने अपने गुरु शुभचन्द्रदेवकी निषद्या निर्माण कराई थी। इनकी भावज अवक्कणव्वेकी जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा थी और वह दिगम्बर मुनियोंको दानादि देकर सत्कार किया करती थी + । उनके विषयमें निम्नप्रकार उल्लेख है :—

"दोरेये जक्कणिकव्वेगी भुवनदोल् चारित्रदोल् शीलदोल्
परमश्रीजिनपूजेयोल् सकलदानाश्चर्य्यदोल् सत्यदोल्।
गुरुपादाम्बुजभक्तियोल् विनयदोल् भव्यकर्कलंकन्दरा—
दरिदं मन्निसुतिर्प्प पेम्पिनेडेयोल् मत्तन्यकान्ताजनम् ॥"

श्रीगोल्लाचार्य प्रभृत अन्य दिगंबराचार्य

शक सं० १०३७ के लेखमें है कि मुनि त्रैकाल्ययोगीके तपके प्रभाव से एक ब्रह्म-राक्षस उनका शिष्य होगया था। उनके स्मरणमात्रसे बड़े २ भूत भागते थे, उनके प्रतापसे करञ्जका तैल घृतमें परिवर्तित होगया था। गोल्लाचार्य मुनि होने के पहले गोल्लदेशके नरेश थे। नूत्न चन्दिल नरेशके वंश चूड़ामणि थे। सकलचन्द्रमुनिके शिष्य मेघचन्द्र त्रैविद्य थे, जो सिद्धान्तमें वीरसेन, तर्कमें अकलङ्क और व्याकरणमें पूज्यपाद के समान विद्वान् थे × । शक सं० १०४४के लेखमें दण्डनायक गङ्गराजकी धर्मपत्नी लक्ष्मीमतिके गुण, शील और दानकी

---

‡ Ibid. pp. 33—42 + Ibid. pp. 43--49
× Ibid. pp. 56--66

प्रशंसा है। वह दिगम्बराचार्य श्री शुभचन्द्रजी की शिष्या थीं। इन्हीं आचार्यकी एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राजसम्मानित चामुण्डकी स्त्री देवमति थी ÷। शक सं० १०६८ के लेखमें अन्य दिगम्बर मुनियोंके साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख वादमें बौद्ध, मीमांसकादि कोई भी नहीं ठहर सकता था। इसीमें श्री प्रभाचन्द्रजी की शिष्या विष्णुवर्द्धन नरेशकी पटरानी शान्तलदेवीकी धर्मपरायणताका भी उल्लेख है।+

शक सं० १०५० के लेखमें श्री महावीर स्वामीके बाद दि० मुनियोंकी शिष्यपरंपराका बखान है; जिनमें श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्य्यका भी उल्लेख है। कुन्द-कुन्दाचार्यके चारित्र-गुणादिका परिचयभी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य

इन आचार्यको एक अन्य शिलालेखमें मूलसंघका अग्रणी लिखा है। उन्होंने चारित्रकी श्रेष्ठतासे चारणऋद्धि प्राप्तकी थी, जिसके बलसे वह पृथ्वीसे चार अंगुल ऊपर चलते थे×। श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषयमें कहा गया है :—

"पूर्व्वं पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताड़िता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये कांचीपुरे वैदिशे।

÷Ibid, pp. 67--70   +Ibid., pp. 80--81
×Ibid., Intro., p. 140

प्राप्तोऽहंकरहाटकं बहु-भटं विद्योत्कटं सङ्कटं
वादार्थी विचराम्यहन्नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥७॥
अवटु-तटमटतिझटिति स्फुट-पटु-वाचाट धूर्ज्जटेरपिजिह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवतितवसदसि भूपकास्थान्येषां ॥८॥"

भाव यही है कि श्री समन्तभद्रस्वामीने पहले पाटलिपुत्र नगरमें वादभेरी बजाई थी। उपरान्त वह मालव, सिंधु, पञ्जाब, कांचीपुर, विदिशा आदिमें वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड़) पहुँचे थे और वहाँ की राजसभामें वाद-गर्जना की थी। कहते हैं कि वादी समन्तभद्रकी उपस्थितिमें चतुराईके साथ स्पष्ट, शीघ्र और बहुत बोलने वाले धूर्जटिकी जिह्वा ही जब शीघ्र अपने बिलमें घुस जाती है—उसे कुछ बोल नहीं आता—तो फिर दूसरे विद्वानोंकी तो कथा ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्रके सामने कुछभी महत्व नहीं रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैनधर्मके अनुपम रत्न थे। उनका वर्णन अनेक शिला लेखोंमें गौरवरूपसे किया गया है। तिरुमकूडलु नरसीपुर ताल्लुकेके शिलालेख नं० १०५ के निम्न पद्यमें उनके विषयमें ठीक ही कहा गया है कि:—

समन्तभद्रस्संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः ॥

अर्थात्—"वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी (बनारस) के राजाके सामने शत्रुओंको—मिथ्यैकान्तवादियोंको—परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नहीं हैं? वे सभीके द्वारा स्तुति किये जानेके योग्य हैं।"

शिवकोटि नामक राजाने श्री समन्तभद्रजीके उपदेशसे ही जैनेन्द्रीय दीक्षा ग्रहणकी थी।

श्री वक्रग्रीव आदि दिगम्बराचार्य—

दिगम्बराचार्य श्री वक्रग्रीवके विषयमें उपरोक्त श्रवणबेलगोलीय शिला लेख बताता है कि वे छः मास तक 'अथ' शब्द का अर्थ करने वाले थे। श्री पात्रकेसरी गुरू त्रिलक्षण सिद्धान्तके खण्डनकर्त्ता थे। श्रीवर्द्धदेव चूड़ामणि काव्यके कर्त्ता कवि दण्डी द्वारा स्तुत्य थे। स्वामी महेश्वर ब्रह्मराक्षसोंद्वारा पूजित थे। अकलङ्क स्वामी बौद्धोंके विजेताथे। उन्होंने साहसतुङ्ग नरेशके सन्मुख, हिमशीतल नरेशकी सभामें उन्हें परास्त किया था। विमलचन्द्र मुनिने शैव पाशुपतादिवादियोंके लिये 'शत्रुभयङ्कर' के भवनद्वार पर नोटिस लगा दिया था। पर वादिमल्लने कृष्णराजके समक्ष वाद कियाथा। मुनि वादिराज ने चालुक्यचक्रेश्वर जयसिंहके कटकमें कीर्त्ति प्राप्तकी थी। आचार्य शान्तिदेव होयशाल नरेश विनयादित्य द्वारा पूज्य थे। चतुर्म्मुखदेव मुनिराजने पाण्ड्य नरेशसे 'स्वामी' की उपाधि प्राप्त की थी और आहवमल्लनरेशने उन्हें 'चतुर्मुखदेव' रूपी सम्मानित नाम दिया था। ग़र्ज़ यह कि यह शिला लेख दिग० मुनियोंके गौरव-गाथासे समन्वित है।*

दिगम्बराचार्य श्री गोपनन्दि—शक सं० १०२२ (नं० ५५) के शिला लेखसे जाना जाता है कि मूल सङ्घ

---

* जैशिसं०, पृ० १०१—११४

देशीयगण आचार्य गोपनन्दि बहु प्रसिद्ध हुए थे। 'वह बड़े भारी कवि और तर्कप्रवीण थे। उन्होंने जैनधर्मकी वैसी ही उन्नति की थी जैसी गङ्गनरेशोंके समयमें हुई थी। उन्होंने धूर्जटिकी जिह्वाको भी स्थगित कर दिया था।' देशदेशान्तरमें विहार करके उन्होंने सांख्य, बौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतोंको हीनप्रभ बना दिया था। वह परम-तपके निधान, प्राणीमात्रके हितैषी और जैन शासनके सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे †। होयसलनरेश एरेयङ्ग उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें भेंट किये थे। ×

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र—इसी शिला लेखमें मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषयमें लिखा है कि वे एक सफल वादीथे और धारानरेश भोजने अपना शीश उनके पवित्र चरणोंमें रक्खा था। ‡

श्री दामनन्दि—श्री दामनन्दिमुनिको भी इस शिला लेखमें एक महावादी प्रगट किया गया है, जिन्होंने बौद्ध, नैयायिक और वैष्णवोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था। महावादी 'विष्णु-भट्ट'को परास्त करनेके कारण वे 'महावादि विष्णुभट्टघरट्ट' कहे गये हैं। *

---

† जैशिसं०, पृ० ११७ 'परमतपो निधान, वसुधैककुटुम्बजैनशासनाम्बर-परिपूर्णचन्द्र-सकलागम — तत्व-पदार्थ-शास्त्र-विस्तर-वचनाभिराम गुण-रत्न-विभूषण गोपणन्दिः।'

× जैशिसं०, पृ० ३६५ ‡ जैशिसं०, पृ० ११८

* "बौद्धोर्व्वीधर-शम्बः नैयायिक-कञ्ज-कुञ्ज-विधु-बिम्बः। श्री दामनन्दिविबुधः क्षुद्र-महावादि-विष्णुभट्ट-घरट्ट ॥१६॥"
—जैशिसं०, पृ० ११८

श्री जिनचन्द्र—श्री जिनचन्द्र मुनिको यह शिलालेख व्याकरणमें पूज्यपाद, तर्कमें भट्टाकलङ्क और साहित्यमें भारवि बतलाता है।†

चालुक्यनरेश-पूजित श्री वासवचन्द्र—श्री वासवचन्द्र मुनिने चालुक्य नरेशके कटकमें 'बाल-सरस्वती' की उपाधि प्राप्तकी थी, यहभी इस शिलालेखसे प्रगट है। स्याद्वाद और तर्क शास्त्रमें यह प्रवीण थे।‡

सिंहलनरेश द्वारा सम्मानित यशःकीर्त्ति मुनि—श्री यशःकीर्त्ति मुनिको उक्त शिला लेख सार्थक नाम बताता है। वे विशाल कीर्त्तिको लिये हुये स्याद्वाद-सूर्य ही थे। बौद्धादि वादियोंको उन्होंने परास्त किया था। तथा सिंहल-नरेशने उनके पूज्यपादोंका पूजन कियाथा। +

श्रीकल्याण कीर्त्ति—श्री कल्याण कीर्त्ति मुनि

---

† जैनेन्द्र पूज्य (पादः) सकलसमयतर्के च भट्टाकलङ्कः।
साहित्ये भारविस्स्यात्कवि-गमक-महावाद-वाग्मित्व-रुन्द्रः।
गीते वाद्ये च नृत्ये दिशि विदिशि च संवर्ति सत्कीर्त्ति मूर्तिः।
स्थेयाश्श्रीयोगिवृन्दार्चितपद जिनचन्द्रो वितन्द्रोमुनीन्द्रः॥

‡ जैशिसं०, पृ० ११६—"चालुक्य-कटक-मध्ये बाल-सरस्वतिरिति प्रसिद्धिं प्राप्तः।"

+ "श्रीमान्यशःकीर्ति-विशालकीर्ति स्स्याद्वाद-तर्काब्ज-विबोधनार्कः।
बौद्धादि-वादि-द्विप-कुम्भ-भेदी श्री सिंहलाधीश-कृतार्घ्य पादः ॥२६॥"

को उक्त शिलालेख जीवोंके लिये कल्याणकारक प्रगट करता है। वह शाकनी आदि बाधाओंको दूर करनेमें प्रवीण थे।×

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र बड़े सैद्धान्तिक बताये गये हैं। वे तीन मुट्ठी अन्नका ही आहार करतेथे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिगम्बर मुनियोंकी गौरव-गाथाको जाननेके लिये एक अच्छा साधन है।+

वादीन्द्र अभयदेव—शक सं० १३२० (नं० १०५) के शिलालेखमें भी अनेक दिगम्बराचार्योंको कीर्त्ति गाथाका बखान है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने बौद्धादि परवादियोंको प्रतिभाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चारुकीर्तिके विषयमें कही गई है।*

होयसाल वंशके राजगुरु दि० मुनि—शक सं० १२०५ (नं० १२९) में होयसाल वंशके राजगुरु महामण्डलाचार्य माघनंदि का उल्लेख है; जिनके शिष्य बेल्गोल के जौहरी थे।‡

योगी दिवाकरनन्दि—नं० १३९ के शिलालेख में योगी दिवाकरनन्दि तथा उनके शिष्योंका वर्णन है। एक

× कल्याणकीर्ति नामाभूद्भव्य-कल्याण कारकः।
शाकिन्यादि-ग्रहाणांच निर्द्धाटन-दुर्द्धरः॥ -जैशिसं०, पृ० १२१

+ "मुष्टि-त्रय-प्रमिताशन-तुष्टः शिष्ट-प्रिय त्रिमुष्टिमुनीन्द्रः।"

* जैशिसं०, पृ० १९८-२०७

‡ Ibid., p. 253

गन्ती नामक भद्रमहिलाने उनसे दीक्षा लेकर समाधिमरण किया था। ×

एकसौ आठवर्ष तपकरनेवाले दि० मुनि—नं० १५६ शिलालेख प्रगट करता है कि कालन्तूरके एक मुनिराजने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिमरण किया था। +

गर्ज़ यह है कि श्रवण बेलगोलके प्रायः सब ही शिलालेख दिगम्बर मुनियोंकी कीर्ति और यशको प्रगट करते हैं। राजा और रङ्क सब ही का उन्होंने उपकार किया था। रणक्षेत्रमें पहुँच कर उन्होंने वीरोंको सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री-पुरुष, सबही उनके भक्त थे।

दक्षिण भारत के अन्य शिला लेखों में दिग० मुनि—श्रवण बेलगोलके अतिरिक्त दक्षिण भारत के अन्य स्थानोंसे भी अनेक शिला लेख मिले हैं, जिनसे दिगम्बर मुनियोंका गौरव प्रकट होता है। उनमें से कुछका संग्रह प्रो० शेषगिरिरावने प्रगट किया है; जिससे विदित होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखोंमें यम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान धारण-मौनानुष्ठान-जप-समाधि—शीलगुण—सम्पन्न लिखे गये हैं *। उनका यह विशेषण उन्हें एक सिद्ध-योगी प्रगट करता है। प्रो० सा० उनके विषयमें लिखते हैं कि :—

× Ibid., p. 289

+ Ibid., p. 308

* SSIJ., pt. II p. 6

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra-Karnata desa. They were not only the leaders of lay and ascetic disciples, but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands." †

भावार्थ—"उक्त शिलालेख-संग्रहसे उन महान् दिगंबर मुनियों और आचार्योंका परिचय मिलता है, जिन्होंने आँध्र-कर्णाट देशमें जैनधर्मका संदेश विस्तृत किया था। वे मात्र श्रावक और साधु शिष्योंके ही नेता नहींथे, बल्कि उन क्षत्रिय कुलोंके राजवंशोंके नेताथे कि जिनके हाथोंमें उन देशोंकी प्रजा के भाग्यकी बागडोर थी।"

दिगम्बराचार्यों का महत्व पूर्ण कार्य—

सचमुच दिगम्बर मुनियोंने बड़े २ राज्योंकी स्थापना और उनके संचालनमें गहरा भाग लिया था। पुलल (मद्रास) के पुरातत्वसे प्रगट है कि एक दिगम्बराचार्यने असभ्य कुटुम्बों को जैनधर्ममें दीक्षित करके सभ्य शासक बना दिया था। वे जैनधर्मके महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म लगनसे प्रेरित हो कर बड़ी २ लड़ाइयां लड़ी थीं‡। उनने ही क्या, बल्कि दिगम्बराचार्योंके अनेक राजवंशी शिष्योंने धर्म संग्राममें अपना भुज-विक्रम प्रगट किया था। जैन शिलालेख उनकी रणगाथा-

† Ibid., p. 68 ‡ OII., p. 236

ओंसे ओतप्रोत हैं। उदाहरणतः गङ्गसेनापति क्षत्रचूड़ामणि श्री चामुण्डरायको ही लेलीजिए, वह जैनधर्मके दृढ़ श्रद्धानी ही नहीं; बल्कि उसके तत्वके ज्ञाता थे । उन्होंने जैनधर्म पर कई श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखे हैं और वह श्रावकके धर्माचारका भी पालन करते थे; किन्तु उस परभी उन्होंने एक नहीं अनेक सफल संग्रामोंमें अपनी तलवारका जौहर ज़ाहिर कियाथा+। सचमुच जैनधर्म मनुष्यको पूर्ण स्वाधीनताका सन्देश सुनाता है। जैनाचार्य निःशङ्क और स्वाधीन होकर वही धर्मोपदेश जनताको देतेहैं जो जनकल्याणकारी हो। इसीलिये वह 'वसुधैवकुटम्बक' कहे गये हैं। भीरुता और अन्याय तो जैनमुनियों के निकट फटकभी नहीं सकता है।

प्रो० सा० के उक्त संग्रहमें विशेष उल्लेखनीय दिगम्बराचार्य श्री भावसेन त्रैवेद्य चक्रवर्त्ती, जो वादियोंके लिये महाभयानक (Terror to disputant) थे, वह और बवराज के गुरू (Preceptor of Bava king) श्री भावनन्दि मुनि हैं×। अन्य श्रोतसे प्रगट है कि—

उपरान्त के शिलालेखोंमें दि० मुनि—

सन् १४७८ ई० में जिञ्जीप्रदेशमें दिगम्बराचार्य श्री वीरसेन बहु प्रसिद्ध हुये थे। उन्होंने लिङ्गायत-प्रचारकोंके समक्ष वादमें विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगोंको पुनः

+ वीर, वर्ष ७ पृ० २—११

× SSIJ., pt. VI pp. 61—62

जैनधर्ममें दीक्षित किया था* । कारकलमें राजा वीरपाण्ड्यने दिगम्बराचार्योंको आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् १४३२ में श्री गोम्मट-मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जिसे उन्होंने स्थापित कराया था। एक ऐसीही दिगम्बर मूर्तिकी स्थापना वेणूरमें सन् १६०४ में श्री तिम्मराज द्वारा की गई थी। उस समयभी दिगम्बराचार्यों ने धर्मोद्योत किया था। सन् १५३० के एक शिलालेखसे प्रगट है कि श्रीरंगनगरका शासक विधर्मी होगया था, उसे जैनसाधु विद्यानन्दिने पुनः जैनधर्ममें दीक्षित किया था।‡

दि० मुनि श्री विद्यानंदि—इसी शिलालेख से यहभी प्रगट है कि "इन मुनिराजने नारायणपट्टनके राजा नंददेवकी सभामें नंदनमल्ल भट्टको जीता, सातवेन्द्र राजा केशरीवर्माकी सभामें वादमें विजय पाकर 'वादी' पाया, सालुवदेव राजाकी सभामें महान विजय पाई, बिलिगे के राजा नरसिंहकी सभामें जैनधर्मका माहात्म्य प्रगट किया, कारकल नगरके शासक भैरव राजाकी सभामें जैनधर्मका प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णरायकी राजसभामें विजयी हुए, कोपन व अन्य तीर्थों पर महान उत्सव कराये, श्रवणबेलगोल के श्री गोम्मटस्वामीके चरणोंके निकट आपने अमृतकी वर्षा के समान योगाभ्यासका सिद्धांत मुनियोंको प्रगट किया, जिरसप्पामें प्रसिद्ध हुये, उनकी आज्ञानुसार श्रीवरदेव राजा

* वीर, वर्ष ५ पृष्ठ २४६ ‡ मैघ०, पृ० ७० व DG.

ने कल्याण पूजा कराई और वह संगी राजा और पद्मपुत्र कृष्णदेवसे पूज्य थे।+" वह एक प्रतिभाशाली साधु थे और उनके अनेक शिष्य दिगम्बर मुनिगण थे।

सारांशतः दक्षिण-भारतके पुरातत्वसे वहां दिगम्बर मुनियोंका प्रभावशाली अस्तित्व एक प्राचीनकालसे बराबर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भरका पुरातत्व दिगम्बर जैन मुनियोंके महती उत्कर्षका द्योतक है।

[२४]

विदेशों में दिगम्बर मुनियोंका विहार।

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture. For example, they were told, the Buddhistic missionaries and Jaina monks went forth to Greece and Rome and to places as far as Norway and had spread their culture.' $

—Prof. M. S. Ramaswamy Iyengar.

जैन पुराणोंके कथनसे स्पष्ट है कि तीर्थङ्करों और श्रमणोंका विहार समस्त आर्यखंडमें हुआ था। वर्तमानकी

+ मजैस्मा०, पृ० ३२०—३२१

$ The "Hindu" of 25th July 1919 & JG. XV27

जानी हुई दुनियांका समावेश आर्यखंडमें हो जाता है †। इसलिये यह मानना ठीक है कि अमरीका, यूरोप, ऐशिया आदि देशोंमें एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहां दिगम्बर-मुनियोंका विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बातको प्रकट करते हैं कि बौद्ध और जैनभिक्षुगण यूनान, रोम और नारवे तक धर्म प्रचार करते हुये पहुँचे थे!

किन्तु जैनपुराणोंके वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रगट होताहै कि दिगम्बर मुनि विदेशोंमें अपने धर्मका प्रचार करनेको पहुँचे थे। भ० महावीरके विहार विषयमें कहा गया है कि वे आकनीय, तृकार्थप, वाल्हीक, यवनश्रुति, गांधार क्राथतोय, तार्ण और कार्ण देशोंमें भी धर्म-प्रचार करते हुये पहुँचे थे ÷। ये देश भारतवर्षके बाहरही प्रगट होते हैं। आकनीय संभवतः आकसीनिया (Oxiana) है। यवनश्रुति यूनान अथवा पारस्यका द्योतक है। वाल्हीक बल्ख (Balkh) है। गांधार कंधार है। क्राथतोय रेड-सी (Red Sea) के निकटके देश हो सकते हैं। तार्ण-कार्ण तूरान आदि प्रतीत होते हैं*। इस दशामें कंधार, यूनान, मिश्र आदि देशोंमें भगवानका विहार हुआ मानना ठीक है +।

---

† भपा०, १४६-१४७

÷ हरिवंशपुराण, सर्ग ३ श्लो० ३-७

* वीर, वर्ष ६ अङ्क ७

+ संजैइ०, भा० २ पृ० १०२-१०३

सिकन्दर महान्‌के साथ दिगम्बर मुनि कल्याण यूनान के लिये यहांसे प्रस्थानित होगये थे और एक अन्य दिगंबराचार्य यूनान धर्मप्रचारार्थ गये थे, यह पहले लिखा आ चुका है। यूनानी लेखकोंके कथनसे बैक्ट्रिया (Bactria) ‡ और इथ्यूपिया (Ethiopia) * नामक देशोंमें श्रमणोंके विहारका पता चलताहै। ये श्रमणगण दि० जैनही थे, क्योंकि बौद्ध श्रमण तो सम्राट् अशोकके उपरान्त विदेशोंमें पहुँचेथे।

अफ्रीकाके मिश्र और अबीसिनिया देशोंमें भी एक समय दिगम्बर मुनियोंका विहार हुआ प्रगट होता है; क्योंकि वहां की प्राचीन मान्यतामें दिगम्बरत्वको विशेष आदर मिला प्रमाणितहै । मिश्रमें नग्न मूर्तियांभी बनीथीं और वहांकी कुमारी सेंटमेरी (St. Mary) दिगम्बर साधुके भेषमें रहीथी। मालूम होताहै कि रावणकी लङ्का अफ्रीकाके निकटही थी और जैनपुराणोंसे यह प्रगटही है कि वहां अनेक जैनमन्दिर और दिगम्बर मुनिथे।†

यूनानमें दिगम्बर मुनियोंके प्रचारका प्रभाव काफी हुआ प्रगट होताहै। वहांके लोगोंमें जैनमान्यताओंका आदर होगयाथा। यहां तक कि डायजिनेस (Diogenes) और सम्भवतः पैर्हो (Pyrrho of Elis) नामक यूनानी तत्व

---

‡ AI. p. 104

* AR., III.p 6. व जैन होस्टल मैगज़ीन भाग ११ पृ० ९

† भपा०, पृ० १६०-२०१

वेषा दिगम्बर वेषमें रहेथे ‡। पैरहोने दिगम्बर मुनियोंके निकट शिक्षा ग्रहणकी थी। यूनानियोंने नग्न मूर्तियांभी बनाईथीं; जैसे कि लिखा जा चुकाहै।

जब यूनान और नारवे जैसे दूरके देशोंमें दिगम्बर मुनिगण पहुँचेथे, तो भला मध्य-ऐशियाके अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशोंमें वे क्यों न पहुंचते ? सचमुच दिगम्बर मुनियोंका विहार इन देशोंमें एक समयमें हुआथा। मौर्य सम्राट् सम्प्रतिने इन देशोंमें जैन श्रमणोंका विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जाचुकाहै। मालूम होताहै कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयासमें सफल हुयेथे, क्योंकि यह पता चलताहै कि इस्लाम मज़हबकी स्थापनाके समय अधिकांश जैनी अरब छोड़कर दक्षिण-भारतमें आ बसेथे +। तथा हुएन सांगके कथनसे स्पष्टहै कि ईस्वी सातवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनिगण अफ़गानिस्तानमें अपने धर्मका प्रचार करते रहेथे ×।

दिगम्बर मुनियोंके धर्मोपदेशका प्रभाव इस्लाम-मज़हब पर बहुत-कुछ पड़ा प्रतीत होताहै। दिगम्बरत्वके सिद्धांतका इस्लाम-मज़हबमें मान्य होना, इस बातका सबूतहै। अरबी

---

‡ NJ., Intro. p. 2 & "Diogenes Lacrtius (IX. 61 & 63) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return the Elis imitated their habits of life." —EB., XII. 753

+ Ar., IX. 284 × हुभा०, पृ० ३७

कवि और तत्ववेत्ता अबु-ल्-अला (Abu-l-Ala; ई० ९७३—१०५८)की रचनाओंमें जैनत्वकी काफ़ी झलक मिलती है। अबु-ल्-अला शाकभोजी तो थेही; परन्तु वह म० गाँधीकी तरह यहभी मानतेथे कि एक अहिंसकको दूध नहीं पीना चाहिये। मधुकाभी उन्होंने जैनोंकी तरह निषेध कियाथा। अहिंसा धर्मको पालनेके लिये अबुल्-अलाने चमड़ेके जूतोंका पहननाभी बुरा समझाथा और नग्न रहना वह बहुत अच्छा समझतेथे। भारतीय साधुओंका अन्तसमय अग्निचितापर बैठकर शरीरको भस्म करते देखकर, वह बड़े आश्चर्यमें पड़ गयेथे। इन सब बातोंसे यह स्पष्टहै कि अबु-ल्-अला पर दिगम्बर जैनधर्मका काफी प्रभाव पड़ा था और उनने दिगम्बर मुनियों को सल्लेखनाव्रतका पालन करते हुये देखा था ÷। वह अवश्यही दिगम्बर मुनियोंके संसर्गमें आये प्रतीत होते हैं। उनका अधिक समय बग़दादमें व्यतीत हुआथा।

लङ्का (Ceylon) में जैनधर्मकी गति प्राचीनकालसे है। ईस्वीपूर्व चौथी शताब्दिमें सिंहलनरेश पाण्डुकाभयने वहाँ के राजनगर अनुरुद्धपुरमें एक जैनमन्दिर और जैनमठ बनवायाथा। निर्ग्रन्थ साधु वहाँ पर निर्वाध धर्मप्रचार करतेथे। इक्कीस राजाओंके राज्यतक वह जैनविहार और मठ वहाँ मौजूद रहेथे, किन्तु ई० पू० ३८ में राजा वट्टगामिनीने उनको नष्ट कराकर उनके स्थानपर बौद्ध विहार बनवायाथा *।

÷ जैध०, पृ० ४६६ * महावंश, AISJ p. 37

उसपरभी, दिगम्बर मुनियोंने जैनधर्मके प्राचीनकेन्द्र लङ्का या सिंहलद्वीपको बिलकुलही नहीं छोड़ दियाथा । मध्यकालमें मुनि यशःकीर्ति इतने प्रभावशाली हुयेथे कि तत्कालीन सिंहल नरेशने उनके पाद-पद्मोंकी अर्चा कीथी† ।

सारांशतः यह प्रकटहै कि दिगम्बर मुनियोंका विहार विदेशोंमेंभी हुआथा । भारतेतर जनताकाभी उन्होंने कल्याण कियाथा ।

(२५)

मुसलमानी बादशाहतमें दिगम्बर मुनि ।

"O son, the kingdom of India is full of different religions.........It is incumbent on thee to wipe all religious prejudices off the tablet of the heart; administer justice according to the ways of every religion."‡ —Babar.

मुसलमान और हिन्दुओंका पारस्परिक सम्बन्ध—ई० ८वीं—१०वीं शताब्दिसे अरबके मुसलमानों ने भारतवर्षपर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दियाथा; किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहां पर नहीं जमेथे । वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देशको लौट जातेथे । इन

† जैशिसं० पृ० ११९ ०) ‡ QJMS., Vol.XVIII p. 116

प्रारंभिक आक्रमणोंमें भारतके स्त्री-पुरुषोंकी एक बड़ी संख्यामें हत्या हुईथी और उनके धर्ममन्दिर और मूर्तियांभी खूब तोड़ीगई थीं। तिमूरलंगने जिस रोज़ दिल्ली फतहकी उस रोज़ उसने एक लाख भारतीय कैदियोंको तोप-दम करवा दिया+ सचमुचप्रारम्भमें मुसलमान आक्रमणकारियोंने हिन्दुस्तानको बेतरह तबाह किया;किन्तु जब उनके यहांपर पैर जमगये और वे यहां रहने लगे तो उन्होंने हिन्दुस्तानका होकर रहना ठीक समझा। यहाँकी प्रजाको संतोषित रखना उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य माना। बाबरने अपने पुत्र हुमायूंको यही शिक्षादी कि "भारतमें अनेक मतमतान्तरहैं,इसलिये अपने हृदयको धार्मिक पक्षपातसे साफ रख और प्रत्येक धर्मकी रिवाजोंके मुताबिक इन्साफ कर" परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर विश्वास और प्रेमका बीज पड़ गया। जैनोंके विषयमें प्रो० डॉ० हेलमुथ वॉन ग्लाजेनाप कहते हैं कि "मुसलमानों और जैनोंके मध्य हमेशा वैरभरा सम्बन्ध नहीं था.........(बल्कि) मुसलमानों और जैनोंके बीच मित्रताका भी सम्बन्ध रहाहै +।"इसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्धकाही यह परिणाम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहोंके राज्यमें भी अपने धर्मका पालन कर सकेथे।

+ Elliot. III. p. 436: "100000 in fidels, impious idolators were on that day slain."

—Maljuzat-i Timuri.

+ DJ., p. 66 & जैध०, पृ० ६८

ईस्वी दसवीं शताब्दिमें जब अरबका सौदागर सुलेमान यहां आया तो उसे दिगम्बर साधु बहु-संख्यामें मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। ग़र्ज़ यह कि मुसलमानोंने आतेही यहां पर नंगे दरवेशोंको देखा। महमूद गज़नी (१००१) और महमूद ग़ौरी (११७५) ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये; किन्तु वह यहां ठहरे नहीं। ठहरे तो यहां पर 'ग़ुलाम ख़ानदान' के सुल्तान और उन्हींसे भारत पर मुसलमानी बादशाहतकी शुरुआत हुई समझना चाहिये। उन्होंने सन् १२०६से १२६० ई० तक राज्य किया और उनकेबाद ख़िलजी, तुग़लक़ और लोदी वंशोंके बादशाहोंने सन् १२६० से १५२६ ई० तक यहां पर शासन किया।*

मुहम्मद ग़ौरी और दिगम्बर मुनि—

इन बादशाहोंके ज़मानेमें दिगम्बर मुनिगण निर्बाध धर्म-प्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एवं अन्य श्रोतोंसे स्पष्ट है। ग़ुलाम बादशाहोंके पहलेही दिगम्बर मुनि सुल्तान महमूदका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके थे †। सुल्तान मुहम्मद-ग़ोरीके सम्बन्धमें तो यह कहा जाता है कि उसकी बेग़मने

---

* Oxford. pp 109—130

† "अलकेश्वरपुराद्दुरवच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वर यवन राय-शिरोमणि महम्मदपातशाह सुरत्राणसमस्या पूर्णादखिलदृष्टिनिपातेनाष्टादश वर्षप्रायप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम्।" —अर्थात्--"अलकेश्वपुर के
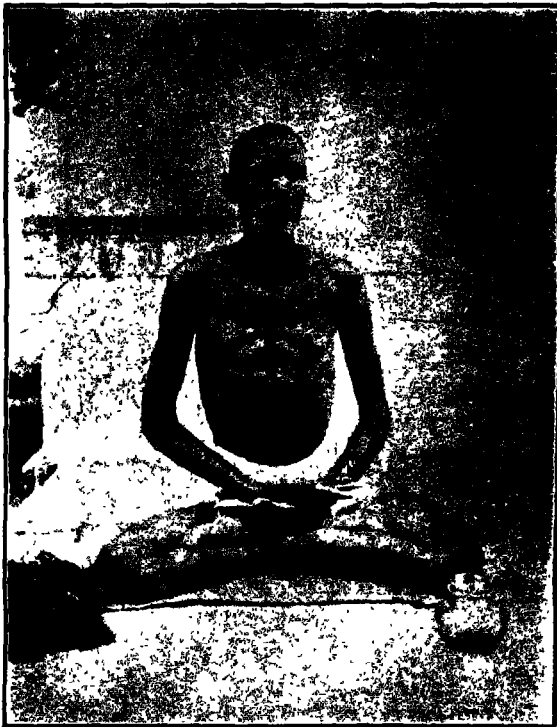
स्वर्गीय १००८ मुनि चन्द्रकीर्तिजी तपोरत्न! [पृ० २६६]

[ऐलक दशा का चित्र]

दिगम्बर आचार्यके दर्शन किये थे‡। इससे स्पष्ट है कि उस समय दिगम्बर मुनि इतने प्रभावशालीथे कि वे विदेशी आक्रमणकारियोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे ।

गुलाम बादशाहत में दिगंबर मुनि—

गुलाम बादशाहतके ज़मानेमें भी दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व मिलता है। मूलसंघ सेनगणमें उस समय श्रीदुर्लभसेनाचार्य, श्री धरसेनाचार्य, श्रीषेण, श्रीलक्ष्मीसेन, श्री सोमसेन प्रभृत मुनिपुंगव शोभाको पा रहे थे । श्री दुर्लभसेनाचार्यने अङ्ग, कलिङ्ग, काश्मीर, नैपाल, द्राविड़, गौड़, केरल, तैलंग, उड्र आदि देशोंमें विहार करके विधर्मी आचार्यों को हतप्रभ किया था +। इसी समयमें श्रीकाष्ठासंघमें मुनिश्रेष्ठ विजयचन्द्र तथा मुनि यशःकीर्ति, अभयकीर्ति, महासेन, कुन्दकीर्ति, त्रिभुवनचन्द्र, रामसेन आदि हुये प्रतीत होते हैं × ! ग्वालियरमें श्री अकलंकचन्द्रजी दिगम्बर वेषमें सं० १२५७ तक रहे थे। +

भरोचनगरमें राजेश्वर स्वामी यवनराजाओंमें श्रेष्ठ महम्मद बादशाह के त्राण समस्या की पूर्तिसे तथा दृष्ट होने से १८ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग गए हुए श्री भूतवीर स्वामी हुए।

—जैसिभा०, भा० १ कि २-३ पृ० ३५

‡ IA., Vol. XXI p. 361.—"Wife of Muhammad Ghori desired to see the chief of the Digambaras."

+ जैसिभा०, भा० १ कि० २-३ पृ० ३५

× Ibid., किरण ४ पृ० १०६

+ हजैश०, पृ० १०

खिलजी, तुग़लक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि—खिलजी, तुग़लक और लोदी बादशाहोंके राज्यकालमें भी अनेक दिगंबर मुनि हुये थे। काष्ठासंघमें श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी माहवसेन आदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहवसेन अथवा महासेनके विषयमें कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अलाउद्दीनसे सम्मान पाया था ×। इतिहाससे प्रगट है कि अलाउद्दीन धर्मकी परवाह कुछ नहीं करता था। उसपर राघो और चेतन नामक ब्राह्मणोंने उसको और भी बरग़ला रक्खा था। एकदा उन्हीं दोनोंने बादशाहको दिगम्बर मुनियोंके विरुद्ध कहा सुना और उनकी बात मान कर बादशाहने जैनियोंसे अपने गुरूको राजदरबारमें उपस्थित करनेके लिये कहा। जैनियोंने नियत कालमें आचार्य माहवसेनको दिल्लीमें उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिणकी ओर से वहां हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगंबराचार्य—आचार्य माहवसेन दिल्लीके बाहर स्मशानमें ध्यानारूढ़ तिष्ठे

× "(The Jain) Acharyas···· by their character attainments and scholarship ····· commanded the respect of even Muhammadan Sovereigns like Allauddin and Auranga Padusha (Aurangazeb)."
—SSIJ., pt. II p. 132

थे कि वहां एक सर्प-दंशसे अचेत सेठ-पुत्र दाह-कर्मके लिये लाया गया। आचार्य महाराजने उपकार भावसे उसका विष-प्रभाव अपने योग-बलसे दूर कर दिया। इस पर उनकी प्रसिद्धि सारे शहरमें होगई। बादशाह अलाउद्दीनने भी यह सुना और उसने उन दिगंबराचार्यके दर्शन किये। बादशाहके राजदरबारमें उनका शास्त्रार्थभी षट्दर्शन वादियोंसे हुआ; जिसमें उनकी विजय रही। उस दिन महासेन स्वामीने पुनः एकबार स्याद्वादकी अखण्ड ध्वजा भारत वर्षकी राजधानी दिल्लीमें आरोपित कर दी थी।*

इन्हीं दिगम्बराचार्यकी शिष्य परम्परामें विजयसेन, नयसेन, श्रेयांससेन, अनन्तकीर्त्ति, कमलकीर्त्ति, क्षेमकीर्त्ति, श्रीहेमकीर्त्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यशःकीर्त्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सहस्रकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्बर मुनि हुये थे। इनमें श्रीकमलकीर्ति जो विशेष प्रख्यात थे।†

सुल्तान अलाउद्दीनका अपरनाम मुहम्मदशाह था×। सन् १५३० ई० के एक शिलालेखमें मुनि विद्यानन्दिके गुरुपरम्परीण श्री आचार्य सिंहनन्दिका उल्लेख है। वह बड़े नैयायिक थे और उन्होंने दिल्लीके बादशाह महमूद सुरित्राण की सभामें बौद्ध व अन्योंको वादमें हराया था। यह बात उक्त

---

* जैसिभा०, भा० १ कि० ४ पृ० १०६

† Ibid. × Oxford. p. 130

शिलालेखमें है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीनके संबन्ध में हुआ प्रतिभाषित होता है। +

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बादशाह अला-उद्दीनके निकट दिगम्बर मुनियोंको विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। दिल्लीके श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन श्रावककी भी इज़्ज़त अलाउद्दीन करता था ‡ और उसने श्वेताम्बराचार्य्य श्री रामचन्द्रसूरिको कई भेंटें अर्पण की थीं +। सच बात तो यह है कि अलाउद्दीनके निकट धर्मका महत्व न कुछ था। उसे अपने राज्यका ही एक मात्र ध्यान था—उसके सामने वह 'शरीअत' को भी कुछ न समझता था। एक दफा उसने नव-मुस्लिमोंको तोपदम करा दिया था ×। हिन्दुओंके प्रति वह ज़्यादा उदार नहीं था और जैन लेखकोंने उसे 'खूनी' लिखा है। किन्तु अलाउद्दीनमें 'मनुष्यत्व' था। उसीके बल पर

+ मजैस्मा०, पृ० ३२२, 'सुल्तान' शब्दको जैनाचार्योंने सूरित्राण लिखकर बादशाहोंको मुनिरक्षक प्रकट किया है।

‡ जैहि०, भा० १४ पृ० १३२

+ जैध०, पृ० १६८

× "He (Allau-ddin) was by nature cruel and implacable, and his only care was the welfare of his kingdom. No consideration for religion (Islam) .. ever troubled him. He disregarded the provisions of the Law......... He now gave commands that the race of "New-Muslims" should be destroyed."—Tarikh-i-Firozshahi." —Elliot. III, p. 205

वह अपनी प्रजाको प्रसन्न रख सका था और विद्वानोंका सम्मान करनेमें सफल हुआ था।+

तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनि गण—

सं० १४९२ में ग्वालियरमें महामुनि श्री गुणकीर्तिजी प्रसिद्ध थे*। मेद्‌पाद देशमें सं० १५३६ में श्री मुनि रामसेनजी के प्रशिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमानथे और उन्होंने 'यशोधर चरित्' की रचना की थी‡। श्री 'भद्रबाहु चरित्' के कर्त्ता मुनि रत्ननन्दिभी इसी समय हुये थे। वस्तुतः उस समय अनेक मुनिजन अपने दिगम्बर वेषमें इस देशमें विचर रहे थे।

लोदी सिकन्दर निज़ामखां और दिगंबराचार्य विशालकीर्ति—

लोदी खानदानमें सिकन्दर (निज़ामखां) बादशाह सन् १४८९ में राजसिंहासन पर बैठा

+ सुलतान अलाउद्दीन ने शराब की बिक्री रुकवा दी थी। नाज, कपड़ा आदि बेहद सस्ते थे। उसके राजमें राजभक्तिकी बाहुल्यता थी। विद्वान् काफी हुए थे। (Without the patronage of the Sultan many learned and great men flourished)

—Elliot., III. 206

* जैहि०, भा० १५ पृ० २१५

‡ "नदीतटाख्यगच्छे वंशे श्रीरामसेन देवस्य जातोगुणार्णवैकः श्रीमांश्च भीमसेनेति। निर्मितं तस्य शिष्येण श्री यशोधर संज्ञिकं श्री सोमकीर्त्ति मुनिनाविशोदयाधीयतांबुधाववेंयद् विंशशंक्ष्येतिथिपरिगणनायुक्त संवत्सरेति पंचम्यां पौषकृष्णदिनकर दिवसे चोत्तरास्थे चंद्रे॥ इत्यादि॥"

था‡ । हूमसमठके गुरु श्री त्रिशालकीर्तिभी लगभग इसी समय हुये थे । उनके विषयमें एक शिलालेखसे पाया जाता है कि उन्होंने सिकन्दर बादशाहके समक्ष वाद किया था + । यह वाद लोदी सिकन्दरके दरबारमें हुआ प्रतीत होता है । अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्बर मुनि तबभी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहोंके दरबारमें भी पहुँच जाते थे ।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्बर साधुओंको देखा था—जैनसाहित्यके उपरोक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोतसे भी होती है । विदेशी यात्रियोंके कथन से यह स्पष्ट है कि गुलामसे लोदी राज्यकाल तक दिगम्बर जैनमुनि इस देशमें विहार और धर्मप्रचार करते रहे थे । देखिये तेरहवीं शताब्दिमें यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Morco Polo) जब भारतमें आया तो उसे ये दिगम्बर साधु मिले । उनके विषयमें वह लिखता है कि × :—

---

‡ Oxford., p. 130 + मजैस्मा०, पृ० १६३ व ३२२

× "Some Yogis went stark naked, because, as they said, they had come naked into the world and desired nothing that was of this world. 'Moreover, they declared, "we have no sin of the flesh to be conscious of, and, therefore, we are not ashamed of our nakedness, any more than you are to show your hand or face. You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness."

—Yule's Morco Polo, II, 366 & HARI., p. 364

"कतिपय योगी मादरज़ात नंगे घूमते थे, क्योंकि, जैसे उन्होंने कहा, वे इस दुनियांमें नंगे आये हैं और उन्हें इस दुनियांकी कोई चीज़ चाहिये नहीं। खासकर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्बन्धी किसीभी पापका भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी नंगी दशा पर शरम नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुंह और हाथ नंगे रखने में नहीं शरमाते हो। तुम जिन्हें शरीरके पापोंका भान है, वह अच्छा करते हो कि शरमके मारे अपनी नग्नता ढक लेते हो।"

इस प्रकारकी मान्यता दिगम्बर मुनियोंकी है। मार्को पोलोका समागम उन्हींसे हुआ प्रतीत होता है। वह उनके संसर्गमें आये हुये लोगोंमें अहिंसा धर्मको बाहुल्यता प्रकट करता है। यहां तक कि वह साग-सब्ज़ी तक ग्रहण नहीं करते थे। सूखे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में जीव-तत्वका होना मानते थे। हैवेल सा० गुजरातके जैनों में इन मान्यताओंका होना प्रकट करते हैं *। किन्तु वस्तुतः गुजरातही क्या प्रत्येक देशका जैनी इन मान्यताओंका अनु-

---

* 'Morco Polo also noticed the customs, which the orthodox Jaina community of Gujerat maintains to the present day. 'They do not kill an animal on any account, not even a fly or a flea, or a louse, or anything in fact that has life; for they say, these have all souls and it would be sin to do so.' (Yule's Morco polo., II 366) —HARI., p. 365

यायी मिलेगा। अतः इसमें सन्देह नहीं कि मार्को पोलोको जो नंगे-साधु मिले थे, वह जैनसाधु ही थे।

अलबेरूनीके आधारपर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखकने लिखा है कि "मलाबारके निवासी सबही श्रमण हैं और मूर्तियोंकी पूजा करते हैं। समुद्र किनारेके सिन्दबूर, फकनूर, मञ्जरूर, हिलि, सदर्स, जङ्गलि और कुलम नामक नगरों और देशोंके निवासीभी 'श्रमण' हैं ÷।" यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि 'श्रमण' नामसे भी विख्यात् हैं। अतः कहना होगा कि रशीदुद्दीनके अनुसार मलाबार आदि देशोंके निवासी दिगम्बर जैन ही थे, और तब उनमें दिगम्बर मुनियोंका होना स्वाभाविक है।

मुग़ल साम्राज्य में दिगम्बर मुनि--

उपरान्त सन् १५२६ से १७६१ ई० तक भारत पर मुग़ल और

÷ Rashi-uddin from Al-Biruni writes: "The whole country (of Malibar produces the *pan*...... The people are all *Samanis* and worship idols. Of the cities of the shore the first is Sindabur, the Faknur, then the country of Manjarur, then the country of Hili, then the country of Sadarsa, then Jangli, then Kulam. The men of all these countries are Samanis".—Elliot. Vol. I p. 68.

इलियट सा० ने इन श्रमणों को बौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारतमें बौद्धों का होना असम्भव है। श्रमण शब्द बौद्धभिक्षुके अतिरिक्त दिगम्बर साधुओं के लिये भी व्यवहृत होता है।

सूरवंशोंके राजाओंने राज्य किया था† । उनके समयमें भी दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य था। पाटोदी (जयपुर) के वि० सं० १५७५ की प्रशस्तिसे प्रगट है कि उस समय श्रीचन्द्र नामक मुनि विद्यमान थे‡। लखनऊ चौकके जैनमंदिरमें विराजमान एक प्राचीन गुटकाके पत्र १६३ पर दी हुई प्रशस्तिसे निर्ग्रन्थाचार्य श्री माणिक्यचन्द्रदेवका अस्तित्व सं० १६११ में प्रमाणित है + । 'भावत्रिभंगी'की प्रशस्तिसे सं० १६०५ मुनि खेमकीर्तिका होना सिद्ध है × । सचमुच बादशाह बाबर, हुमायूं और शेरसाहके समयमें दिगम्बर मुनियोंका विहार सारे देशमें होता था। मालूम होता है कि उन्हींका प्रभाव मुसलमान दरवेशों पर पड़ा था; जिसके फलरूप वे नग्न रहने लगे थे। मुग़ल बादशाह शाहजहांके समयमें वे एक बड़ी संख्यामें मौजूद थे ÷ । शेरशाहके समयमें दिगंबर मुनियों का निर्बाध विहार होता था; यह बात शेरशाहके अफसर

---

† Oxford., p. 151

‡ "श्री संघाचार्यसत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनि ।"--जैमि०, वर्ष १२ अङ्क ४५ पृष्ठ ६६८

+ "सं० १६११ चैत्र सु० २······मूलसंघे······भ० श्रीविद्यानंदि तत्पट्टे श्री कल्याणकीर्ति तत्पट्टे नैग्रन्थ्याचार्य···तपोबललब्धातिशय श्र माणिकचन्द्रदेवाः······।" --जैमि०, वर्ष १२ अङ्क ४८ पृ० ७४०

× "सं० १६०५ वर्षे ···तच्छिष्य सर्वगुणविराजमान मंडलाचार्य मुनि श्री खेमकीर्तिदेवा ।"

÷ Bernier pp. 315--318

मलिक मुहम्मद जायसीके प्रसिद्ध हिन्दीकाव्य 'पद्मावत' (२ । ६०) के निम्नलिखित पद्यसे स्पष्ट है :—

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे ।
कोई सुदिगंबर आछा लागे ॥"

अकबर और दिगम्बर मुनि—बादशाह अकबर जलालुद्दीन स्वयं जैनोंका परम भक्तथा और यदि हम उस समयके ईसाई लेखकोंके कथनको मान्यतादें तो कह सकतेहैं कि वह जैनधर्ममें दीक्षित होगयाथा । निस्सन्देह श्वेताम्बराचार्य श्रीहीरविजयसूरि आदिका प्रभाव उसपर विशेष पड़ाथा* । इस दशामें अकबर दिगम्बर साधुओंका विरोधी नहीं होसकता । बल्कि अबुलफ़ज़लने 'आईन-इ-अकबरी' भाग ३ पृष्ठ ८७ में उनका उल्लेख स्पष्ट शब्दोंमें कियाहै और लिखाहै कि वे नंगे रहते हैं ।

वैराट का दि० संघ—वैराटनगरमें उस समय दिगंबर मुनियोंका संघ विद्यमानथा । वहां पर साक्षात् मोक्षमार्गकी प्रवृतिके लिये यथाजात जिनलिङ्ग शोभा पारहाथा । यह नगर बड़ा समृद्धशालीथा और उसपर अकबर शासन करताथा । कवि राजमल्लने 'लाटीसंहिता' की रचना

---

* पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) ने लिखा है कि अकबर जैनधर्मानुयायी है [He (Akbar) follows the sect of the Jainas] ...

—सूस०, पृ० १७१-१६८

यहाँके जैनमन्दिरमें कीथी ‡। उन्होंने अपने 'जम्बूस्वामी चरित्' में लिखाहै कि भटानियाकोलके निवासी साहु टोडर जब तीर्थयात्रा करते हुये मथुरा पहुँचे तो उन्होंने वहांपर ५१४ दिगम्बर मुनियोंके समाधि सूचक प्राचीन स्तूपोंको जीर्णशीर्ण दशामें देखा। उन्होंने उनका उद्धार करा दिया और उन की प्रतिष्ठा शुभतिथि-वारको चतुर्विधिसंघ—(१) मुनि (२) आर्यिका (३) श्रावक (४) श्राविका—एकत्र करके कराई थी +। इन उल्लेखोंसे स्पष्टहै कि बादशाह अकबरके राज्यमें अनेक दिगम्बर मुनि विद्यमान्थे और उनका निर्बाध विहार सारे देशमें होताथा।

बादशाह औरङ्गजेबने दिगम्बर मुनिका सम्मान कियाथा—अकबरके बाद मुग़ल ख़ानदानमें जितनेभी शासक हुये उन सबकेही शासनकालमें दिगम्बर

---

‡ "वीर" वर्ष ३ पृ० व "लाटी०" पृ० ११ :—

"श्रीमद्विंडीरपिण्डोपमितमितनभः पाण्डुरखण्डकीर्त्या,
कृष्टं ब्रह्माण्डकाण्डं निजभुजयशसा मण्डपाडम्बरोऽस्मिन्।
येनासौ पातिसाहिः प्रतपदकबर प्रख्यविख्यातकीर्ति-
र्वीयाद् भोक्ताथ नाथः प्रभुरिति नगरस्यास्य वैराटनाम्नः ॥६२॥
जैनो धर्मोनवद्यो जगति विजयतेऽद्यापि सन्तानवर्ती
साक्षाद्दैगम्बरास्ते यतय इह यथा जातरूपाङ्कलक्षाः।
तस्मैतेभ्यो नमोस्तु त्रिसमयनियतं मोक्षसौख्यप्रसादा-
दर्वागावर्द्धमानं प्रतिघविरहितो वर्तते मोक्षमार्गः ॥६३॥"

\+ अनेकान्त, भा० १ पृ० १३६-१४१ "चतुर्विधमहासंघं समाहूयाऽधीमता।"

मुनियोंका अस्तित्व मिलताहै । औरङ्गज़ेब सदृश कट्टर बाद्-शाहको भी दिगम्बर मुनियोंने प्रभावित करलियाथा; यहां तक कि औरंगज़ेबने उनका सम्मान कियाथा × । उस समयके किन्हीं मुनि महाराजोंका उल्लेख इस प्रकारहै ।

तत्कालीन दिगम्बर मुनि—दिगम्बर मुनि श्रीसकलचन्द्रजी सं० १६६७ में विद्यमानथे । उनके एकशिष्य ने 'भक्तामर कथा' की रचना कीथी + । सं० १६८० का लिखा हुआ एक गुटका दि० जैन पंचायती बड़ा मन्दिर मैनपुरी के शास्त्रभण्डारमें विराजमानहै । उसमें श्री दिगंबर मुनि महेन्द्र-सागरका उल्लेख उस समयमें मिलताहै * । संवत् १७१६ में अकबराबादमें मुनि श्री वैराग्यसेनने "आठकर्मकी १४८ प्रकृ-

---

× SSIJ., pt. II p. 132. जैन कवियोंने औरङ्गज़ेबकी प्रसन्सा ही की है :--

"औरङ्गसाह वली को राज, पायो कविजन परम समाज ।
चक्रवर्तिसम जगमें भयो, फेरत आनि उदधि लों गयो ॥
जाके राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुन गाय ॥"
--कवि विनोदीलाल ।

+ जैप्र०, पृ० १४३

* "गुरु मुनि माहिंदसेनि नमिजी, भनत भगवतीदासु ।"
—वीर जिनेन्द्र गीत०

"मुनि माहेन्द्रसेनि गुरु तिंह जुग चरन पसाइ ।"
—ढमाखु राजमती-नेमिसुर

"मुणि माहिंदसेन इहं निसि प्रणामा तासो ।
थानि कपस्थलि मीकइ भनत भगौती दासो ॥" —ज्ञानी दास

तियोंका विचार" चर्चा ग्रंथ लिखाथा † । सं० १७८३ में गुरु देवेन्द्रकीर्तिका अस्तित्व ढूँढारिदेशमें मिलता है। वहां पर दिगम्बर मुनियोंका प्राचीन आवास था* । सं० १७५७ में कुण्डलपुरमें मुनि श्री गुणसागर और यशःकीर्ति थे । उनके शिष्यने महाराजा छत्रसालकी विशेष सहायता कीथी + । कवि लालमणिने औरङ्गज़ेबके राज्यमें 'अजितपुराण' की रचनाकी थी। उससे काष्टासङ्घमें श्री धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, जिनचन्द्र, श्रुतकीर्ति आदि दिगम्बर मुनियोंका पता चलता है × । सं० १७९९ में कवि खुशालदासजी ने एक मुनि महेन्द्रकीर्तिजी का उल्लेख किया है ‡ ।

---

† "संवत १७१६ वर्षे फाल्गुण सुदि १३ सोमे लिखितं मुनि श्री वैराग्य सागरेण ।"

* 'देसढूंढाहड जाणूं सार··· ··मूलसङ्घ भविजान सुगें सिवकार वषान्यूम् । आगें भये विषील गुणाकर तिनि इह ठान्यूम् ॥

कुन्दकुन्द मुनिराइ जिहाजथमं जामांहि; कतैकितकाल वितीत भए मुनिवर अधिकाहीं । देवेन्द्रकीर्ति भवै चितधारि ताही विषै । लषमीसुदास पण्डित तहां विनूं सुगुरु अति सैरषैं ॥
सतरासै तियासिये पोस सुकुल तिथिजानि ।···· ·" —पद्मपुराण भाषा

+ "तस्यान्वये संजातो ज्ञानवान गुणसागरः । भवस्वी संघ संपूज्यो यशःकीर्तिर्महामुनिः" ॥ —दिजैडा०, पृ० २४६

× जैहि०, १२-१६४ "श्रीमच्छ्रीकाष्ठासंघेमुनिगणगणनातद्दिगम्बरायुष्टे ॥"

‡ "भट्टारक पद सोभै जास—मुनि महेन्द्रकीर्त्ति पट तास ।"
—उत्तरपुराण भाषा०

मुनि धर्मचन्द्र मुनि विश्वसेन, मुनि श्रीभूषणका भी इसी समय पता चलता है+। सारांशतः यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखोंका औरभी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगणका परिचय उस समयमें मिलेगा।

आगरेमें तब दिगम्बर मुनि—कविवर बनारसीदास जो बादशाह शाहजहांके कृपापात्रोंमें से थे। उन के सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरे में थे तब वहाँ पर दो नग्न मुनियोंका आगमन हुआ! सब ही लोग उनके दर्शन-बन्दनके लिये आते जातेथे। कविवर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियोंकी परीक्षाकी थी×। इस उल्लेखसे उस समय आगरेमें दिगम्बर मुनियोंका निर्बाध विहार हुआ प्रकट है।

फ्रेंच-यात्री डा० बर्नियर और दिगंबर साधु—विदेशी विद्वानोंकी साक्षीभी उक्त वक्तव्यकी पोषक है। बादशाह शाहजहाँ और औरङ्गज़ेबके शासनकालमें फ्रांस से एक यात्री डा० बर्नियर (Dr. Bernier) नामक आया।

+ श्री मूलसंघेयभारतीये गच्छे बलात्कार गणेतिरम्ये। आसीन्सु-देवेन्द्रयशोमुनीन्द्रः सधर्मधारी मुनि धर्मचन्द्रः॥" —श्रीजिनसहस्रनाम०

× × ×

श्री काष्ठासंघे जिनराजसेनस्तदन्वये श्री मुनि विश्वसेन।
विद्याविभूषैः मुनिराट् बभूव श्रीभूषणो वादिगजेन्द्रसिंहः॥"
—पंचकल्याणक पाठ०

× बवि०, चरित्र, पृ० ६७—१०१

था। वह सारे भारतमें घूमा था और उसका समागम दिग-म्बर मुनियोंसे भी हुआ था। उनके विषयमें वह लिखता है कि +:—

"मुझे अक्सर साधारणतः किसी राजाके राज्यमें, इन नङ्गे फ़कीरोंके समूह मिले थे, जो देखनेमें भयानक थे। उसी दशामें मैंने उन्हें मादरज़ात नङ्गा बड़े बड़े शहरोंमें चलते फिरते देखाथा। मर्द, औरत और लड़कियां उनकी ओर वैसे ही देखतेथे जैसेकि कोई साधु जब हमारे देशकी गलियोंमें हो करनिकलता है तब हम लोग देखतेहैं। औरतें अक्सर उनके लिये बड़ी विनयसे भिक्षा लाती थीं। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्योंसे अधिक शीलवान और धर्मात्मा हैं।"

ट्रावरनियर आदि अन्य विदेशियोंने भी उन दिगम्बर मुनियोंको इसी रूपमें देखा था। इस प्रकार इन उदाहरणोंसे

+ "I have often met, generally in the territory of some Raja, bands of these naked fakirs, hideous to behold ... In this trim I have seen them shamelessly walk stark naked, through a large town, men, women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets. Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages, more chaste and discreet than other men." —Bernier. p.317

यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहोंने भारतकी इस प्राचीन प्रथा, कि साधु नङ्गे रहें और नङ्गे ही सर्वत्र विहारकरें, को सम्माननीय दृष्टिसे देखा था। यहां तक कि कतिपय दिगंबर जैनाचार्योका उन्होंने खूब आदर-सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदासजी भी अपने 'सर्वांगयोग' नामक ग्रन्थमें इन मुनियोंका उल्लेख निम्नशब्दों में करते हैं+ :—

"केचित कर्म स्थापहि जैना, केश लुंचाइ करहिं अति फैना।"

केशलुंचन क्रिया दिगम्बर मुनियोंका एक खास मूलगुणहै, यह लिखाही जा चुका है। इससे तथा सं० १८७० में हुये कवि लालजीतजी के निम्न उल्लेखसे तत्कालीन दिगंबर मुनियोंका अपने मूलगुणोंको पालन करनेमें पूर्णतः दत्तचित्त रहना प्रगट है :—

"धारैं दिगम्बर रूप भूप सब पद को परसैं;
हिये परम वैराग्य मोक्षमारग को दरसैं।
जे भवि सेवैं चरन तिन्हैं सम्यक् दरसावैं;
करैं आप कल्याण सुवारहभावन भावैं !!
पंच महाव्रत धरैं वरैं शिवसुन्दर नारी;
निज अनुभौ रसलीन परम-पदके सुविचारी।
दशलक्षण निजधर्म गहैं रत्नत्रयधारी !!
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग-बलिहारी !!!"

+ फाह्यान, भूमिका
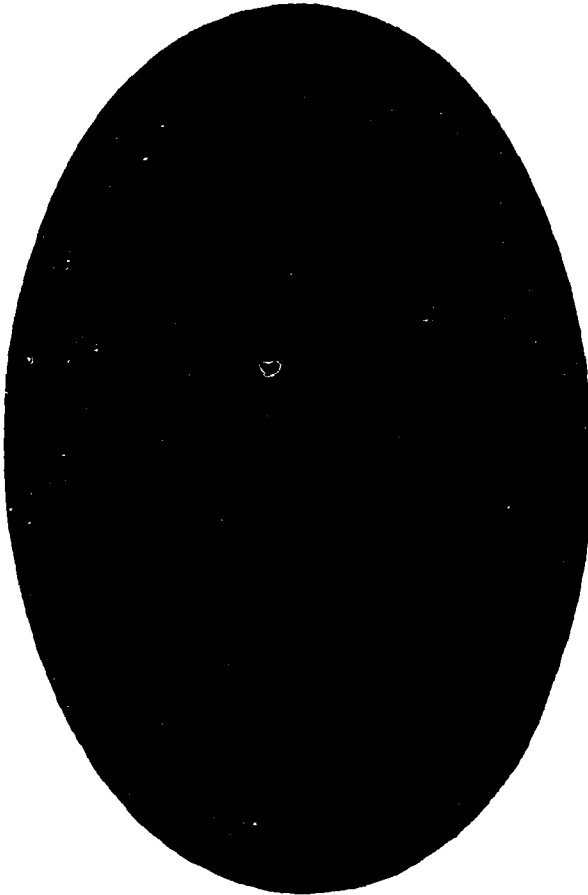
स्वर्गीय १००८ मुनि श्री अनन्तकीर्तिजी ! [पृ० २६७]

ब्रिटिश-शासनकाल में दिगम्बर मुनि।

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and We do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interferance with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure.'

—Queen Victoria. †

महारानी विक्टोरियाने अपनी १ नवम्बर सन् १८५८ की घोषणामें यह बात स्पष्ट करदी है कि ब्रिटिश-शासनकी छत्र-छायामें प्रत्येक जाति और धर्मके अनुयायीको अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओंको पालन करनेमें पूर्णस्वाधीनता होगी और कोईभी सरकारी कर्मचारी किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न करेगा। इस अवस्थामें ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियोंको अपना धर्मपालन करना सुगम-साध्य होना चाहिये और वह प्रायः सुगम रहा है।

गत ब्रिटिश-शासनकालमें हमें कई एक दिगंबर-मुनियों के होनेका पता चलता है। सं० १८५० में ढाका शहरमें श्री

† Royal Proclamation of 1st Nov. 1858

नरसिंह नामक मुनिके अस्तित्वका पता चलता है+। इटावाके आसपास इसी समय मुनि विनयसागर व उनके शिष्यगण धर्मप्रचार कर रहेथे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखकके पूर्वजोंने एक दिगम्बर मुनि महाराजके दर्शन जयपुर रियासतके फागी नामक स्थान पर कियेथे। वह मुनिराज वहां पर दक्षिणकी ओरसे विहार करते हुये आयेथे।

दक्षिण भारतकी गिरि-गुफाओंमें अनेक दिगम्बर मुनि इस समयमें ज्ञानध्यानरत रहेहैं। उन सबका ठीक २ पता पालेना कठिनहै। उनमेंसे कतिपयजो प्रसिद्धिमें आगये उन्हीं के नाम आदि प्रकटहैं। उनमें श्रीचन्द्रकीर्तिजी महाराजका नाम उल्लेखनीयहै। वह संभवतः गुरमंडपाके निवासीथे और जैनबद्रीमें तपस्या करतेथे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषयमें विशेष परिचय ज्ञात नहींहै*।

किन्तु उत्तरभारतके लोगोंमें साम्प्रत दिगम्बर मुनि श्रीचन्द्रसागरजीकाही नाम पहले-पहल मिलताहै। वह फलटन (सतारा) निवासी हूमड़ज्ञातीय पद्मसी नामक श्रावकथे। सं० १९६९ में उन्होंने कुरुन्दवाड़ग्राम (सोलापुर) में दिगंबर

+ "संवत् अष्टादश शतक व सतर बरस प्रमाण, ... ढाका सहर सुहामणा, देश बंग के माँहिं। जैनधर्मधारक जिहां श्रावक अधिक सुहाहिं। .... तासु शिष्य विनयी विबुध हर्षचंद गुणवंत। मुनि नरसिंह घिनेयविधि पुस्तक एह लिखंत॥"

--दि० जैन बड़ा मंदिर का एक गुटका

* दिजै०, वर्ष ६ अङ्क १ पृ० २३

मुनि श्री जिनप्पास्वामीके समीप क्षुल्लकके व्रत धारण किये थे। सं० १६६६ में झालरापाटनके महोत्सवके समय उन्होंने दिगंबर मुनिके महाव्रतोंको धारण करके नग्नमुद्रामें सर्वत्र विहार करना प्रारंभ कर दिया। उनका विहार उत्तरभारतमें आगरातक हुआ प्रतीत होताहै।†

सन् १६२१ में एक अन्य दिगंबर मुनि श्री आनन्दसागर जीका अस्तित्व उदयपुर (राजपूताना) में मिलताहै। श्रीऋषभ देव केशरियाजीके दर्शन करनेके लिये वह गयेथे; किन्तु कर्म-चारियोंने उन्हें जाने नहीं दियाथा। उसपर, उपसर्ग आया जानकर वह ध्यानमाढ़कर वहीं बैठ गयेथे। इस सत्याग्रहके परिणाम-स्वरूप राज्यकी ओरसे उनको दर्शन करने देनेकी व्यवस्था हुईथी।‡

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारतकी ओरसे श्रीअनन्त-कीर्तिजी महाराजका विहार उत्तरभारतको हुआथा। वह आगरा, बनारस आदि शहरोंमें होते हुये शिखिरजीकी वंदना को गयेथे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थानमें उनका असामयिक स्वर्गवास माघ शुक्ला पंचमी सं० १६७४ को हुआथा। जब वह ध्यानलीनथे तब किसी भक्तने उनके पास आगकी अंगीठी रखदीथी। उस आगसे वह स्थान ही आग-मई होगया और उसमें उन ध्यानारूढ़ मुनिजीका शरीर

---

† Ibid. p. 18—20

‡ दिजै०, वर्ष १४ अङ्क ५-६ पृ० ७

दग्ध होगया । इस उपसर्गको उन धीर वीर मुनिजीने सम-भावोंसे सहन कियाथा । उनका जन्म सं० १६४० के लग भग निल्लोकार (कारकल) में हुआथा । वह मोरेनामें संस्कृत और सिद्धान्त का अध्ययन करनेकी नियतसे ठहरेथे; किन्तु अभाग्यवश वह अकाल काल-कवलित होगये ।

श्री अनन्तकीर्तिजीके अतिरिक्त उस समय दक्षिण-भारतमें श्री चन्द्रसागरजी मुनि मणिहली, श्रीसनत्कुमारजी मुनि और श्रीसिद्धसागरजी मुनि तेरवालके होनेकाभी पता चलताहै+ । किन्तु पिछले पाँच-छै वर्षमें दिगंबर मुनिमार्गकी विशेष वृद्धि हुईहै और इस समय निम्नलिखित संघ विद्यमान है, जिनके मुनिगणका परिचय इस प्रकारहै :—

(१) श्री शान्तिसागरजी का संघ—यह सङ्घ इस समय उत्तर भारतमें बहुत प्रसिद्ध है । इसका कारण यह है कि उत्तर भारतके कतिपय पण्डितगण इस सङ्घके साथ हो कर सारे भारतवर्षमें घूमे हैं । इस सङ्घने गत चातुर्मास भारतकी राजधानी दिल्लीमें व्यतीत किया था । उस समय इस सङ्घमें दिगम्बर-मुद्राको धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रह्मचारी थे । दिगम्बर साधुओंमें श्रीशान्ति-सागर ही मुख्य हैं । सं० १६२८ में उनका जन्म बेलगाम ज़िले के ऐनापुर-भोज नामक ग्राममें हुआ था । शान्तिसागरजी को तब लोग सात गौंडा पाटील कहते थे । उनकी नौ वर्षकी

+ दिजै०, विशेषांक वीर नि० सं० २४४३

आयुमें एक पांच वर्षकी कन्याके साथ उनका ब्याह हुआथा। और इस घटनाके ७ महीने बाद ही वह बाल-पत्नी मरण कर गई थी। तबसे वह बराबर ब्रह्मचर्यका अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य-भावमें मग्न रहने लगा! जब वह अठारह वर्षके थे, तब एक मुनिराजके निकटसे ब्रह्मचारी पदको उन्हों ने ग्रहण किया था। सं० १६६६ में उत्तरग्राममें विराजमान दिगम्बर मुनि श्री देवेन्द्रकीर्त्तिजीके निकट उन्होंने क्षुल्लकका व्रत ग्रहण किया था। इस घटनाके चारवर्ष बाद संवत् १६७२ में कुंभोजके निकट बाहुबलि नामक पहाड़ी पर स्थित श्री दिगम्बर मुनिअकलीकस्वामीके निकट उन्होंने ऐलकपद धारण कियाथा। सं० १६७६में गेरनालमें पंचकल्याणक-महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गयेथे। जिस समय दीक्षाकल्याणक महोत्सव सम्पन्न होरहा था, उस समय उन्होंने भोसगोके निर्ग्रंथ मुनि महाराजके निकट मुनिदीक्षा ग्रहणकी थी*। तबसे वह बराबर एकान्तमें ध्यान और तपका अभ्यास करते रहेथे। उस समय वह एक खासे तपस्वीथे। उनकी शान्त मनोवृत्ति और योगनिष्ठाने उत्तर भारतके विद्वानोंका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कई पंडित उनकी संगतिमें रहने लगे। आखिर उनके शिष्य कई उदासीन श्रावक होगये; जिनमें से कतिपय दिगम्बर मुनि और ऐलक-क्षुल्लकके व्रतोंका पालन करनेलगे। इस प्रकार शिष्य-समूहसे वेष्टित होने पर उन्हें 'आचार्य' पद

---

* दिजै०, वर्ष १६ अङ्क १—२ पृ० ६

से सुशोभित किया गया और फिर बम्बईके प्रसिद्ध सेठ घासी राम पूर्णचन्द्र जौहरीने एक यात्रा-सङ्घ सारे भारतके तीर्थोंकी वन्दनाकेलिये निकालनेका विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागरकी अध्यक्षतामेंवह सङ्घ तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। महाराष्ट्र के सांगली-मिरज आदि रियासतोंमें जब यह सङ्घ पहुँचा था तब वहाँके राजाओंने उसका अच्छा स्वागत किया था। निज़ाम सरकारने भी एक खास हुकुम निकाल कर इस सङ्घको अपने राज्यमें कुशलपूर्वक विहार कर जाने दिया था ‡। भोपाल राज्यमें होकर वह संघ मध्यप्रान्त होता हुआ श्री शिखिरजी फरवरी सन् १९२७ में पहुंचा था। वहां पर बड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखिरजी से वह संघ कटनी, जबलपुर, लखनऊ, कानपुर, झांसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फ़ीरोज़ाबाद, एटा, हाथरस, अलीगढ़, हस्तनापुर, मुज़फ्फ़रनगर आदि शहरोंमें होताहुआ दिल्ली पहुँचा था। दिल्लीमें वर्षा-योग पूरा करके अब यह संघ अलवरकी ओर विहार कर रहा है और उसमें ये साधुगण मौजूद हैं:—

(१) श्री शान्तिसागरजी आचार्य (२) मुनि चंद्रसागर (३) मुनि श्रुतसागर (४) मुनि वीरसागर (५) मुनि नमिसागर (६) मुनि ज्ञानसागर।

(२) दूसरा संघ श्री सूर्यसागर जी महाराजका है, जो अपनी सादगी और धार्मिकताके लिये प्रसिद्ध है। खुरईमें

‡ हुकुम नं० ९२८ (शीग़े इंतज़ामी) १३३७ फ़सली

इस संघका पिछला चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय इस संघमें मुनि सूर्यसागरजी के अतिरिक्त मुनि अजितसागर जी, मुनि धर्मसागर जी और ब्रह्मचारी भगवानदास जी थे। खुरईसे अब इस संघका विहार उसी ओर हो रहा है। मुनि सूर्यसागरजी गृहस्थ दशामें श्री हजारीलालके नामसे प्रसिद्ध थे। वह पोरवाड़ जातिके झालरापाटन निवासी श्रावक थे। मुनि शान्तिसागर जी छाणी के उपदेश से निर्ग्रन्थ साधु हुये थे।

(३) तीसरा संघ मुनि शान्तिसागरजी छाणी का है, जिसका गत चातुर्मास ईडरमें हुआ था। तब इस संघमें मुनि मल्लिसागर जी, ब्र० फतहसागर जी और ब्र० लक्ष्मीचंद जी थे। मुनि शान्तिसागरजी एकान्तमें ध्यान करनेके कारण प्रसिद्ध हैं। वह छाणी (उदैपुर) निवासी दशा-हूमड़ जातिके रत्न हैं। भादव शुक्ल १४ सं० १९७९ को उन्होंने दिगम्बर-वेष धारण किया था। उन्होंने भुखिया (बांसवाड़ा) के ठाकुर क्रूरसिंह जी साहब को जैनधर्ममें दीक्षित करके एक आदर्श-कार्य किया है।

(४) मुनि आदिसागर जी के चौथे संघने उदगांवमें पिछली वर्षा पूर्ण की थी। उस समय इनके साथ मुनि मल्लिसागरजी व क्षुल्लक सूरीसिंह जी थे।

(५) गत चातुर्माससमें श्री मुनीन्द्रसागर जी का पांचवाँ संघ मांडवी (सूरत) में मौजूद रहा था। उनके साथ श्री

देवेन्द्रसागरजी तथा विजयसागरजी थे। मुनीन्द्रसागर जी ललितपुर निवासी और परवार जातिके हैं। उनकी आयु अधिक नहीं है। वह श्री शिखिरजी आदि तीर्थोंकी बन्दना कर चुके हैं।

(६) छठा संघ श्री मुनि पायसागरजी का है, जो दक्षिण-भारतकी ओर ही रहा है।

इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसागरजी (खैराबाद), मुनि आनन्दसागरजी आदि दिगम्बर-साधुगण एकान्तमें ज्ञान-ध्यानका अभ्यास करते हैं। दक्षिण-भारतमें उनकी संख्या अधिक है। ये सबही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत-वेषमें सारे देशमें विहार करके धर्मप्रचार करते हैं। ब्रिटिश भारत और रियासतोंमें ये बेरोकटोक घूमे हैं; किन्तु गतवर्ष काठियाबाड़ के कमिश्नरने अज्ञानतासे मुनीन्द्रसागरजीके संघ पर कुछ आदमियोंके घेरेमें चलनेकी पाबन्दी लगा दी थी; जिसका विरोध अखिल भारतीय जैनसमाजने किया था और जिसको रद्द करानेके लिये एक कमेटीभी बनी थी।

सच बाततो यह हैकि ब्रिटिश-राजकी नीतिके अनुसार किसीभी सरकारी कर्मचारीको किसीके धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है और भारतीय कानूनकी रू से भी प्रत्येक सम्प्रदायके मनुष्योंको यह अधिकार है कि वह किसी अन्य संप्रदाय या राज्यके हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन निर्विघ्न-रूप से करे।

श्री १००८ आचार्य शान्तिसागर जी (पृष्ठ २६९)
[वर्त्तमान दिगम्बर मुनि]

दिगम्बर जैन मुनियोंका नग्नवेश कोई नई बात नहीं है। प्राचीनकालसे जैनधर्ममें उसकी मान्यता चली आई है और भारतके मुख्य धर्मों तथा राज्योंने उसका सम्मान कियाहै, यह बात पूर्व-पृष्ठोंके अवलोकनसे स्पष्टहै। इस अवस्थामें दुनियाकी कोईभी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाजको रोक नहीं सकती। जैन साधुओंका यह अधिकारहै कि वह सारे वस्त्रोंका त्याग करें और गृहस्थोंका यह हक है कि वे इस नियमको अपने साधुओं द्वारा निर्विघ्न पाले जानेके लिये व्यवस्था करें; जिसके बिना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभहै।

इस विषयमें यदि कानूनी नज़ीरों पर विचार किया जाय तो प्रगट होताहैकि प्रिवी-कौन्सिल (Privy Council) ने सब-ही सम्प्रदायोंके मनुष्योंके लिये अपने धर्मसम्बन्धी जुलूसोंको आम सड़कोंपर निकालना जायज़ करार दियाहै। निम्न उदाहरण इसबातके प्रमाणहैं। प्रिवी कौन्सिलने मन्जूर हसन बनाम मुहम्मदज़मनके मुकद्दमेमें तय कियाहै कि:—

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that thay do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the thorough fare or breaches of the public peace, and the worshippers in

a mosque or temple, which abutted on a high-road could not compel processionists to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there." (Manzur Hasan Vs. Mohammad Zaman, 23 All. Law Journal, 179).

भावार्थ—'प्रत्येक सम्प्रदायके मनुष्य अपने धार्मिक जुलूसोंको आम रास्तोंसे लेजानेके अधिकारीहैं, बशर्तेकि उस से साधारण जनताको रास्तेके व्यवहार करनेमें दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेटकी उन सूचनाओंकी पाबन्दीभी होगई हो जो उसने रास्तेकी रुकावट और अशान्ति न होनेके लिये उपस्थित की हों। और किसी मस्जिद या मन्दिरमें, जो रास्तेपर स्थितहो, पूजा करने वाले लोग जुलूस निकालने वालोंको जब कि वह मन्दिर या मसजिदके पाससे निकलें, मात्र इस कारण कि उस समय वहां पूजा होरहीहै उनकी जुलूसी पूजाको बन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।'

इस सम्बन्धमें "पारथसार्दी आयंगर बनाम चिन्नकृष्ण आयंगार" की नज़ीरभी द्रष्टव्यहै। (Indian Law Report, Madras, Vol. V p. 309) शूद्रम् चेट्टी बनाम महाराणीके मुक़द्दमेमें यही उसूल साफ़ शब्दोंमें इससे पहलेभी स्वीकार किया जा चुका है। (ILR. VI p. 203) इस मुकद्दमेके फैसलेमें पृष्ठ२०३ पर कहा गयाहै कि जुलूसोंके सम्बन्धमें यह देखना चाहिये कि अगर वह धार्मिकहैं और धार्मिक अन्शोंका

ख़याल किया जाना ज़रूरी है, तो एक सम्प्रदायके जुलूसको दूसरे सम्प्रदायके पूज्य-स्थानके पाससे न निकलने देना उसी तरहकी सख़्तीहै जैसेकि जुलूसके निकलनेके वक्त उपासना-मन्दिरमें पूजा बन्दकर देना।

मुक़द्दमा सद्गोपाचार्य बनाम रामाराव(ILR.VI p. 376) में भी यही राय ज़ाहिरकी गईहै। इलाहाबाद ला जर्नल (भा० २३ पृ० १८०) पर प्रिवी कौन्सिलके जज महोदयोंने लिखाहै कि 'भारतवर्षमें ऐसे जुलूसोंके जिनमें मज़हबी रसूम अदा की जातीहैं सरेराह निकालनेके अधिकारोंके सम्बन्धमें एक 'नज़ीर' क़ायम करनेकी ज़रूरत मालूम होतीहै, क्योंकि भारतवर्षमें आला-अदालतोंके फैसले इस विषयमें एक दूसरे के खिलाफ़हैं। सवाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूसको मुनासिब व ज़रूरी विनयके साथ शाह-राह-आमसे निकलने का अधिकारहै? मान्य जज महोदय इसका फैसला स्वीकृति में देतेहैं अर्थात् लोगोंको धार्मिक जुलूस आम-रास्तोंसे लेजाने का अधिकारहै।'

मुक़द्दमा शङ्करसिंह बनाम सरकार कैसरे हिन्द (Al. Law Journal Report. 1929 pp. 180—182) ज़ेर-दफ़ा ३० पुलिस-ऐक्ट नं० ५ सन् १८६१ में यह तजवीज़ हुआकि 'तरतीब'—व्यवस्था देनेका मतलब 'मनाई' नहींहै। मजिष्ट्रेट ज़िलाकी रायथी कि गाने-बजानेकी मनाई सुपरिन्टेन्डेन्टपुलिस ने उस अधिकारसे की थी जो उसे दफा ३० पुलिस-ऐक्ट

की रू से मिलाथा कि किसी त्यौहार या रस्मके मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तोंपर किये जावें उनको किसी हद्तक सीमित करदे। मैं (जज हाई कोर्ट) मजिष्ट्रेट-ज़िलाकी रायसे सहमत नहीं हूँ कि शब्द 'व्यवस्था' का भाव हर प्रकारके बाजे की मनाईहै। व्यवस्था देनेका अधिकार उसी मामलेमें दिया जाताहै जिसका कोई अस्तित्वहो। किसी ऐसे कार्यके लिये जिसका अस्तित्व हो नहीं है, व्यवस्था देनेकी सूचना बिल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणतः आनेजानेकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें सूचनासे आने जानेके अधिकारका अस्तित्व स्वतः अनुमान किया जायगा। उसका अर्थ यह नहींहै कि पुलिस-अफ़सरान किसी व्यक्तिको उसके घरमें बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देनेके अधिकारीहैं।

दफ़ा ३१ पुलिस-ऐक्टकी रू से पुलिसको आम रास्तों, सड़कों, गलियों, घाटों आदि पर आने-जानेके सबही स्थानोंमें शान्ति स्थिर रखनेका अधिकारहै। बनारसमें इस अधिकारके अनुसार एक हुक्म जारी किया गयाथा कि खास सम्प्रदायके लोग यात्रावालों (पंडों) को, जो इस पवित्र नगरकी यात्राके लिये लोगोंका पथ प्रदर्शन करतेहैं, रेलवेस्टेशन पर जाने की मनाईहै। इस मुक़द्दमेमें हाईकोर्ट इलाहाबादके योग्य जज महोदयने तजवीज़ किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखनेके अधिकारोंके बल पर किसी खास सम्प्रदायके लोगों को किसी खास जगह पर आनेकी आम मुमानियत करनेका

सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिसको अधिकार न था। इस तजवीज़के कारण वहीथे जो मुक़द्दमा सरकार बनाम किशनलालमें दिये गयेहैं। (ILR. Allahabad Vol. 39 p. 131) शान्ति स्थिर रखनेका भाव आदमियोंको घरोंमें बन्द करनेका नहींहै *।

यही विज्ञप्तियां दि० जैन साधुओंसे भी सम्बन्ध रखती हैं। वह चाहे अकेले निकलें और चाहे जुलूसकी शक्लमें, सरकारी अफ़सरोंका कर्तव्यहै कि उनके इस हक़को न रोकें। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंमें स्वतन्त्रतासे बराबर घूमते रहेहैं, कहीं कोई रोक टोक नहीं हुई और न इस सम्बन्धमें किसीको कोई शिकायत हुई। अतएव सरकारी अफ़सरोंका तो यह मुख्य कर्तव्यहै कि वे दिगम्बर मुनियोंको अपना धर्म पालन करनेमें सहायता पहुँचायें। गतकालमें जितनेभी शासक यहां हुये उन्होंने यही किया, इसलिये अब इसके विरुद्ध ब्रिटिश-शासक कोईभी बर्ताव करनेके अधिकारी नहींहैं। उनको तो जैनोंका अपना धर्म निर्बाध पालने देना ही उचितहै।

---

* NJ., pp. 19-23

दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान् ।

"मनुष्य मात्रको आदर्श-स्थिति दिगम्बर ही है । मुझे स्वयं नग्नावस्था प्रिय है " —म० गाँधी

संसारके सर्व-श्रेष्ट पुरुष दिगम्बरत्वको मनुष्यके लिये प्राकृत सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारतमें दिगंबरत्वका महत्व प्राचीनकालसे माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक-सभ्यताकी लीलास्थली यूरोपमें भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनान-वासियोंकी तरह जर्मनी, फ्रान्स और इङ्गलेन्ड आदि देशोंके मनुष्य नंगे रहनेमें स्वास्थ्य और सदाचारकी वृद्धिहुई मानतेहैं। वस्तुतः बात भी यही है। दिगम्बरत्व यदि स्वास्थ्य और सदाचारका पोषक नहो तो सर्वज्ञ जैसे धर्मप्रवर्तक मोक्ष-मार्गके साधनरूप उसका उपदेशही क्यों देते ? मोक्षको पानेके लिये अन्य आवश्यकाओं के साथ नंगा-तन और नंगा-मन होनाभी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ट शरीरही धर्म-साधनका मूल है और सदाचार धर्मकी जान है। तथा यह स्पष्ट हैकि दिगंबरत्व श्रेष्ट स्वस्थ्य शरीर और उत्कृष्ट सदाचारका उत्पादक है। अब भला कहिये वह परम-धर्मकी आराधनाके लिये क्यों न आवश्यक माना जाय ? आधुनिक सभ्य-संसार आज इस सत्यको जान गया है और वह उसका मनसावाचाकर्मणा क़ायल है !

यूरोपमें आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्वके प्रचारके लिये खुली हुई हैं; जिनके हज़ारों सदस्य दिगंबर-वेषमें रहने का अभ्यास करते हैं। बेडल्स स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्पशायर) में बैरिस्टर-डाक्टर इञ्जिनीयर, शिक्षक आदि उच्चशिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगंबर वेषमें रहना अपनेलिये हितकर समझते हैं। इस स्कूलके मंत्री श्रीबर्फोर्ड (Mr. N. F. Barford) कहते हैं कि :—

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health. (Amrita Bazar Patrika, 8-8-31)

भाव यही है कि एक सालके अन्दर नंगे रहनेकी प्रथा विशेष उन्नत हो जायगी और समयानुसार लोगोंको खुलेआम कपड़े पहननेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नंगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अमित लाभ होगा वह तब ज्ञात होगा।

इस प्रकार संसारमें जो सभ्यता पुज रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि 'मनुष्य जातिको स्वस्थ्य रखनेके लिये वस्त्रोंकी तिलाञ्जलि देनी पड़ेगी। नग्नता रोगियोंके लियेही केवल एक महान् औषधि नहीं है, बल्कि स्वस्थ्य जीवोंके लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विटज़रलैंडके नगर लेयसन (Leysen) निवासी डॉ० रोलियर (Dr. Rollier) ने केवल

नग्नचिकित्सा द्वाराही अनेक रोगियोंको आरोग्यता प्रदान कर जगतमें हलचल मचा दी है । उनकी चिकित्सा-प्रणालीका मुख्य अङ्ग है स्वच्छ वायु अथवा धूपमें नंगे रहना, नंगे टहलना और नंगे दौड़ना । जगतविख्यात् ग्रंथ 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में नग्नताका बड़ा भारी महत्व वर्णित है।' * वास्तवमें डाक्टरोंका यह कहनाकि जबसे मनुष्य जाति वस्त्रों के लपेटमें लिपटी है तबसेही सर्दी, जुकाम, क्षय आदि रोगों का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है । प्राचीन काल में लोग नंगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे ।

किन्तु दिगम्बरत्व स्वास्थ्यके साथ २ सदाचारका भी पोषक है । इस बातको भी आधुनिक विद्वानोंने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है । इस विषयमें श्री ओलिवर हर्स्ट सा० "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि "अन्ततः अब समाज बाईबिलके पहिले अध्यायके महत्वको (जिसमें आदम और हव्वाके नंगे रहनेका ज़िकर है) समझने लगी है और नग्नताका भय अथवा झूठी लज्जा मन से दूर होती जा रही है । जरमनी भरमें बीसों ऐसी सोसाइटियां क़ायम होगई हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नग्नावस्थामें स्वच्छ वायुका उपयोग करते हुये नाना प्रकारके खेल खेलते हैं । वे लोग नग्न रहना प्राकृतिक, पवित्र और सरल

* दि० मु० भूमिका, पृष्ठ 'ख'
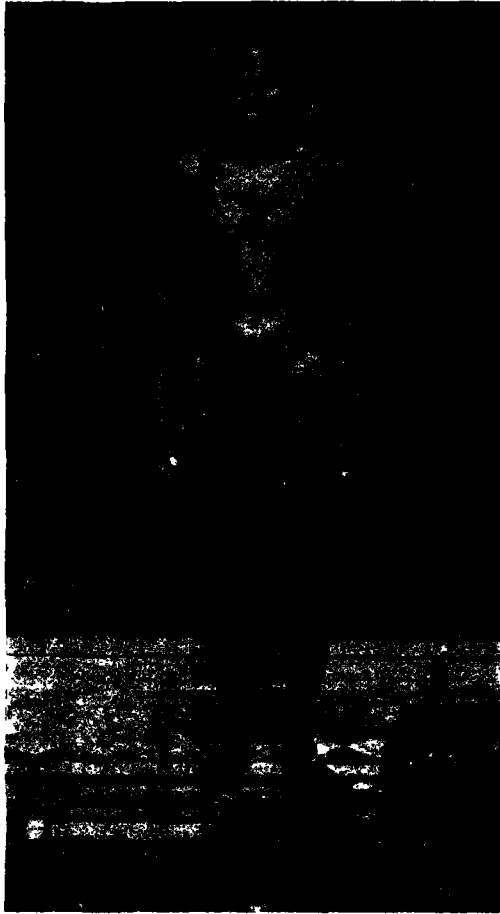
श्री १००८ मुनि शांतिसागर जी छाणी (पृ० २७१)

[वर्त्तमान दिगम्बर मुनि]

समझते हैं। शताब्दियों से जिसके लिये उद्यम होरहा था, वह यही पवित्रताका आन्दोलन है। यह पवित्रता कैसी है? इसको स्वयं उनके निवास-स्थान गेलैन्ड (Gelande) के देखनेसे जाना जा सकता है, जबकि वहां सैकड़ों स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकायें आनन्द-मय स्वाधीनताका उपभोग करते दृष्टि पड़ें! ऐसे दृश्यके देखनेसे मन पर क्या असर पड़ता है, वह बताया नहीं जा सकता! जिस प्रकार कोई मैला कुचैला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे, ठीक उसी तरह यह दृश्य सर्व प्रकारके सूक्ष्म अंतरंग-विषोंसे शून्य दिखाई पड़ेगा। ऐसे पवित्र मानवोंके सामने जो वस्त्रधारी होगा वह लज्जाको प्राप्त होजायगा। ऐसे आनन्दमय वातावरणमें......ताज़ी हवा और धूपका जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उसको सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते हैं, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मीक लाभ होता है, वह विचार के बाहर है। यह क्रान्ति दिनों दिन बढ़ रही है और कभी अवनत नहीं हो सकती। मानवोंकी उन्नतिके लिये यह सर्वोत्कृष्ट भेंट जर्मनी संसारको देगा, जैसे उसने आपेक्षिक-सिद्धांत उसे अर्पण किया है। बर्लिनमें जो अभी इन सोसाइटियोंकी सभा हुई थी उसमें भिन्न २ नगरोंके ३००० सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिलके मेम्बरोंने अपनी २ स्त्रियोंके साथ देखा था। उन स्त्रियोंके भाव उसे देखकर बिल्कुल बदल गये। नग्नताका विरोध करने

the progress of Culture and humanity. The leading exponents of that faith continued to live. such lives of hardy discipline and spiritual culture etc."

भावार्थ—"जैनधर्म संस्कृति और मानवसमाज की उन्नतिके लिये उत्कृष्ट और महान् चारित्रको निर्माण करानेमें सहायक रहाहै। इस धर्मके आचार्य सदाकी भांति तपश्चरण और आत्मविकासका उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

ईसाई मिशनरी ए० डुबोई सा० ने दिगम्बर मुनियोंके सम्बन्धमें कहाथा कि :—

"सबसे उच्चपद जोकि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनिका पदहै। इस अवस्थामें मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यानके बलसे परमात्माका मानो अंश होजाताहै।.........जब मनुष्य निर्वाणी (दिगम्बर) साधु होजाताहै तब उसको इस संसारसे कुछ प्रयोजन नहीं रहता और वह पुण्य-पाप, नेकी-बदी को एक ही दृष्टिसे देखताहै–उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होतीहैं। न वह किसीसे राग और न द्वेष करताहै। वह बिना दुख मालूम किये सर्व प्रकारके उपसर्गोंको सहन कर सक्ताहै।......अपने आत्मिक भावोंमें जो भीजाहो उसको क्यों इस संसारकी और उसकी निस्सार क्रियाओंकी चिन्ता होगी!"*

---

* जैम०, पृ० १०५

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीवेन्सनने अपने ग्रंथ "हार्ट आव जैनीज़्म" में लिखा है कि :—

"Being rid of clothes one is also rid of a lot of other worries; no water is needed in which to wash them. Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keeps us away from salvation. To obtain it we must forget nakedness. The Jain *Nirgranthas* have forgot all knowledge of good and evil. Why should they require clothes to hide their nakedness ?" (Heart of Jainism, p. 35)

भावार्थ—'वस्त्रों की झंझटसे छूटना, हज़ारों अन्य झंझटोंसे छूटनाहै। कपड़े धोनेके लिये एक दिगम्बर वेषीको पानीकी ज़रूरत नहीं पड़ती। वस्तुतः पापपुण्यका भानही—नग्नताका ध्यानही मनुष्यको मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पानेके लिये मनुष्यको नग्नताका ध्यान भुलादेना चाहिये। जैन निर्ग्रंथोंने पापपुण्यके भानको भुला दियाहै। भला उन्हें अपनी नग्नता छिपानेके लिये वस्त्रोंकी क्या ज़रूरत ?'

सन् १९२७ में अब लखनऊमें दिगम्बर मुनिसंघ पहुँचा तो श्री अलफ्रेड जेकबशॉ (Alfred Jacob Shaw) नामक एक ईसाई विद्वान् ने उसके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकोंमें सम्मेदशिखिर पर दिगम्बर मुनियोंके ध्यान करने बाबत पढ़ा ज़रूर था लेकिन ऐसे साधुओंको देखनेका

अवसर अजिताश्रममें ही मिला। वहां चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्यामें लीन थे। आगसी जलती हुई छत पर बिनाकिसी क्लेशके वह ध्यान कर रहेथे। उनसे पूंछा तो उन्होंने कहा कि 'हम परमात्मस्वरूप आत्माके ध्यानमें लीन रहते हैं। हमें बाहरी दुनियांकी बातों और दुःख-सुखसे क्या मतलब'? यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूँ पर तो भी मैं कहूँगा कि इन साधु-ओंका सम्मान हर सम्प्रदायके मनुष्योंको करना चाहिये। उन्होंने संसारके सभी सम्बन्धोंको त्याग दिया है और एक मात्र मोक्षकी साधनामें लीन हैं।"†

सचमुच इन विद्वानोंका उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियोंकी महिमाका स्वतः द्योतक है। यदि विचार-शील पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नताके महत्व और नग्न साधुओंके स्वरूपको मोक्ष प्राप्तिके लिये आवश्यक जान जायेंगे। कविवर वृन्दावनके शब्द स्वतः उनके हृदयसे निकल पड़ेंगे :—

"चतुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत।
नुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल वरसत॥"

---

† JG. XXIII p. 139

उपसंहार ।

वाह्यो ग्रन्थोऽगमक्षाणामांतरो विषयेषिता ।
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पांथः शिवपुरेऽर्थतः ॥ —कवि आशाधर *

'यह शरीर बाह्य परिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियोंके विषयोंमें अभिलाषा रखना अन्तरङ्ग परिग्रह है। जो साधु इन दोनों परिग्रहोंमें ममत्व-परिणाम नहीं रखता है, परमार्थसे वही परिग्रह-रहित गिना जाता है । तथा वही निर्वाण-नगर वा मोक्षमें पहुँचनेके लिये पांथ अर्थात् नित्य गमन करनेवाला माना जाता है।' इसका कारण यह है कि मोक्षमार्गमें निरंतर गमन करनेकी सामर्थ्य एक मात्र यथाजात-रूपधारी निर्ग्रन्थ ही के है। जो मनुष्य शरीर-रक्षा और विषय कषायोंकी चिंताओंमें फंसकर पराधीन बना हुआ है, भला वह साधु-पदको कैसे धारण कर सकताहै ? और जब दिगम्बर-वेषको धारण करके वह साधु नहीं होसकता तो फिर उसका निरन्तर मोक्षमार्ग पर गमन करना अथवा मोक्ष-पद को पालेना कैसे संभव है ? इसीलिये दिगम्बरत्वको महत्व देकर मुमुक्षु शरीर से नाता तोड़ लेते हैं और नंगे तन तथा नंगे मन होकर आत्म-स्वातंत्र्यको पालेते हैं। शाश्वत-सुखको दिलाने वाला यही एक राजमार्ग है और इसका उपदेश प्रायः संसारके सबही मुख्य २ मत प्रवर्तकोंने किया था !

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे ज़रा इस प्रश्न पर विचार

---

* सागा०, पृष्ठ ५११ .

कीजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्वकी महिमा! जिसका मन शरीरमें अटका हुआ है, जो लज्जाके बन्धनमें पड़ा हुआ है और जो साधु-वेषको धारण करकेभी साधुताको नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्वके महत्वको क्या जाने? मनकी शुद्धि—भावोंकी विशुद्धता—ही मुमुक्षुके लिये आत्मोन्नतिका कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्षको दिलाने वाली है! किन्तु मनकी यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावटमें नसीब हो सकती है? वस्त्रादि-परिग्रहके मोहमें अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्ग्रन्थ-पदको पा सकता है? इसीलिये संसारके तत्ववेत्ताओंने हमेशा दिगम्बरत्वका प्रतिपादन किया है! भगवान ऋषभदेवके निकटसे प्रचारमें आकर यह महत सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओंका आत्मकल्याण करता आ रहा है और जब तक मुमुक्षुओंका अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्याण करता रहेगा!

दिगम्बरत्व मनुष्यको रंकसे राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा-तन नहीं है। वह नंगे होनेसे कुछ अधिक है। नंगे तो पशुभी हैं, पर उन्हें कोई नहीं पूजता? इसका कारण है। वह यह कि मानव-जगत जानता है कि पशुओंको अपने शरीर ढकने और विवेकसे काम लेनेकी तमीज़ नहीं है। पशुओंने विषय-विकार परभी विजय नहीं पाई है। इसके विपरीत दिगंबर-मुनिके सम्बन्धमें उसकी धारणा है और ठीक धारणा

है जैसेकि पूर्वपृष्ठोंमें हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि वे साधु तनसे ही नंगे नहीं होते बल्कि उनका मनभी विषयविकारोंसे नंगा है। दिगम्बरत्वका रहस्य उसके बाह्याभ्यन्तर रूपमें गर्भित है। इस रहस्यको समझकर ही मुमुक्षु दिगंबर वेषको धारण करके विकार-विवर्जित होनेका सबूत देतेहैं और आत्मकल्याण करते हुये जगतके लोगोंका हित साधते हैं। श्री ऋषभदेव दिगंबर मुनिही थे जिन्होंने संसारको सभ्यता और धर्मका पाठ पढ़ाया! श्री सिंहनन्दि आचार्य दिगंबर वेषमें ही विचरे थे जिन्होंने गङ्गवंशकी स्थापना कराई और उन क्षत्रियोंको देश तथा धर्मका रक्षक बनाया! कल्याणकीर्ति आदि मुनिगण नङ्गे साधुही थे जिन्होंने सिकन्दर महान् जैसे विदेशियोंके मनको मोह लिया था और उन्हें भारतभक्त बनाया था! वे दिगम्बर ऋषिही थे जिन्होंने अपने तत्वज्ञानका सिक्का यूनानियोंके दिलोंपर जमा दिया था और उन्हें वादमें निग्रहस्थान को पहुँचा दिया था! श्री वादिराज और वासवचन्द्र जैसे दिगम्बर मुनि धीर-वीरताके आगार थे कि उन्होंने रणाङ्गणमें जाकर योद्धाओंको धर्मका स्वरूप समझाया था! और श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर साधुही थे जिन्होंने सारे देशमें विहार करके ज्ञान-सूर्यको प्रकट किया था! सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट् अमोघवर्ष प्रभृति महिमाशाली नर-रत्न अपनी अतुल राज-लक्ष्मीको लात मारकर दिगम्बर ऋषि हुये थे। ये सब उदाहरण दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियोंके महत्व

और गौरवको प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियोंके मूलगुणों की संख्या-परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदोंमें ओत-प्रोत दिगंबर-गौरवका बखान है। सचमुच दिगम्बर मुनि, श्रीशिवव्रतलाल वर्म्मनके शब्दोंमें * "धर्म-कर्मकी झलकती हुई प्रकाशमान् मूर्तियां हैं। वे विशाल हृदय और अथाह समुन्दर हैं जिसमें मानवी हितकामनाकी लहरें ज़ोर-शोरसे उठती रहती हैं। और सिर्फ़ मनुष्यही क्यों? उन्होंने संसारके प्राणी मात्रकी भलाईके लिये सबका त्याग किया। प्राणीहिंसाको रोकनेके लिये अपनी हस्तीको मिटा दिया। ये दुनियांके ज़बरदस्त रिफ़ार्मर, ज़बरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जेके वक्ता तथा प्रचारक हुये हैं। ये हमारे राष्ट्रीय इतिहासके कोमती रत्न हैं। इनमें त्याग, वैराग्य और धर्मका कमाल—सब कुछ मिलता है। ये 'जिन' हैं, जिन्होंने मोहमायाको और मन और कायाको जीत लिया। साधुओंकी नग्नता देखकर भला क्यों नाक-भौं सकोड़ते हो? उनके भावोंको क्यों नहीं देखते? सिद्धांत यह हैकि आत्माको शारीरिक बन्धनसे और ताउल्लु-क़ातकी पोशिशसे आज़ाद करके बिल्कुल नंगा करलिया जाय, जिससे उसका निजरूप देखनेमें आवे।" यह वजह है इन साधुओंके ज़ाहिरदारीके रस्मोरिवाजसे परे रहने की! यह ऐबकी बात क्या है? ईश्वर-कुटीमें रहने वालों को अपना जैसा आदमी समझा जाय, तो यह गलती है या नहीं? इस-लिये आओ सब मिलकर राष्ट्र और लोकके कल्याणके लिये स्पष्ट घोषणा करो और कविवर वृन्दाबनकी तानमें तान मिला कर कहो —

'सत्यपन्थ निर्ग्रंथ दिगम्बर!'

---

* जैम०, पृष्ठ ३-५

परिशिष्ट ।

तुर्किस्तान के मुसलमानों में नग्नत्व आदर की दृष्टिसे देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जाचुकी है। मिस लुसी गार्नेट की पुस्तक "Mysticism & Magic in Turkey" के अध्ययन से प्रगट है कि "पैगम्बर सा० ने एक रोज़ मुरीदों के राज़ और मारफत की बातें अली सा० को बतादीं और कह दिया कि वह किसी को बतायें नहीं। इस घटना से ४० दिन तक तो अली सा० उस गुप्त संदेश को छुपाये रहे; किन्तु फिर उसको दिल में छुपाये रखना असंभव जानकर वह जंगल को भाग गये (पृ० ११०)"। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद सा० ने राज़े-मारफत अर्थात् योग की बातें बताईं थीं, जिनको बाद में सूफ़ी दरवेशों ने उन्नत बनाया था। इन दरवेशों में 'अजालुलीब' और 'अब्दाल' श्रेणीके फ़कीर बिलकुल नङ्गे रहतेहैं। मि. जे.पी. ब्राउन नामक साहबको एक दरवेश-मित्रने खालिफअली की ज़ियारतगाह में मिले हुए एक 'अजालुलीब' दरवेश का हाल कहा था। उसका नाम जमालुद्दीन कूफीव था। उसका शरीर मझोले क़दका था और वह बिल्कुल नंगा (Perfectly naked) था। उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमज़ोर था। उसकी उम्र लगभग ४०-५० वर्ष की थी (पृ० ३६)। इन दरवेशों के संयमकी ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं बेरोकटोक घूमते हैं—कभी अर्द्धनग्न और कभी पूरे नंगे वे होजाते हैं। जितने ही वह अद्भुत दीखते हैं उतने ही अधिक पवित्र और नेक वे गिने जाते हैं। (The result of this reputation for sanctity enjoyed by *Abdals* is that they are allowed to

wander at large over the country, sometimes half-clad, sometimes *completely naked.*) वे अपने ज्ञान का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में आ रमते हैं। वहाँ बनफलों पर गुज़रान करते हैं। जंगल के खूंखार जानवरों पर वे अपने अध्यात्मबल से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशतः तुर्किस्तान में यह नंगे दरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने आते हैं।

यूरोप में नंगे रहने का रिवाज दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जरमनी में इस की खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे हैं। देखिये, २ फ़रवरी के "स्टेट्समैन" अख़बार में यह ही बात कही गई है:—

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air at exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at elsewhere, is now seriously studied as probably the way to a saner morality."—The Statesman, 2.2.32.

भारतवर्ष में नग्न रहनेका महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में अब वही बात दुहराई जा रही है।

अनुक्रमणिका ।

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" की
उपयोगी पुस्तकें

(१) जैनधर्म परिचय—सत्यार्थदर्पण और जैनदर्शन आदि के लेखक, जैनगज़ट के भूतपूर्व सम्पादक पं० अजितकुमार जी शास्त्री इसके लेखक हैं। पृष्ठ संख्या करीब पचास के हैं। लेखक ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों को इसमें संक्षेप में बतलाया है। जैनधर्म के साधारण ज्ञान के लिये यह बहुत उपयोगी है। मूल्य केवल ~)॥

(२) जैनमत नास्तिक मत नहीं है—यह मि० हर्बर्ट वारन के एक अंग्रेज़ी लेख का अनुवाद है। इसमें जैनधर्मको नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर लेखक ने बड़ी योग्यता से दिया है। मूल्य केवल)॥

(३) क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं !—इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ हैं। इसमें लेखक ने आर्यसमाजियों के अनादि पदार्थों के सिद्धांत, मुक्तिसिद्धांत, ईश्वर का निमित्तकारण और सृष्टिक्रम व ईश्वरस्वरूप को बड़ी स्पष्टरीति से वेद-विरुद्ध प्रमाणित किया है। पृष्ठ संख्या ४४। काग़ज़ बढ़िया। मूल्य केवल ~)

(४) वेद मीमांसा—यह पं० पुत्तूलालजी कृत प्रसिद्ध पुस्तक है। पुस्तकमाला ने इसको प्रचारार्थ पुनः प्रकाशित किया है। मूल्य छः आने से कम करके केवल =) रक्खा है।

(५) अहिंसा—इसके लेखक पं० कैलासचन्द्र जी शास्त्री धर्माध्यापक स्याद्वाद विद्यालय काशी हैं। लेखक ने बड़ी ही योग्यता से जैनधर्म के अहिंसा सिद्धांत को समझाते हुए उन आक्षेपों का उत्तर दिया है जोकि विधर्मियोंकी तरफ़ से जैनियों पर होते हैं। पृ० संख्या ५२। मूल्य केवल ~)॥

(६) श्रीऋषभदेवजीकी उत्पत्ति असंभव नहीं है !—

इसके लेखक बा० कामताप्रसाद जैन अलीगंज (एटा) हैं। यह आर्यसमाजियों के "श्रीऋषभदेवजी की उत्पत्ति असम्भव है" ट्रैक्ट का उत्तर है। पृष्ठ संख्या ८४; मूल्य ।)

(७) वेदसमालोचना—इसके लेखक पं० राजेन्द्र कुमारजी न्यायतीर्थ हैं। लेखकने इस पुस्तकमें, अशरीरी होने से ईश्वर वेदोंको नहीं बना सकता; वेदोंमें असम्भव बातोंका, परस्पर विरुद्ध बातों का, अश्लील, हिंसा विधान, माँसभक्षण समर्थन, असम्बद्ध कथन, इतिहास, व्यर्थ प्रार्थनायें और ईश्वर का अन्य पुरुष से ग्रहण आदि कथन है; आदि विषयों पर गम्भीर विवेचन किया है। पृष्ठ संख्या १२४। मूल्य केवल ।=)

(८) आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक—लेखक श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान। विषय नामसे प्रकट है। मूल्य)॥

(९) सत्यार्थ दर्पण—लेखक पं० अजितकुमार जी मुलताननगर। हमारे यहांसे यह पुस्तक दूसरी बार आवश्यक परिवर्तन करके ३५० पृष्ठों में छापी गई है। इसमें सत्यार्थ-प्रकाश के १२ वें समुल्लासका भली प्रकार खंडन किया गया है। प्रचार करने योग्य है। लागतमात्र मूल्य ॥।)

(१०) आर्यसमाजके १०० प्रश्नों का उत्तर—लेखक उपरोक्त। विषय नामसे प्रकट है। पृष्ठ संख्या १००। मूल्य=)

(११) क्या वेद भगवद्वाणी है ?—लेखक—श्रीयुत् सोऽहं शर्मा। विषय नाम से प्रकट है। मूल्य -)

(१२) आर्य्यसमाज की डबल गप्पाष्टक—लेखक श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान नगर (पंजाब)। मूल्य -)

(१३) दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि—लेखक श्री बा० कामताप्रसाद जी, अलीगंज (एटा)। मूल्य १)

नोट—इनके अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी प्रेस में छप रही हैं। समाज के श्रीमानों को चाहिये कि इनका प्रचार देश और विदेश में करें। —प्रकाशक